अर्थ—शैवाल, पणक, केणुग, कवग और पुष्पक इत्यादि ये सब बादर अनन्तकायिक वनस्पति हैं ॥७१॥

अब इसी को भाष्य रूप में कहते हैं—

जल में जो हरी-हरी काई होती है, उसे शैवाल, भूमि में जो हरी-हरी काई होती है उसे पणक, ईंट आदि में जो उत्पन्न होती है उसे केणुक, श्वेत, हरे और नील वर्ण के छत्र सदृश को आलम्बक (कुकुरमुत्ता), मल या कचरे में उत्पन्न होने वाले को कवग, वक छत्र को शृंगाल कहते हैं (एक प्रकार का कुकुरमुत्ता जिसकी डंठल टेड़ी होती है)। आहार कांजी आदि के ऊपर उत्पन्न होने वाली फफूँदी को पुष्पिका कहते हैं। इस प्रकार शैवालादि अनेक बादर अनन्तकायिक वनस्पतियाँ होतीं हैं।

अब साधारण, प्रत्येक, सूक्ष्म एवं बादर जीवों के लक्षण और उनके निवास क्षेत्र आदि का कथन करते हैं—

गूढानि स्युः सिरासन्धि पर्वाणि जन्मिनां भुवि।
येषां स्यान्समभङ्गं चाहीरुकं सूत्रसन्निभम् ॥७२॥
छिन्नभिन्नशरीराणि प्ररोहन्त्यप्यनन्ततः।
तेऽत्र साधारणा जीवाः प्रत्येकास्तद्विपर्ययाः ॥७३॥
एते स्युर्बादराजीवाः क्वचिल्लोके क्वचिन्न च।
पृथ्व्यादि कायमापन्नाः पञ्चधाः स्थावराः परे ॥७४॥
सूक्ष्माः पृथ्व्यादयः पञ्चस्थावरा दृष्ट्यगोचराः।
एते तिष्ठन्ति सर्वत्र प्रपूर्य भुवनत्रयम् ॥७५॥
वनस्पत्यङ्गिनोऽन्ये च स्थावराः सूक्ष्मबादराः।
अनन्तविविधा एते रक्षणीयाः सदाबुधैः ॥७६॥
न प्रतिस्खलनं येषां गत्यादौ सूक्ष्मदेहिनाम्।
पृथ्वीजलाग्निवाताद्यैर्जातु ते सूक्ष्मकायिकाः ॥७७॥
प्रतिस्खलन्ति ये स्थूलाः स्थावरा गमनादिषु।
केचिद्दृश्या अदृश्यास्ते बादराः श्रीजिनैर्मताः ॥७८॥

अर्थ—जिनकी शिरा-बहिः स्नायु, सन्धि-रेखाबन्ध और पर्व-गाँठ अप्रकट हों और जिन वनस्पतियों का भंग करने पर समान भंग हो, दोनों भंगों में परस्पर सूत्र-तन्तु न लगा रहे तथा शरीरों को छिन्न-भिन्न कर देने पर भी जो उग जाते हैं तथा वृद्धि आदि को प्राप्त होते हैं ऐसे अनन्तकायिक वे सब जीव यहाँ पर साधारण कहे गये हैं। जो जीव इन चिह्नों से रहित हैं, वे प्रत्येक (अप्रतिष्ठित) वनस्पतिकायिक हैं। पृथ्वी आदिक पाँच कायों को धारण करने वाले पाँचों बादर स्थावर जीव इस लोक में कहीं हैं और कहीं नहीं हैं किन्तु दृष्टि अगोचर पृथ्वीकायादि पाँचों सूक्ष्म स्थावर जीव तीनों लोकों को परिपूर्ण करते हुए सर्वत्र रहते हैं। विद्वानों को अन्य अनन्त प्रकार के सूक्ष्म और बादर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वनस्पतिकायिक व स्थावर जीवों की रक्षा करना चाहिए। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से युक्त पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक आदि के द्वारा जिन जीवों की गति आदि कभी भी रुकती नहीं है, उसे सूक्ष्मकायिक कहते हैं। जिन स्थावर जीवों की गति आदि दूसरों से रुकती है और दूसरों को रोकती है, उन्हें जिनेन्द्र भगवान् ने बादर जीव कहा है इनमें कुछ जीव दृष्टि गोचर होते हैं कुछ दृष्टि अगोचर रहते हैं ॥७२-७८॥

अब त्रस जीवों के भेद आदि कहते हैं—

प्राणिनो विकलाक्षाश्च सकलाक्षास्ततः परे।
इत्यमी द्विविधाः प्रोक्तास्त्रसा उद्वेगिनोऽसुखात् ॥७९॥
द्वित्रितुर्याख्यभेदाद्यैस्त्रिविधा विकलेन्द्रियाः।
स्युः कृम्याद्या नृगीर्वाणतिर्यञ्चः सकलेन्द्रियाः ॥८०॥
कृमयः शुक्तिकाः शङ्खाः बालुकाश्च कपर्द्दकाः।
जलूकाद्या मताः शास्त्रो द्वीन्द्रिया द्वीन्द्रियाङ्किताः ॥८१॥
कुन्थवो मत्कुणा यूका वृश्चिकाश्च पिपीलिकाः।
उद्देहिका हि गोम्याद्यास्त्रीन्द्रियास्त्र्यक्षसंयुताः ॥८२॥
मशका भ्रमरा दंशाः पतङ्गा मधुमक्षिकाः।
मक्षिका कीटकाद्याः स्युश्चतुरिन्द्रियजातयः ॥८३॥
जलस्थलनभो गामिनस्तिर्यञ्चो नरामराः।
नारकाः श्रीजिनैः प्रोक्ताः पञ्चाक्षाः सकलेन्द्रियाः ॥८४॥
एतास्त्रसाङ्गिनः सम्यग्ज्ञात्वा गृहितपोधनाः।
पालयन्तु समित्याद्यैः सर्वत्र स्वमिवान्बवहम् ।८५॥
इति पृथ्व्यादिकायानां जातिभेदान् जिनागमात्।
आख्यायातः सतां वक्ष्ये कुलानि विविधानि च ॥८६॥

अर्थ—दुःख से उद्वेगित त्रस जीव विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय के भेद से दो प्रकार के होते हैं। इनमें से कृमि आदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरीन्द्रिय के भेद से विकलेन्द्रिय जीव तीन प्रकार के होते हैं। मनुष्य, देव और तिर्यञ्च ये सकलेन्द्रिय त्रस हैं। कृमि, सीप, शंख, बालुका, कौड़ी और जोंक आदि दो इन्द्रियों से चिह्नित इन जीवों को द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं। कुन्थु, खटमल, जू, बिच्छू, चींटी, दीमक और कनखजूरे आदि तीन इन्द्रियों से युक्त जीवों को त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं। मच्छर, भौंरा, डांस, पतङ्ग, मधुमक्खी, मक्खी और कोटक आदि चतुरिन्द्रिय जीव कहलाते हैं। जल-स्थल एवं नभचर तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और नारकी ये जीव पंचेन्द्रिय होते हैं, इन्हें ही जिनेन्द्र भगवान् ने सकलेन्द्रिय कहा है। इस प्रकार त्रस जीवों के भेद-प्रभेदों को भली प्रकार जानकर श्रावकों एवं तपोधनों को समितियों आदि के द्वारा अपनी आत्मा के सदृश ही सर्वत्र त्रस जीवों की रक्षा करना चाहिए। इस प्रकार जिनागम से

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पृथ्वीकाय आदि छह काय के जीवों के जाति भेदों को कहकर अब अनेक प्रकार के कुल भेदों को कहूँगा ॥७९-८६॥

अब भिन्न-भिन्न जीवों की कुल कोटियाँ कहते हैं—

द्वाविंशकोटिलक्षाणि पृथ्वीनां स्युः कुलानि च।
अप्कायासु मतां सप्तकोटी लक्षाणि तेजसाम् ॥८७॥
कुलत्रिकोटिलक्षाणि वायूनां च कुलान्यपि।
स्युः सप्तकोटिलक्षाणि वनस्पत्यङ्गिनां तथा ॥८८॥
कुलानि कोटिलक्षाणि ह्यष्टाविंशतिरेव हि।
द्वीन्द्रियाणां तथा सप्तकोटीलक्षकुलानि च ॥८९॥
त्रीन्द्रियाणां भवन्त्यष्टकोटिलक्षकुलान्यपि।
तुर्याक्षाणां नवैव स्युः कोटिलक्षकुलानि च ॥९०॥
अप्चराणां हि लक्षाणि सार्धद्वादशकोटयः।
कुलानि पक्षिणां द्वादशकोटिलक्षकानि च ॥९१॥
दशैव कोटिलक्षाणि कुलानि स्युश्चतुष्पदाम्।
नवैव कोटिलक्षाण्युरः सर्पाणां कुलानि च॥९२॥
षड्विंशकोटिलक्षाणि कुलानि स्युः सुधाभुजाम्।
पञ्चविंशतिकोटी लक्षाणि नारकजन्मिनाम् ॥९३॥
आर्यम्लेच्छ नभोगामिमनुष्याणां कुलानि च।
द्विसप्तकोटिलक्षाणीति सर्वेषां च देहिनाम् ॥९४॥
एकैवकोटिकोटीनवतिः सार्धनवाधिका।
कोटीलक्षाणि सिद्धान्ते कुलसंख्या जिनोदिता॥९५॥
इत्यङ्गकुलजात्यादीन् सम्यग्ज्ञात्वा बुधोत्तमैः।
षडङ्गिनां दया कार्या धर्मरत्नखनी सदा॥९६॥

अर्थ—(शरीर के भेदों की कारणभूत नाना प्रकार की नोकर्म वर्गणाओं को कुल कहते हैं) पृथ्वीकायिक जीवों की बाइस लाख कोटि, जलकायिक जीवों की सात लाख कोटि, अग्निकायिक जीवों की तीन लाख कोटि, वायुकायिक जीवों की सात लाख कोटि, वनस्पतिकायिक जीवों की २८ लाख कोटि, द्वीन्द्रिय जीवों की सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीवों की आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीवों की ९ लाख कोटि, जलचर जीवों की साढ़े बारह लाख कोटि, पक्षियों की बारह लाख कोटि, चतुष्पद (पशुओं) की दश लाख कोटि, छाती के सहारे चलने वाले सर्प आदिकों की नव लाख कोटि, देवों की २६ लाख कोटि, नारकी जीवों की २५ लाख कोटि तथा आर्य मनुष्य, म्लेच्छ मनुष्य और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विद्याधरों (इन सब) की चौदह लाख कोटि, इस प्रकार सम्पूर्ण कुल कहे गये है। जिनेन्द्र भगवान् ने आगम में पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण संसारी जीवों के कुल कोटि की संख्या का योग एक करोड़ निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि (१९९५०००००००००००) कहा है। इस प्रकार विद्वानों को जीवों के कुल और जाति आदि के भेदों को भली प्रकार जानकर धर्मरूपी रत्नों की खान के सदृश निरन्तर छह काय जीवों की दया में उपक्रम करना चाहिए ॥८७-९६॥

अब योनियों के भेद, प्रभेद, आकार और स्वामी कहते हैं—

सचित्ताचित्तमिश्राख्याः शीतोष्णमिश्रयोनयः।
संवृता विवृता मिश्राश्चेत्येता नवयोनयः॥९७॥
देवानां नारकाणां चाचित्तयोनिर्विचेतना।
गर्भजानां सचित्ताचित्तयोनिश्चेतनेतरा॥९८॥
एकाक्षद्वीन्द्रियाणां च त्र्यक्षतुर्येन्द्रियात्मनाम्।
नानापञ्चाक्षसम्मूर्च्छकानां केषाञ्चिदेव च ॥९९॥
सचित्तैकास्तिकेषाञ्चिदचित्तायोनिरञ्जसा ।
केषाश्चिन्मिश्रयोनिश्चेति त्रिधा योनयो मताः ॥१००॥
देवानां नारकाणां च केषांचिच्छीत योनयः।
उष्णयोनिश्च केषांचिदिति द्विविध योनयः ॥१०१॥
तेजसामुष्णयोनिः स्याच्छीतयोनिर्जलाङ्गिनाम्।
शेषाणां पृथ्वीवायुवनस्पतिशरीरिणाम् ॥१०२॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चाक्षगर्भेतरजन्मिनाम् ।
पृथगेकैक रूपेण शीताद्याःस्युस्त्रियोनयः ॥१०३॥
नारकैकाक्षदेवानां संवृत्तायोनिरस्ति च।
विवृता विकलाक्षाणां मिश्रा सा गर्भजन्मिनाम् ॥१०४॥
पुनर्गर्भाङ्गियोनीनां शुभाशुभोभयात्मनाम्।
सविशेषास्त्रिधा योनीर्वक्ष्ये योन्यघहानये ॥१०५॥
शङ्खावर्ताह्वया योनिः परा कूर्मोन्नताभिधा।
तृतीया वंशपत्राख्यात्रेति त्रिविधयोनयः ॥१०६॥
तीर्थेशाश्चक्रिणो रामा वासुदेवाश्चतद्द्विषः।
कूर्मोन्नतमहायोनौ जायन्ते स्फटिकोपमे ॥१०७॥
वंशपत्राख्य योनौ चोत्पद्यन्ते भोगभूमिजाः।
द्वियोन्योः प्राणिनोऽन्ये शङ्खावर्तवंशपत्रयोः ॥१०८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शङ्खावर्तकुयोनौ च नियमेन विनश्यति।
गर्भोऽशुभोऽङ्गिनामेतद्योनीनां लक्षणं भवेत् ॥१०९॥

अर्थ—सचित्त, अचित्त एवं सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण एवं शीतोष्ण, संवृत, विवृत एवं संवृत-विवृत (मिश्र) इस तरह योनियाँ नौ प्रकार की हैं। देव और नारकियों की योनियाँ आत्मप्रदेशों से रहित अचित्त होतीं हैं तथा गर्भज जीवों के सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि होती है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छन जन्म वाले पंचेन्द्रिय जीवों में से किन्हीं जीवों की सचित्त योनि है, किन्हीं की अचित्त योनि है और किन्हीं जीवों के सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि है। इस प्रकार सम्मूर्च्छन जन्म वालों के तीनों प्रकार की योनियाँ मानी गई हैं। देव और नारकियों में किन्हीं की शीत योनियाँ, किन्हीं की उष्ण योनियाँ और किन्हीं की शीतोष्ण योनियाँ होतीं हैं। अग्निकायिक जीवों की उष्ण योनि, जलकायिक जीवों की शीत योनि होती है। शेष पृथ्वी, वायु और वनस्पतिकायिक जीवों के तथा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और सम्मूर्च्छन जन्म वाले पंचेन्द्रिय जीवों के पृथक्-पृथक् एक-एक रूप से शीत आदि तीनों योनियाँ होती हैं। अर्थात् किन्हीं जीवों के शीत, किन्हीं के उष्ण और किन्हीं के मिश्र इस प्रकार तीनों योनियाँ होतीं हैं। देव, नारकी और एकेन्द्रिय जीवों के संवृत योनि होती है। विकलेन्द्रिय जीवों के विवृत (प्रकट) योनि और गर्भज जीवों के नियम से संवृत-विवृत (मिश्र) योनि होती है। इसके पश्चात् योनि सम्बन्धी पाप नाश के लिए शुभ अशुभ कर्मोदय से युक्त गर्भज जीवों के विशेषता पूर्वक तीन प्रकार की योनियाँ कहूँगा। प्रथम शंखावर्त, द्वितीय कूर्मोन्नत और तृतीय वंशपत्र नामक तीन प्रकार की योनियाँ होतीं हैं। स्फटिक की उपमा को धारण करने वाली कूर्मोन्नत नाम की महायोनि में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव उत्पन्न होते हैं। वंशपत्र नाम की योनि में भोगभूमिज और शंखावर्त एवं वंशपत्र इन दोनों में कर्मभूमिज आदि अन्य साधारण मनुष्य जन्म लेते हैं, किन्तु शंखावर्त नामक कुयोनि में नियम से गर्भ का विनाश होता है क्योंकि वह गर्भ अशुभ होता है। इस प्रकार जीवों की इन योनियों का लक्षण कहा है ॥९७-१०९॥

अब जीवों के शरीरों की अवगाहना का प्रतिपादन करते हैं—

पृथ्व्यप्तेजोमरुत्कायानां सूक्ष्मबादरात्मनाम्।
अङ्गुलस्याप्यसंख्यातभागतुल्यं वपुर्भवेत् ॥११०॥
सूक्ष्मापर्याप्तजातस्य निकोतस्याङ्गिनो मतम्।
तृतीये समये सर्वजघन्याङ्गं जगत्त्रये ॥१११॥
सर्वोत्कृष्टशरीरं स्यान्मत्स्यानां महतां भुवि।
तयोर्मध्ये परेषां स्युर्नाना देहानि देहिनाम् ॥११२॥

अर्थ—सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक जीवों के शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। त्रैलोक्य में सर्व जघन्य अवगाहना सूक्ष्म

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के उत्पन्न होने के तीसरे समय में होती है और शरीर की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्यों के होती है। इन दोनों (जघन्योत्कृष्ट) के बीच में अन्य जीवों के शरीर की मध्यम अवगाहना विविध प्रकार की होती है ॥११०-११२॥

अब जीवों के संस्थानों का कथन करते हैं—

पृथ्व्यङ्गिनां च संस्थानं मसूरिकाकणाकृतिः।
अप्कायानां हि संस्थानं दर्भाग्रबिन्दुसन्निभम् ॥११३॥
तेजः कायात्मनां तत् स्यात् सूचीकलापसम्मितम्।
संस्थानं वायुकायानां पताकाकारमेव च ॥११४॥
समादिचतुरस्त्रं च न्यग्रोधस्वातिकुब्जकाः।
वामनाख्यं हि हुण्डाख्यं संस्थानानीति षड्भुवि ॥११५॥
मनुष्याणां च पश्चाक्षतिरश्चां सन्ति तानि षट्।
देवानामादिसंस्थानं नारकाणां हि हुण्डकम् ॥११६॥
द्वित्रितुर्येन्द्रियाणां च सर्वेषां हरिताङ्गिनाम्।
अनेकाकारसंस्थानं हुण्डाख्यं स्याद् विरूपकम् ॥११७॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर का आकार मसूर के कण सदृश, जलकायिक जीवों के शरीर का आकार डाभ के अग्रभाग पर रखी हुई जलबिन्दु के सदृश, अग्निकायिकों का खड़ी सुइयों के समूह सदृश और वायुकायिक जीवों के शरीर का संस्थान ध्वजा के सदृश होता है। समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन और हुण्डक ये छह संस्थान संसारी जीवों के होते हैं। मनुष्यों और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के छहों संस्थान होते हैं। देवों के समचतुरस्र एवं नारकियों के हुण्डक संस्थान ही होते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के तथा सम्पूर्ण वनस्पतिकायिक जीवों के विविध आकारों को लिए हुए विरूप आकार वाला हुण्डक संस्थान होता है ॥११३-११७॥

अब संसारी जीवों के संहननों का विवेचन करते हैं—

म्लेच्छविद्येशमर्त्यानां संज्ञिपञ्चेन्द्रियात्मनाम्।
कर्मभूमिजतिरश्चां च सन्ति संहनानि षट् ॥११८॥
असंज्ञिविकलाक्षाणां लब्ध्यपर्याप्तदेहिनाम्।
अशुभं चान्तिमं हीनं षष्ठं संहननं भवेत् ॥११९॥
वज्रर्षभादिनाराचं वज्रास्थिमयवेष्ठितम्।
आद्यं च वज्रनाराचं वज्रास्थिजं द्वितीयकम् ॥१२०॥
नाराचं त्रीणि चेमानि सन्ति संहननानि च।
परिहारविशुद्ध्याख्यसंयमाप्तमुनीशिनाम् ॥१२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतुर्थमर्धनाराचं कीलिकाख्यं च पञ्चमम्।
असम्प्राप्तासृपाद्यादिकं त्रिसंहनानि च ॥१२२॥
इमानि स्युः स्फुटं कर्मभूमिजद्रव्ययोषिताम्।
भोगभूमिजनृस्त्रीणामाद्यं संहननं परम् ॥१२३॥
मिथ्यात्वाद्यप्रमत्तान्तगुणस्थानेषु सप्तसु।
प्रवर्तमानजीवानां सन्ति संहननानि षट् ॥१२४॥
अपूर्वकरणाभिख्येऽनिवृत्तिकरणाह्वये ।
सूक्ष्मादिसाम्परायाख्ये ह्युपशान्तकषायके ॥१२५॥
श्रेण्यामुपशमाख्यायां तिष्ठतां योगिनां पृथक्।
त्रीणि संहननानि स्युरादिमानि दृढानि च ॥१२६॥
अपूर्वकरणाख्ये चानिवृत्तिकरणाभिधे।
सूक्ष्मादिसाम्परायाख्ये क्षीणकषायनामनि ॥१२७॥
सयोगे च गुणस्थानेऽत्राद्यं संहननं भवेत्।
केवलं क्षपकश्रेण्यारोहणकृतयोगिनाम् ॥१२८॥
अयोगिजिननाथानां देवानां नारकात्मनाम्।
आहारकमहर्षीणामेकाक्षाणां वपूंषि च ॥१२९॥
यानि कार्मणकायानि व्रजतां परजन्मनि।
तेषां सर्वशरीराणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥१३०॥

अर्थ—म्लेच्छ मनुष्यों, विद्याधरों, मनुष्यों, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों और कर्मभूमिज तिर्यंचों के छहों संहनन होते हैं। असंज्ञी तिर्यंचों के, विकलेन्द्रिय जीवों के और लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के अन्तिम असम्प्राप्तसृपाटिका नाम का छठा अशुभ संहनन होता है। वज्रमय वृषभ, कीलें एवं अस्थि से युक्त और वज्रमय वेष्टन से वेष्टित पहला वज्रर्षभनाराच संहनन, वज्रमय नाराच (कीलों) व अस्थियों से युक्त दूसरा वज्रनाराच संहनन है और तीसरा नाराच संहनन है। ये तीनों संहनन परिहार विशुद्धि संयम से युक्त मुनिराजों के होते हैं। चौथा अर्धनाराच, पाँचवाँ कीलक और छठा असम्प्राप्तसृपाटिका ये तीनों संहनन कर्मभूमिज द्रव्य वेदी स्त्रियों के होते हैं। भोगभूमिज मनुष्यों और स्त्रियों के आदि का एक उत्कृष्ट संहनन होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान पर्यन्त सात गुणस्थानों में प्रवर्तमान जीवों के छहों संहनन होते हैं। उपशम श्रेणी गत अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय और उपशान्तकषाय गुणस्थानों में प्रवर्तमान मुनिराजों के आदि के तीन दृढ़ संहननों में से कोई एक होता है। क्षपक श्रेणीगत अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसांपराय, क्षीणकषाय और सयोगकेवलि गुणस्थानों में प्रवर्तमान मुनिराजों के आदि का मात्र एक वज्रर्षभनाराच संहनन ही होता है। अयोगी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जिनों के, देवों के, नारकियों के, आहारक शरीरी महाऋषिओं के एकेन्द्रिय जीवों के और आगामी पर्याय में जन्म लेने के लिए विग्रह गति में जाने वाले कार्मण काय युक्त जीवों के संहनन नहीं होता। अर्थात् इन जीवों का शरीर छहों संहननों से रहित होता है ॥११८-१३०॥

अब संसारी जीवों के वेदों का कथन करते हैं—

एकाक्षविकलाक्षाणां सर्वेषां नारकात्मनाम्।
सम्मूर्छनजपञ्चाक्षाणां वेदैको नपुंसकः ॥१३१॥
भोगभूमिभवार्याणां चतुर्विधसुधाभुजाम्।
विश्वानां भवतो वेदौ द्वौ स्त्रीपुंसंज्ञकौ भुवि ॥१३२॥
शेषाणां गर्भजानां च तिरश्चां मनुजात्मनाम्।
स्त्रीपुंनपुंसकाभिख्याः सन्ति वेदास्त्रयः पृथक् ॥१३३॥

अर्थ—सम्पूर्ण एकेन्द्रिय जीवों के, विकलेन्द्रिय जीवों के, नारकी जीवों के और सम्मूर्च्छन पंचेन्द्रिय जीवों के एक नपुंसक वेद ही होता है। भोगभूमिज आर्यों के तथा चारों निकायों के देवों के स्त्री और पुंवेद नाम वाले दो ही वेद होते हैं। शेष सम्पूर्ण मनुष्यों एवं तिर्यंच जीवों के पृथक्-पृथक्, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद नाम के तीनों वेद होते हैं ॥१३१-१३३॥

अब जीवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु का प्रतिपादन करते हैं—

मृदुपृथ्वीशरीराणामुत्कृष्टमायुरञ्जसा ।
द्विषड्वर्षसहस्राणि खरपृथ्वीमयात्मनाम् ॥१३४॥
द्वाविंशतिसहस्राणि वर्षाणां जीवितं परम्।
सप्तसहस्रवर्षाण्यप्कायानां सुष्ठुजीवितम् ॥१३५॥
तेजोमयकुकायानामायुर्दिनत्रयं भवेत्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि ह्यायुर्वाताङ्गिनां परम् ॥१३६॥
दशवर्षसहस्राण्यायुर्वनस्पति देहिनाम्।
वर्षाणि द्वादशैवायुः प्रवरं द्वीन्द्रियाङ्गिनाम् ॥१३७॥
त्रीन्द्रियाणां तथैकोनपञ्चाशद्दिनजीवितम्।
षण्मासप्रमितायुष्कं चतुरिन्द्रियजन्मिनाम् ॥१३८॥
मत्स्यानां परमायुः स्यात्पूर्वकोटिप्रमाणकम्।
सरीसृपाङ्गिनामायुर्नवपूर्वाङ्गसम्मितम् ॥१३९॥
द्वासप्ततिसहस्राब्दप्रममायुश्चपक्षिणाम् ।
उरगाणां द्विचत्वारिंशत्सहस्राब्दजीवितम् ॥१४०॥
एकाक्षद्वित्रितुर्याक्षाणां जघन्यायुरिष्यते।
कृताष्टादशभागानामुच्छ्वासस्यैक भागकः ॥१४१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

संज्ञिनामल्पमृत्यादियुतापुण्यनृणां भवेत्।
अन्तर्मुहूर्तमायुष्यं सर्वजघन्यमत्र च ॥१४२॥

अर्थ—मृदु पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष की, खर पृथ्वीकायिक जीवों की बाइस हजार वर्ष की, जलकायिक जीवों की उत्कृष्टायु सात हजार वर्ष की, अग्निकायिक जीवों की तीन दिन की और वायुकायिक जीवों की तीन हजार वर्ष की उत्कृष्ट आयु है। वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु दस हजार वर्ष की, द्वीन्द्रिय जीवों की बारह वर्ष, त्रीन्द्रिय जीवों की उनचास (४९) दिन की और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह मास प्रमाण होती है। महामत्स्यों की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व की, सरीसृप जीवों की नव पूर्वांग अर्थात् सात करोड़ ५६ लाख वर्षों की, पक्षियों की बहत्तर हजार वर्षों की और सर्पों की बयालीस हजार वर्षों की उत्कृष्ट आयु होती है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य आयु श्वास के अठारह भागों में से एक भाग प्रमाण होती है। गर्भज संज्ञी जीवों की अल्पायु और पुण्यहीन गर्भज मनुष्यों की सर्व जघन्य आयु मात्र अन्तर्मुहूर्त प्रमाण की होती है ॥१३४-१४२॥

नोट—लब्ध्यपर्याप्तक, संज्ञी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों की तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों की जघन्यायु श्वास के अठारहवें भाग होती है।

अब स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियों की आकृति दर्शाते हैं—

श्रोत्रेन्द्रियस्य संस्थानं यवनालसमाकृतिः।
चक्षुरिन्द्रियसंस्थानं वृत्तं मसूरिकासमम् ॥१४३॥
संस्थानं घ्राणखस्यास्त्यतिमुक्तपुष्पसंनिभम्।
जिह्वेन्द्रियस्य संस्थानमर्धचन्द्रसमानकम् ॥१४४॥
स्पर्शेन्द्रियसंस्थानमनेकाकारमस्ति च।
समादिचतुरस्त्रादि भेदभिन्नं च षड्विधम् ॥१४५॥

अर्थ—कर्णेन्द्रिय का आकार यव की नाली के सदृश, चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर सदृश (गोल) घ्राणेन्द्रिय का आकार तिल के पुष्प सदृश और जिह्वा इन्द्रिय का आकार अर्धचन्द्र सदृश कहा गया है। स्पर्शनेन्द्रिय का आकार अनेक प्रकार का होता है क्योंकि समचतुरस्र आदि के भेदों से संस्थान छह प्रकार के होते हैं ॥१४३-१४५॥

अब इन्द्रियों के भेद प्रभेद कहते हैं—

द्रव्यभावविभेदाभ्यामिन्द्रियं द्विविधं स्मृतम्।
अन्तर्निवृत्ति बाह्योपकरणाद्द्रव्यखं द्विधा ॥१४६॥
लब्ध्युपयोग भेदाभ्यां द्विधा भावेन्द्रियं मतम्।
अन्तरात्मप्रदेशोत्थं कर्मक्षयसमुद्भवम् ॥१४७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—द्रव्येन्द्रियों और भावेन्द्रियों के भेद से इन्द्रियाँ दो प्रकार की होतीं हैं। इनमें अभ्यन्तर में रचना और बाह्य में उपकरणों के भेद से द्रव्येन्द्रियाँ दो प्रकार की तथा लब्धि एवं उपयोग के भेद से कर्मों के क्षयोपशम से आत्म प्रदेशों में उत्पन्न होने वालीं भावेन्द्रियाँ भी दो प्रकार की हैं ॥१४६-१४७॥

अब पाँचों इन्द्रियों के विषयों का स्पर्श कहते हैं—

पृथिव्यादिवनस्पत्यन्तैकाक्षाणां मतः श्रुते।
स्पर्शाख्यो विषयो लोके धनुःशतचतुष्टयम् ॥१४८॥
द्वीन्द्रियाणां भवेत्स्पर्शविषयो दूरतो भजन्।
स्पर्शाक्षेण विषयार्थान् धनुरष्टशतप्रमः ॥१४९॥
विषयो रसनाख्योत्थश्चतुः षष्टि धनुः प्रमः।
त्रीन्द्रियासुमतां स्पर्श विषयः स्पर्शन क्षमः ॥१५०॥
स्पर्शार्थानां च चापानां स्यात्षोडशशतप्रमः।
जिह्वाक्ष विषयश्चापशताष्टाविंशतिर्भवेत् ॥१५१॥
घ्राणाक्षविषयव्याप्तिर्धनुषां शतमानकः।
चतुरिन्द्रियजीवानां विषयः स्पर्शनाक्षजः ॥१५२॥
द्वात्रिंशच्छतचापानि विषयो रसनाक्षजः।
धनुषां द्विशते षट् पञ्चाशदग्ररसादिवित् ॥१५३॥
घ्राणाख्यविषयश्चापशतद्वयप्रमाणकः ।
विषयश्चक्षुरक्षोत्थो दूरार्थदर्शको भवेत् ॥१५४॥
चतुःपञ्चाशदग्रैकोनत्रिंशच्छतयोजनः ।
असंज्ञिपञ्चखानां च विषयः स्पर्शनप्रजः।१५५॥
चापानां हि चतुःषष्टिः शतानि रसनाक्षजः।
विषयो धनुषां द्वादशाग्रपञ्चशतानि च ॥१५६॥
विषयो घ्राणरवोत्पन्नो धनुः शतचतुः प्रमः।
चक्षुरिन्द्रियसंजात विषयो रूपिदर्शकः।१५७॥
योजनानां किलाष्टाग्रैकोनषष्टिशतप्रमः।
श्रोत्राक्ष विषयश्चापाष्टसहस्त्रप्रमाणकः ॥१५८॥
संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां च स्पर्शाक्षस्याखिलोत्तमः।
रसनाक्षस्य हि घ्राणेन्द्रियस्य विषयो भुवि ॥१५८॥
प्रत्येकं वर्तते स्वस्वार्थेयोजननवप्रमः।
सहस्त्राः सप्तचत्वारिंशत्त्रिषष्ट्यधिके शते ॥१६०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्वे महायोजनानां चैकक्रोशो धनुषां तथा।
दण्डपञ्चदशाग्राणि द्वादशैव शतानि च ॥१६१॥
हस्तैको यवतुर्यांशाग्रेद्वेऽङ्गुलेऽखिलोत्तमाः।
इत्यस्ति संज्ञिनां चक्षुर्विषयो दूरदर्शकः ॥१६२॥
श्रोत्रस्य विषयो ज्येष्ठो योजनद्वादशप्रमः।
पञ्चैते विषयोत्कृष्टा ज्ञेया महर्षिचक्रिणाम् ॥१६३॥

अर्थ—आगम में पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त एकेन्द्रिय जीवों के स्पर्श का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ४०० धनुष कहा है। द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्श का विषय क्षेत्र ८०० धनुष है और इन्हीं द्वीन्द्रिय जीवों के रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ६४ धनुष प्रमाण है। त्रीन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १६०० धनुष, रसनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १२८ धनुष और घ्राणेन्द्रिय का विषय क्षेत्र १०० धनुष प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र ३२०० धनुष, रसनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र २५६ धनुष, घ्राणेन्द्रिय का विषय क्षेत्र २०० धनुष और चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र २९५४ योजन प्रमाण होता है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का स्पर्शनेन्द्रिय का विषय क्षेत्र ६४०० धनुष, रसनेन्द्रिय का ५१२ धनुष, घ्राणेन्द्रिय का ४०० धनुष, चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ५९०८ योजन और श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ८०० धनुष प्रमाण होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ९ योजन, रसनेन्द्रिय का ९ योजन, घ्राणेन्द्रिय का ९ योजन, चक्षुरिन्द्रिय का विषय क्षेत्र ४७२६३ योजन १ कोस, १२१५ धनुष, १$\frac{१}{४}$ हाथ २ अंगुल और $\frac{१}{४}$ यव प्रमाण है, तथा श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय क्षेत्र १२ योजन प्रमाण है, चक्षुरिन्द्रिय आदि का यह उत्कृष्ट विषय क्षेत्र ऋद्धिवान् मुनिराजों एवं चक्रवर्तियों के ही होता है।

अब एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या का प्रमाण कहते हैं—

अथैकाक्षादिजीवानां प्रमाणं पृथगुच्यते।
वनस्पतौ निकोदाङ्गिनोऽनन्ताः प्रोदिता जिनैः ॥१६४॥
पृथ्वीकायिका अप्कायिकास्तेजोमयाङ्गिनः।
वायुकाया इमे सर्वे प्रत्येकं गदिता जिनैः ॥१६५॥
असंख्यलोकमात्राश्चासंख्यलोकस्य सन्त्यपि।
यावन्तोऽत्रप्रदेशास्तावन्मात्राः सूक्ष्मकायिकाः ॥१६६॥
पुनस्ते पृथ्वीकायाद्याश्चतुर्विध बादराः।
पृथग् वासंख्यमात्रा अयं विशेषोऽस्ति चागमे ॥१६७॥
द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियास्तुर्येन्द्रियाः पञ्चेन्द्रिया मताः।
प्रत्येकं चाप्यसंख्याताः श्रेणयः परमागमे ॥१६८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रतराङ्गुलसंज्ञस्यासंख्येयभाग सम्मिताः।
अथ वक्ष्ये गुणस्थानैः संख्याश्वभ्रादिजाङ्गिनाम् ॥१६९॥

अर्थ—अब एकेन्द्रिय आदि जीवों का पृथक्-पृथक् प्रमाण कहते हैं। वनस्पतिकायिक जीवों में जिनेन्द्र भगवान् ने निगोद जीवों को अनन्तानन्त कहा है। जिनेन्द्रदेव के द्वारा बादर पृथ्वीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीव असंख्यात लोक मात्र अर्थात् असंख्यातासंख्यात कहे गये हैं और असंख्यात लोक के प्रदेशों का जितना प्रमाण है पृथक्-पृथक् उतने ही प्रमाण सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक तथा सूक्ष्म वायुकायिक जीव कहे गये हैं। पुनः बादर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीव पृथक्-पृथक् असंख्यात-असंख्यात ही हैं, आगम में यह विशेष है। परमागम में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीवों का पृथक्-पृथक् प्रमाण असंख्यात श्रेणी कहा गया है अर्थात् द्वीन्द्रिय जीव असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं, त्रीन्द्रिय जीव असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं, इत्यादि (परन्तु पूर्व-पूर्व द्वीन्द्रियादिक की अपेक्षा उत्तरोत्तर त्रीन्द्रियादिक का प्रमाण क्रम से हीन-हीन है और इसका प्रतिभागहार आवलि का असंख्यातवाँ भाग है)। असंख्यात श्रेणी का प्रमाण प्रतरांगुल का असंख्यातवाँ भाग माना गया है। अब मैं गुणस्थानों के माध्यम से नरकादि गतियों में उत्पन्न जीवों की संख्या कहूँगा ॥१६४-१६९॥

अब प्रत्येक गतियों के गुणस्थानों में जीवों का प्रमाण कहा जाता है—

नरकगतौ प्रथमपृथ्व्या मिथ्यादृष्टयः नारका-असंख्याताः श्रेणयः घनाङ्गुलस्य किञ्चिदून द्वितीय-वर्गमूल मात्राः, द्वितीयादिषु सप्तमान्तेषु श्वभ्रेषु मिथ्यादृष्टयो नारकाः श्रेण्यसंख्येय भागमात्राः, सर्वासु नरकभूमिषु सासादनसम्यमिथ्यादृष्टद्यसंयत नारकाः पल्योपमासंख्यातभागप्रमाः। तिर्यग्गतौ मिथ्यादृष्टयः जीवाः अनन्ताः। सासादन सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयता देशसंयतजीवाः पल्योपमा संख्येयभागमात्राः। मनुष्यगतौ मनुष्याः मिथ्यादृष्टयः श्रेण्यसंख्येयभाग प्रमाणाः, स चासंख्येयभागः असंख्याताः योजनकोटिकोट्यः। सासादनगुणस्थानवर्तिनः द्विपञ्चाशत्कोटिप्रमाः स्युः। तृतीयगुणस्थानवर्तिनः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः चतुरधिकैक-शतकोटिमात्राः। अविरतगुणस्थानस्थः अविरतसम्यग्दृष्टयः सप्तशतकोटी सम्मिताः। देशविरतगुणस्थानाश्रिताः। संयतासंयताः त्रयोदशकोटी मात्राः उत्कर्षेण सन्ति। प्रमत्त-गुणस्थानस्थाः प्रमत्तसंयताः पंचकोटित्रिनवति लक्षाष्टनवतिसहस्रद्विशतषट्प्रमाणा उत्कृष्टेन सन्ति। अप्रमत्तगुणस्थानका अप्रमत्तसंयताद्विकोटिषण्णवति-लक्षनवनवति सहस्रैकशतत्रिसंख्यानाः भवंति। अपूर्वकरणगुणस्थानस्थिताउपशमिकाः नवनवत्यधिक-द्विशतप्रमाः स्युः। क्षपकश्रेण्याश्रिताः क्षपकाः अष्टानवत्यधिकपञ्चशतप्रमाणाश्च। अनिवृत्तिगुणस्थानवर्तिनः उपशमिकाः नवनवत्यग्रद्विशतप्रमाः स्युः। क्षपकाः अष्टानवत्यधिकपञ्चशतसम्मिताश्च। सूक्ष्मसाम्पराय-गुणस्थानस्थिता उपशमश्रेण्यारोहिता उपशमिका मुनयः नवनवत्यधिकद्विशतमानाः भवन्ति। क्षपकश्रेण्यारोहिताः क्षपकाः यतयः अष्टानवत्यधिकपञ्चशतसंख्यकाश्च। उपशांतकषाय गुणस्थानस्थिता उपशमिकाः नवनवति-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

युतद्विशतप्रमाः स्युः। क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनः क्षपकाः अष्टानवतियुक्तपञ्चशतसम्मिताश्च। सयोग-गुणस्थानाश्रिताः सयोगिजिनाः अष्टलक्षाष्टानवति सहस्रपञ्चशत द्विप्रमाणाः भवेयुः। अयोगगुणस्थान-स्थिताः अयोगिजिनाः अष्टानवतियुतपञ्चशत प्रमाः उत्कृष्टेन स्युः। एते सर्वे पिण्डीकृताः प्रमत्ताद्ययोगि-गुणस्थानपर्यंत वर्तिनस्तपोधनाः त्र्यूननवकोटिप्रमाः उत्कृष्टेन सार्धद्वीपद्वये चतुर्थकाले भवन्ति। देवगतौ मिथ्यादृष्टयो ज्योतिष्कव्यन्तरादेवाः असंख्याताः श्रेणयः प्रतरासंख्येयभागप्रमिताः। भवनवासिनः मिथ्यादृष्टयोऽमराः असंख्याता श्रेणयः घनाङ्गुलप्रथमवर्गमूलप्रमाणाः स्युः। सौधर्मैशानवासिनो नाकिनः मिथ्यादृष्टयः असंख्याताः श्रेणयः घनाङ्गुलतृतीयवर्गमूलप्रमिताः। सनत्कुमारादि कल्पकल्पातीत वासिनो मिथ्यादृष्टयोऽमराः श्रेण्य-संख्येयभागप्रमिताः असंख्यातयोजनकोटीप्रदेशमात्रा स्युः। ज्योतिष्कव्यन्तराः भवनवासिनः सौधर्मैशाननाकिनः। सनत्कुमारादिकल्पकल्पातीतवासिनः सासादन सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यविरताः प्रत्येकं पल्योपमासंख्येयभागप्रमाणाः सन्ति।

अर्थ—नरकगतिगत प्रथम नरक में मिथ्यादृष्टि नारकी जीव असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं, जो घनांगुल के कुछ कम द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है। द्वितीय पृथ्वी से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त के छह नरकों में मिथ्यादृष्टि जीव श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। सातों नरक भूमियों में सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का पृथक्-पृथक् प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भाग है। तिर्यंचगति में मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और देशसंयत जीव पृथक् पृथक् पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। मनुष्यगति में मिथ्यादृष्टि मनुष्य श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, और वह श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन प्रमाण है। सासादन गुणस्थानवर्ती जीव ५२ करोड़ प्रमाण हैं। तृतीय गुणस्थानवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्य १०४ करोड़ प्रमाण, चतुर्थ गुणस्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य ७०० करोड़ प्रमाण, पंचम गुणस्थान में देशसंयत मनुष्य उत्कृष्टतः १३ करोड़ प्रमाण हैं। प्रमत्त गुणस्थान में प्रमत्तसंयत मुनिराज उत्कृष्टतः ५९३९८२०६ हैं। अप्रमत्त गुणस्थान में अप्रमत्तसंयत मुनिराज २९६९९१०३ हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान में उपशम श्रेणीगत योगी २९९ हैं और क्षपक श्रेणीगत क्षपक जीव ५९८ हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उपशम श्रेणिगत जीव २९९ और क्षपक श्रेणिगत ५९८ हैं। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में उपशम श्रेणि आरोहित मुनिराज २९९ हैं और क्षपकश्रेणिगत मुनिराज ५९८ हैं। उपशान्तकषाय गुणस्थान स्थित मुनिराजों का प्रमाण २९९ है तथा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती योगियों का प्रमाण ५९८ है। सयोग गुणस्थान में सयोगिजिनों की सर्वोत्कृष्ट संख्या प्रमाण ८९८५०२ है। अयोग गुणस्थान स्थित अयोगिजिनों का प्रमाण उत्कृष्टतः ५९८ होता है। चतुर्थकाल में अढ़ाई द्वीप स्थित छठे गुणस्थान से १४ वें गुणस्थान पर्यन्त के सर्व योगिराजों का योग करने पर सर्व तपोधनों का उत्कृष्ट प्रमाण ८९९९९९९७ अर्थात् तीन कम नौ करोड़ प्राप्त होता है।

देवगति में ज्योतिष्क और व्यन्तर देवों का प्रमाण असंख्यात श्रेणी स्वरूप प्रतर के असंख्यातवें

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भाग प्रमाण और भवनवासी मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात श्रेणी स्वरूप अर्थात् घनांगुल के प्रथम वर्गमूल प्रमाण श्रेणी हैं। सौधर्मैशान स्वर्गों में मिथ्यादृष्टि देव असंख्यात श्रेणी स्वरूप अर्थात् घनांगुल के तृतीय वर्गमूल प्रमाण श्रेणियाँ हैं। सानत्कुमारादि कल्पों में और कल्पातीत स्वर्गों में मिथ्यादृष्टि देव श्रेणी के असंख्यातवें भाग अर्थात् असंख्यात योजन करोड़ क्षेत्र के जितने प्रदेश हैं उतनी संख्या प्रमाण हैं। ज्योतिष्कों, व्यन्तरवासी देवों, सौधर्मैशान स्वर्गों, सानत्कुमारादि कल्पों और कल्पातीत विमानों में सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों का प्रत्येक स्थानों में पृथक्-पृथक् प्रमाण पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र है।

अब जीवों के प्रमाण का अल्पबहुत्व कहते हैं—

चतुर्गतिषु संसारे मध्ये स्युः सकलाङ्गिनाम्।
अत्यल्पा मानवाः श्रेण्यसंख्येयभागमात्रकाः ॥१७०॥
मनुष्येभ्योऽप्यसंख्यातगुणानरकयोनिषु ।
नारकाः स्युरसंख्याताः श्रेणयो दुःखविह्वलाः ॥१७१॥
नारकेभ्योऽप्यसंख्यातगुणादेवाश्चतुर्विधाः ।
भवन्ति प्रतरासंख्येयभागसम्मिताः शुभाः ॥१७२॥
देवेभ्यः सिद्धनाथाः स्युरनन्तगुणमानकाः।
सिद्धेभ्योऽखिलतिर्यञ्चः सन्त्यनन्तगुणप्रमाः ॥१७३॥

अर्थ—इस चतुर्गति संसार में पंचेन्द्रिय जीवों में मनुष्य सबसे स्तोक हैं, इनका प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवें भाग मात्र है। नरक भूमियों में दुःख से विह्वल नारकी जीव मनुष्यों से असंख्यातगुणे हैं, जो असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं। नारकियों से असंख्यातगुणे चतुर्निकाय के देव हैं, जो प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। देवों से अनन्त गुणे सिद्ध भगवान् हैं और सिद्धों से अनन्त गुणे तिर्यंच जीव हैं ॥१७०-१७३॥

अब नरकगति अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं—

सप्तमे नरके सन्ति सर्वस्तोकाश्च नारकाः।
तेभ्योऽपि नारकेभ्यः स्युरुपर्युपरिवर्तिषु ॥१७४॥
षट्पृथ्वी नरकेष्वत्र नारकाः सुखदूरगाः।
असंख्यातगुणाः प्रत्येकं दुःखाम्बुधिमध्यगाः ॥१७५॥

अर्थ—सप्तम नरक में नारकी जीव सबसे स्तोक हैं। सप्तम नरक के नारकियों से ऊपर-ऊपर की छहों नरक पृथिवियों में दुःखरूपी समुद्र के मध्य डूबे हुए अत्यन्त दुःखी नारकी जीव असंख्यात गुणे असंख्यात गुणे अधिक अधिक हैं। अर्थात् सप्तम नरक के नारकियों से छठे नरक के नारकी असंख्यात गुणे, छठे से पाँचवें में असंख्यात गुणे इत्यादि ॥१७४-१७५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अमीषां सप्तनरकपृथ्वीषु व्यासेन पृथक् पृथक् संख्यानिगद्यते–

सप्तम्यां पृथिव्यां सर्वस्तोकाः नारकाः। श्रेण्यसंख्येयभागप्रमाणाः श्रेणिद्वितीयवर्गमूलेन खण्डित-श्रेणिमात्राः तेभ्यः सप्तमपृथ्वीनारकेभ्यः। षष्ट्यां पृथ्व्यां नारकाः असंख्यातगुणाः, श्रेणितृतीयवर्गमूलेनापहृत्य श्रेणि मात्राः स्युः, षष्टपृथ्वीनारकेभ्यः। पञ्चम्यां पृथ्व्यां नारकाः असंख्येयगुणाः, श्रेणि षष्ट वर्गमूलापहृतस्य श्रेणिमात्राश्च पञ्चमपृथ्वीनारकेभ्यः। चतुर्थ्यां पृथ्व्यां नारकाः असंख्यातगुणाः, श्रेण्यष्टमवर्गमूलापहृत श्रेणिसम्मिताः चतुर्थपृथ्वीनारकेभ्यः। तृतीयायां पृथिव्यां नारकाः असंख्येयगुणाः, श्रेणि दशमवर्गमूलापहृत श्रेणि लब्धमात्राः, तृतीयपृथ्वीनारकेभ्यः। द्वितीयायां पृथ्व्यां नारकाः असंख्यातगुणाः श्रेणिद्वादश-वर्गमूलखण्डित श्रेण्यैकभाग परिमिताः स्युः। द्वितीय पृथ्वी नारकेभ्यः प्रथमायां पृथिव्यां नारका असंख्यातगुणाः, घनाङ्गुलवर्गमूलमात्राः श्रेणयो भवन्ति।

अर्थ–सप्तम पृथ्वी में नारकी जीव सबसे कम अर्थात् श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। (सात राजू की श्रेणी होती है) श्रेणी के दूसरे वर्गमूल से श्रेणी को भाग करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, उतने प्रमाण सप्तम नरक के नारकी जीवों की संख्या है। सप्तम पृथ्वी से छठी पृथ्वी में नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं। श्रेणी के तृतीय वर्गमूल से श्रेणी को अपहृत (भागित) करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने प्रमाण नारकी जीव छठी पृथ्वी में हैं। छठी पृथ्वी से पाँचवीं पृथ्वी के नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं। श्रेणी के छठे वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने प्रमाण पाँचवें नरक के नारकी जीवों की संख्या है। पाँचवीं पृथ्वी से चतुर्थ पृथ्वी में नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं। श्रेणी के अष्टम वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जितना लब्ध प्राप्त होता है, उतने ही प्रमाण चतुर्थ पृथ्वी के नारकी जीवों का है। चतुर्थ पृथ्वी से तृतीय पृथ्वी के नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं। श्रेणी के दसवें वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण जीव तृतीय पृथ्वी में हैं। तृतीय पृथ्वी से द्वितीय पृथ्वी के नारकी जीव असंख्यातगुणे हैं। श्रेणी के बारहवें वर्गमूल से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उतने प्रमाण जीव द्वितीय पृथ्वी में हैं, वे श्रेणी के एक भाग प्रमाण प्राप्त होते हैं। द्वितीय पृथ्वी से प्रथम पृथ्वी के नारकी जीव असंख्यात गुणे हैं, वे संख्या में घनांगुल के वर्गमूल प्रमाण श्रेणियों के बराबर हैं अर्थात् श्रेणी को घनांगुल के वर्गमूल से गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो तत्प्रमाण (प्रथम पृथ्वी में नारकी) हैं।

अब तिर्यंचगति की अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं–

पञ्चेन्द्रिया हि तिर्यञ्चः सर्वस्तोका महीतले।
भवन्ति प्रतरासंख्यातभाग प्रमितास्ततः ॥१७६॥
पञ्चाक्षेभ्यश्चतुर्याक्षाः स्युर्विशेषाधिका भुवि।
स्वकीयराश्यसंख्यातभागमात्रेण दुःखिनः ॥१७७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तुर्याक्षेभ्यस्तथा द्वीन्द्रियाः विशेषाधिका मताः।
विशेषाः स्वस्वराशेश्चासंख्यातभागमात्रकाः ॥१७८॥
द्वीन्द्रियेभ्यस्तथा त्रीन्द्रिया विशेषाधिकाः स्मृताः।
विशेषः स्वस्वराशेरसंख्येयभागमात्रकाः ॥१७९॥
त्रीन्द्रियेभ्यस्तथैकाक्षा अनन्तगुणसम्मिताः।
अथ वक्ष्ये नृणां संख्याल्पबहुत्वं यथागमम् ॥१८०॥

अर्थ—तिर्यंच राशि की अपेक्षा संसार में पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव सर्व स्तोक अर्थात् प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से अत्यन्त दुःख से युक्त चतुरिन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं। अर्थात् पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की राशि के असंख्यातवें भाग प्रमाण अधिक हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों से द्वीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं। वह विशेष का प्रमाण अपनी-अपनी राशि अर्थात् चतुरिन्द्रिय राशि का असंख्यातवाँ भाग है। द्वीन्द्रिय जीव राशि से त्रीन्द्रिय जीव विशेष अधिक हैं। विशेष का प्रमाण अपनी-अपनी राशि अर्थात् द्वीन्द्रिय जीव राशि का असंख्यातवाँ भाग मात्र है। त्रीन्द्रिय जीव राशि के प्रमाण से एकेन्द्रिय जीव राशि अनन्तगुणी अधिक है। अब मैं आगम के अनुसार मनुष्यों की संख्या का अल्पबहुत्व कहूँगा ॥१७६-१८०॥

अब मनुष्य गति में स्थित मनुष्यों का अल्पबहुत्व कहते हैं—

भवन्ति नृगतौ सर्वस्तोकाः संख्यातमानवाः।
अन्तर्द्वीपेषु विश्वेषु पिण्डितास्तेभ्य एव च ॥१८१॥
अन्तर्द्वीपमनुष्येभ्यः संख्यातगुणसम्मिताः।
दशसूत्कृष्टसद्भोग भूमिषु प्रवरा नराः ॥१८२॥
तेभ्यो मर्त्याश्च संख्यातगुणाधिका जिनैः स्मृताः।
हरिरम्यक वर्षेषु द्विपञ्चसु सुभोगिनः ॥१८३॥
तेभ्य आर्याश्च संख्यातगुणा दशसु सन्ति वै।
सु हैमवतहैरण्यवतान्त भोगभूमिषु ॥१८४॥
तेभ्योऽपि भरतैरावतेषु द्विपञ्चसु स्फुटम्।
कर्मभूमिषु संख्यातगुणा नराः शुभाशुभाः ॥१८५॥
तेभ्यः पञ्चविदेहेषु संख्यातगुणमानवाः।
तेभ्यः सन्मूर्च्छनोत्पन्ना असंख्यातगुणा नराः ॥१८६॥
भवन्ति श्रेण्यसंख्यातैकभागमात्रका अपि।
स च श्रेणेरसंख्यातभाग आख्यात आगमे ॥१८७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

असंख्ययोजनैः कोटीकोटिप्रदेशमात्रकाः।
एते स्युर्लब्ध्यपर्याप्ता मर्त्याः सम्मूर्छनोद्भवाः ॥१८८॥
नाभौस्तनान्तरे योनौ कक्षायां च निसर्गतः।
सूक्ष्मा नरा इमे स्त्रीणां जायन्ते दृष्ट्यगोचराः ॥१८९॥
शेषा ये गर्भजा मर्त्याः पर्याप्तास्ते न चेतराः।
अथ देवगतौ वक्ष्येऽल्पबहुत्वं जिनागमात् ॥१९०॥

अर्थ—मनुष्यगति में लवणोदधि और कालोदधि समुद्रों में स्थित ९६ अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों का प्रमाण एकत्रित करने पर भी वे सर्व स्तोक हैं। अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों से पंचमेरु सम्बन्धी दस उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्य संख्यात गुणे हैं। उत्कृष्ट भोगभूमियों के मनुष्यों से पंचमेरु सम्बन्धी हरि-रम्यक नामक दश मध्यम भोगभूमियों के मनुष्य संख्यात गुणे हैं। मध्यम भोगभूमियों से हैमवत-हैरण्यवत नामक १० जघन्य भोगभूमियों के मनुष्य संख्यात गुणे हैं और जघन्य भोगभूमियों के प्रमाण से पंच भरत, पंच ऐरावत नामक दस कर्मभूमियों में शुभ अशुभ कर्मों से युक्त मनुष्य संख्यात गुणे हैं। कर्मभूमिज मनुष्यों के प्रमाण से पंच विदेह क्षेत्रों के मनुष्य संख्यात गुणे हैं और विदेहस्थ मनुष्यों के प्रमाण से सम्मूर्च्छन मनुष्यों का प्रमाण असंख्यात गुणा है। जो श्रेणी के असंख्यात भागों में से एक भाग मात्र हैं। आगम में उस श्रेणी के असंख्यातवें भाग का प्रमाण असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन क्षेत्र के जितने प्रदेश होते हैं, उतने प्रमाण कहा है, अतः सम्मूर्च्छन जन्म वाले लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों का भी यही प्रमाण है। दृष्टि अगोचर ये सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य कर्मभूमिज स्त्रियों की नाभि, योनि, स्तन और कांख में स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। इन अपर्याप्तक मनुष्यों से अवशेष गर्भज मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं, अपर्याप्तक नहीं। अब आगमानुसार देवगति में अल्पबहुत्व कहते हैं ॥१८१-१९०॥

अब देवगति अपेक्षा अल्पबहुत्व कहते हैं—

विमानवासिनः स्तोकादेवा देव्यो भवन्ति च।
तेभ्योऽसंख्यगुणाः सन्ति दशधा भावनामराः ॥१९१॥
तेभ्योऽसंख्यगुणा देवा व्यन्तरा अष्टधा मताः।
तेभ्यः पञ्चविधा ज्योतिष्काः संख्यातगुणाः स्मृताः ॥१९२॥

अर्थ—देवगति में विमानवासी देव देवियों का प्रमाण सर्व स्तोक है। विमानवासी देवों के प्रमाण से दस प्रकार के भवनवासी देवों का प्रमाण असंख्यात गुणा है। भवनवासी देवों से आठ प्रकार के व्यन्तर देवों का प्रमाण असंख्यात गुणा है और व्यन्तर देवों से पाँच प्रकार के ज्योतिषी देवों का प्रमाण संख्यात गुणा है ॥१९१-१९२॥

पुनर्देवानां प्रत्येकमल्पबहुत्वमुच्यते—

सर्वार्थसिद्धौ स्तोका अहमिन्द्रामराः स्युः। तेभ्यो विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानवानुत्तरेषु

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अहमिन्द्राः असंख्यातगुणाः पल्योपमासंख्यातभागप्रमिताश्च। तेभ्यो नवग्रैवेयकानतप्राणतारणाच्युतेषु देवाः असंख्यातगुणाः पल्योपमासंख्यातभागसम्मिताः। तेभ्यः शतारसहस्त्रार कल्पयोर्नाकिनः असंख्यातगुणाः, श्रेणिचतुर्थ-वर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभाग प्रमाः तेभ्यः शुक्रमहाशुक्रयोर्देवा असंख्यातगुणाः, श्रेणि पञ्चमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागसम्मिताः। तेभ्यः लान्तवकापिष्ठयोर्गीर्वाणा असंख्यातगुणाः, श्रेणिसप्तमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागप्रमिताः। तेभ्यो ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोरमराः असंख्यातगुणाः, श्रेणिनवमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागमात्राः। तेभ्यः सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवाः असंख्यातगुणाः, श्रेण्येकादशमवर्गमूलखण्डित श्रेण्येकभागमात्राः। तेभ्यः सौधर्मैशानयोः गीर्वाणाः असंख्याताः। एते सर्वे सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तविमानवासिनोऽमराः असंख्यातश्रेणि मात्राः घनाङ्गुलतृतीयवर्गमूल मात्राः साधिकाः श्रेणयः। तेभ्यः असंख्यातगुणाः दशविधा भवनवासिनः असंख्यातश्रेणयः घनाङ्गुलप्रथमवर्गमूलमात्राः श्रेणयः। तेभ्यः असंख्यातगुणाः, अष्टप्रकाराः व्यन्तरामराः प्रतरासंख्यात-भागमात्राः संख्यातप्रतराङ्गुलैः श्रेणेर्भागे हृते यल्लब्धं तावन्मात्राः श्रेणयो भवन्ति। तेभ्यः पञ्चविधा ज्योतिष्काः संख्यातप्रमाः प्रतरासंख्यातभागमात्राः पूर्वोक्त संख्यातगुणहीनसंख्येयप्रतराङ्गुलैःश्रेणेर्भागे हृते तावन्मात्राः श्रेणयो भवन्ति।

अब देवों का भिन्न-भिन्न अल्पबहुत्व कहते हैं—

देवगति गत सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव सबसे स्तोक हैं। इनसे विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित में तथा नवोत्तर विमानों में स्थित सर्व अहमिन्द्र देव असंख्यात गुणे अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इनसे नव ग्रैवेयक, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्गों के देव संख्यात गुणे अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। इनसे शतार-सहस्त्रार स्वर्ग के देव असंख्यात गुणे अर्थात् श्रेणी के चतुर्थ वर्गमूल का श्रेणी में भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसके एक भाग प्रमाण हैं। इनसे शुक्र-महाशुक्र कल्प के देव असंख्यात गुणे अर्थात् श्रेणी के पंचम वर्गमूल से भाजित श्रेणी के एक भाग प्रमाण हैं। इनसे लान्तव-कापिष्ठ कल्प के देव असंख्यात गुणे अर्थात् श्रेणी के सप्तम वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण हैं। इनसे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्प के देव श्रेणी के नवम वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण हैं। इनसे सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प के देव असंख्यात गुणे अर्थात् श्रेणी के ग्यारहवें वर्गमूल से खण्डित श्रेणी के एक भाग प्रमाण हैं। इनसे सौधर्मैशान कल्प के देवों का प्रमाण असंख्यात गुणा है। सौधर्म स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सर्व विमानवासी देव असंख्यात श्रेणी प्रमाण हैं अर्थात् घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से कुछ अधिक प्रमाण श्रेणियाँ हैं। इनसे असंख्यात गुणे दस प्रकार के भवनवासी देव हैं, जो असंख्यात श्रेणी प्रमाण अर्थात् घनांगुल के प्रथम वर्गमूल का जितना प्रमाण है, उतनी श्रेणियों के प्रमाण हैं। इनसे असंख्यात गुणे आठ प्रकार के व्यन्तर देव हैं, वे जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् संख्यात प्रतरांगुलों से श्रेणी को भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी श्रेणियों प्रमाण हैं। इनसे संख्यात गुणे पाँच प्रकार के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ज्योतिषी देव हैं। वे ज्योतिष देव जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं। अर्थात् पूर्वोक्त संख्यात प्रतरांगुलों से संख्यातगुणे हीन प्रतरांगुलों द्वारा श्रेणी को खण्डित करने पर जो प्रमाण आये उतनी श्रेणियाँ हैं।

अब जीवों की पर्याप्ति और प्राणों का कथन करते हैं–

आहारोऽथ शरीरं चेन्द्रियानप्राणसंज्ञकौ।
भाषा मन इमाः षट्स्युः पर्याप्तयोऽत्र संज्ञिनाम् ॥१९३॥
असंज्ञिविकलाक्षाणां स्युस्ताः पञ्च मनो विना।
एकाक्षाणां चतस्त्रश्च पर्याप्तयो वचो विना ॥१९४॥
पञ्चेन्द्रियाह्वयाः प्राणा मनोवाक्कायजास्त्रयः।
आनप्राणस्तथायुश्चामी प्राणा दश संज्ञिनाम् ॥१९५॥
असंज्ञिनां नवप्राणास्ते भवन्ति मनो विना।
चतुरिन्द्रियजीवानामष्टौ श्रोत्रं विनापरे ॥१९६॥
त्रीन्द्रियाणां च ते प्राणाः सप्त चक्षुर्विना स्मृताः।
द्वीन्द्रियाणां च षट् प्राणाः सन्ति घ्राणेन्द्रियं विना ॥१९७॥
पृथिव्यादि वनस्पत्यन्तपञ्चस्थावरात्मनाम्।
एकाक्षाणां चतुःप्राणा रसनाक्ष वचोऽतिगाः ॥१९८॥
पञ्चेन्द्रियाह्वयाः प्राणा आयुः शरीरमित्यमी।
सप्तप्राणा अपर्याप्तसंज्ञि पञ्चाक्षजन्मिनाम् ॥१९९॥
पञ्चाक्षायुः शरीराख्याः प्राणाः सप्तभवन्ति च।
असंज्ञिनामपर्याप्तपञ्चेन्द्रियात्तदेहिनाम् ॥२००॥
चत्वारइन्द्रियः प्राणा आयुः काय इमे मताः।
प्राणाः षट् भुव्यपर्याप्तचतुरिन्द्रिय जन्मिनाम् ॥२०१॥
स्पर्शाक्षरसनघ्राणाक्षायुः काया अपीत्यमी।
प्राणाः पञ्चह्यपर्याप्तत्रीन्द्रियासुमतां स्मृताः ॥२०२॥
स्पर्शजिह्वाक्षकायायुः प्राणाश्चत्वार एव हि।
आगमे कीर्तिता द्वीन्द्रियापर्याप्ताङ्गिनां जिनैः ॥२०३॥
स्पर्शेन्द्रियशरीरायुः प्राणास्त्रयो मता जिनैः।
अपर्याप्तपृथिव्यादिपञ्चस्थावर जन्मिनाम् ॥२०४॥

अर्थ–(गृहीत आहार वर्गणा को खल-रस आदि रूप परिणमाने की जीव की शक्ति के पूर्ण होने को पर्याप्ति कहते हैं।) आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इस प्रकार पर्याप्ति के छह भेद हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के छहों पर्याप्तियाँ होतीं हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विकलेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों के मन पर्याप्ति के बिना पाँच तथा एकेन्द्रिय जीवों के मन और वचन के बिना चार पर्याप्तियाँ होतीं हैं।

प्राण-(जिनके सद्भाव में जीव में जीवितपने का और वियोग होने पर मरणपने का व्यवहार हो उन्हें प्राण कहते हैं)। पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) प्राण, मनोबल, वचनबल और कायबल के भेद से तीन बल प्राण, एक श्वासोच्छ्वास और एक आयु इस प्रकार दस प्राण होते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोबल को छोड़कर शेष नव प्राण होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों के श्रोत्रेन्द्रिय को छोड़कर आठ प्राण, त्रीन्द्रिय जीवों के चक्षु को छोड़कर सात प्राण और द्वीन्द्रिय जीवों के घ्राणेन्द्रिय को छोड़कर शेष छह प्राण होते हैं। पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त पाँचों स्थावर जीवों के रसनेन्द्रिय और वचनबल को छोड़कर शेष चार प्राण होते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के पाँच इन्द्रियाँ, कायबल और आयु इस प्रकार सात प्राण होते है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवों के पाँच इन्द्रियाँ, कायबल और आयु ये ही सात प्राण होते हैं। अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों के चार इन्द्रियाँ, आयु और काय बल ये छह प्राण होते हैं। अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ, आयु और कायबल ये पाँच प्राण होते हैं। जिनेन्द्रों के द्वारा आगम में अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, आयु और कायबल ये चार प्राण कहे गये हैं। जिनेन्द्र के द्वारा स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल और आयु ये तीन प्राण अपर्याप्तक पृथ्वी आदि पाँच स्थावर जीवों के कहे गये हैं ॥१९३-२०४॥

अब जीवों की गति-आगति का प्रतिपादन करते हैं–

ये पृथ्वीकायिकाप्कायिका वनस्पतिदेहिनः।
द्वित्रितुर्याक्षपञ्चाक्षा लब्ध्यपर्याप्तकाश्च ये ॥२०५॥
पृथ्व्यादिकवनस्पत्यन्ताः सूक्ष्माः निखिलाश्च ये।
जीवाः पर्याप्तकापर्याप्ताप्तेजोवायुकायिकाः ॥२०६॥
सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्ताः सकलाश्च ये।
असंज्ञिनश्च सर्वेषां तेषां मध्ये विधेर्वशात् ॥२०७॥
उत्पद्यन्ते व्रतातीतास्तिर्यञ्चो मानवाः अघात्।
तस्मिन्नेव भवे मृत्वा स्वार्तध्यानकुलेश्यया ॥२०८॥
पृथ्वीकायास्तथाप्कायिका वनस्पतिकायिकाः।
सूक्ष्मबादरपर्याप्तपर्याप्ताविकलेन्द्रियाः ॥२०९॥
एते कर्मलघुत्वेन जायन्ते तद्भवे मृताः।
नृतिर्यग्भवयोर्मध्ये काललब्ध्या न संशयः ॥२१०॥
सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तानलकायिकाः ।
सूक्ष्मबादरपर्याप्तपर्याप्तवायुकायिकाः ॥२११॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

न लभ्यन्ते मनुष्यत्वं मृत्वा तस्मिन् भवे क्वचित्।
किन्त्वेते केवलं तिर्यग्योनिं यान्ति कुकर्मभिः ॥२१२॥
प्रत्येकाख्य वनपत्यङ्गिषु पृथ्व्यम्बुयोनिषु।
वादरेषु च पर्याप्तेषु जायन्ते विधेर्वशात् ॥२१३॥
आर्तध्यानेन दुर्मृत्युं प्राप्य संक्लिष्टमानसाः।
तिर्यञ्चो मानवा देवास्तस्मिन्भवे व्रतातिगाः ॥२१४॥
नृगतौ भोगभूम्यादि वर्जितायां सुरेषु च।
भावनव्यन्तरं ज्योतिष्केषु नरकादिमे ॥२१५॥
कर्मभूमिजतिर्यग्योनिषु सर्वासु तद्भवे।
तिर्यञ्चोऽसंज्ञिपर्याप्ता उत्पद्यन्ते स्वकर्मणा ॥२१६॥
तिर्यञ्चो मानवा भोगभूजास्तद्भोगजास्तथा।
यान्ति देवालयं सर्वे नूनं मन्दकषायिणः ॥२१७॥

अर्थ—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय इन लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में पर्याप्त एवं अपर्याप्तक सूक्ष्मकाय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक जीवों में, समस्त अग्निकायिक, वायुकायिक जीवों में तथा सम्पूर्ण असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवों में पापकर्म के वशीभूत होते हुए व्रत रहित तिर्यंच और मनुष्य उत्पन्न होते हैं तथा आर्तध्यान एवं कुलेश्याओं से युक्त सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वी कायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक जीव एवं पर्याप्तक-अपर्याप्तक विकलेन्द्रिय जीव इन पर्यायों से मरकर कर्मों के कुछ मंदोदय से एवं काललब्धि से मनुष्यों तथा तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक अग्निकायिक जीव तथा सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिक जीव इन भवों से मरकर कभी भी मनुष्य पर्याय प्राप्त नहीं करते, दुष्कर्मों के कारण मात्र तिर्यंच योनियों में ही उत्पन्न होते हैं। संक्लेश परिणामों से युक्त तथा व्रतरहित तिर्यंच, मनुष्य और देव आर्तध्यान एवं कर्मोदय के वश से दुर्मृत्यु को प्राप्त न होकर बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होते हैं। अपने कर्मों के वशीभूत होते हुए असंज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच मरकर भोगभूमिज मनुष्यों को छोड़कर मनुष्यगति में, भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क रूप देवगति में, प्रथम नरक में तथा कर्मभूमिज तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं। भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य नियम से देवों में ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वे स्वभाव से मन्दकषायी होते हैं ॥२०५-२१७॥

अब धर्म प्राप्ति के लिये जीव रक्षा का उपदेश देते हैं—

इति विविध सुभेदैर्जीवयोनीर्विदित्वा
गतिकुलवपुरायुः स्थानसंख्याद्यनेकैः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्वपरहित वृषाप्त्यै प्रोदिता ज्ञानदृष्टया,
सुचरणशिवकामाः स्वात्मवत्पालयन्तु ॥२१८॥

अर्थ—इस प्रकार उत्तम चारित्र के साथ-साथ मोक्ष की इच्छा करने वाले सज्जन पुरुषों को स्वपर हितकारी धर्म की प्राप्ति के लिए जीवों की गति, कुल, शरीर, आयु, संस्थान और संख्या आदि के द्वारा नाना प्रकार के भेदों को ज्ञान चक्षु से भली प्रकार जानकर अपनी आत्मा के सदृश ही जीवों की रक्षा करना चाहिए ॥२१८॥

अधिकारान्त मङ्गल

यैर्जीवादिपदार्थधर्मसकलाः सम्यक् प्रणीता जिनै-
र्ये तत्पालनतो गताः शिवगतिं ये सूरयः प्रत्यहम्।
तद्रक्षां भुवने वदन्ति सुविदो जीवादिरक्षाय ये,
तन्निष्ठा मुनयोऽखिला मम च ते दद्युः स्तुताः स्वान्गुणान् ॥२१९॥

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते। जीवजातिकुलकायायुः संख्याल्पबहुत्वादि वर्णनोनामैकादशोऽधिकारः।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा सम्यक् प्रकार से कहे हुए जीवादि पदार्थों एवं सम्पूर्ण धर्मों का पालन करके जो जीव मोक्ष गये हैं, जो आचार्य आदि जीव रक्षा के लिए जीव रक्षा का उपदेश देते हैं और जो ज्ञानवान समस्त मुनिजन उस उपदेश की परम श्रद्धा करते हैं, वे सब पूज्य पंचपरमेष्ठी मुझे अपने-अपने गुण दें। अर्थात् उनके गुण मुझे प्राप्त हों ॥२१९॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ में जीवों की कुल-काय-आयु, संख्या एवं अल्पबहुत्व आदि का वर्णन करने वाला एकादश अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्वादश अधिकार

चतुर्निकाय के देवों का वर्णन, भवनवासी

मंगलाचरण

सद्वासप्ततिलक्षांश्च सप्तकोटिजिनालयान्।
भावनामरवन्द्याच्र्यान् वन्दे तत्प्रतिमाः स्तुवे ॥१॥

अर्थ—भवनवासी देवों के द्वारा वन्दनीय और पूजनीय सात करोड़ बहत्तर लाख जिनालयों की मैं वन्दना करता हूँ तथा उनमें स्थित प्रतिमाओं की स्तुति करता हूँ ॥१॥

प्रतिज्ञा सूत्र कहते हैं—

अथ वक्ष्ये समासेन भावनादिपुरस्सरान्।
देवांश्चतुर्विधान् नृणां सद्धर्मफलव्यक्तये ॥२॥

अर्थ—प्राप्त किया है समीचीन धर्म का फल जिन्होंने, ऐसे मनुष्यों के लिये भवनवासी आदि हैं आगे जिनके, ऐसे चार प्रकार के देवों का संक्षेप से वर्णन करूँगा ॥२॥

अब देवों के मूल चार भेद और उन चारों के अवस्थान का स्थान कहते हैं—

भावना व्यन्तरा ज्योतिष्काः कल्पवासिनोऽमराः।
इमे चतुर्विधाः प्रोक्ताः प्राप्तधर्मफला जिनैः ॥३॥
भावनव्यन्तराणां चाधोलोके भवनानि वै।
मध्यलोके गृहाः सन्ति यावत्सुदर्शनाग्रकम् ॥४॥
दशोनाष्टशतान्यूर्ध्वं गत्वा चित्रामहीतलात्।
योजनानां विमानानि ज्योतिष्काणां भवन्ति च ॥५॥
चित्राभूमितलात्क्षेत्रं सौधर्मस्वर्गसंश्रितम्।
तदाश्रयान्मतास्तेऽपि स्वर्गलोकाश्रिताः सुराः ॥६॥
अथवा देवलोक[1]त्वादूर्ध्वलोकाश्रिताः स्मृताः।
यथास्थानस्थितान् वक्ष्ये क्रमात् तान् सह नाकिभिः ॥७॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने धर्म का फल प्राप्त करने वाले देव चार प्रकार के कहे हैं—१. भवनवासी, २. व्यन्तरवासी, ३. ज्योतिषी और ४. कल्पवासी (विमानवासी), भवनवासी और व्यंतरों के भवन अधोलोक में हैं किन्तु व्यन्तरों के गृह-आवास मध्यलोक में मेरु पर्वत के अग्रभाग पर्यन्त भी हैं।

विशेषार्थ—त्रिलोकसार में व्यन्तरों के निवास तीन प्रकार के कहे हैं—१. भवनपुर, २. आवास

---

१. इमे देवां सन्ति तेन ऊर्ध्वाश्रिता भवन्तु।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और ३. भवन। द्वीप समुद्रों में जो स्थान हैं, उन्हें भवनपुर कहते हैं। तालाब, पर्वत आदि पर जो निवास हैं,उन्हें आवास कहते हैं और चित्रा पृथ्वी के नीचे जो स्थित हैं, उन्हें भवन कहते हैं। ज्योतिषी देवों के विमान चित्रा पृथ्वी के (ऊपरी) तल से ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ऊपर (नौ सौ योजन) तक हैं। चित्रा पृथ्वी के तल से सौधर्म आश्रित क्षेत्र है, उसके आश्रय से रहने वाले देव भी स्वर्ग लोक आश्रित जानना चाहिए अथवा चित्रा पृथ्वी तल पर देव रहते हैं इसलिए इसको ऊर्ध्वलोक आश्रित कहा गया है। देवों के स्थान कहाँ पर स्थित हैं उसका और उनके साथ देवों का यथाक्रम से वर्णन करूँगा ॥३-७॥

अब भवनवासी देवों के स्थान विशेष का वर्णन करते हैं–

चित्राभूमिं विहायाधः खरांशे भवनेशिनाम्।
नागादीनां नवानां स्युर्महान्ति भवनानि च ॥८॥
ततोऽसुरकुमाराणां स्फुरद्रत्नमयान्यपि।
भवनान्येव विद्यन्ते पङ्कभागे द्वितीयके ॥९॥
चित्राभूमेरधो भागेऽल्पर्द्धियुक्त सुधाशिनाम्।
योजनद्विसहस्त्रान्तं भवन्ति शाश्वता गृहाः ॥१०॥
योजनानां द्विचत्वारिंशत्सहस्त्रान्तभूतले।
महर्द्धियुतदेवानां विद्यन्ते प्रवरा गृहाः ॥११॥
लक्षयोजनपर्यन्तं चित्राभूमेरधस्तले।
मध्यमर्द्धियुतानां स्युर्देवानां विपुलालयाः ॥१२॥

अर्थ–चित्रा भूमि को छोड़कर (चित्रा के) नीचे खर भाग में नागकुमार आदि नव प्रकार के भवनवासी देवों के महान वैभवशाली (विमान) भवन हैं और असुरकुमार जाति वाले भवनवासी देवों के रत्नमयी भवन दूसरे पंकभाग में हैं। चित्रा पृथ्वी के अधोभाग से दो हजार योजन नीचे तक अल्प ऋद्धिधारक भवनवासी देवों के शाश्वत भवन हैं। भूतल में बयालीस हजार तक महाऋद्धिधारक भवनवासी देवों के उत्तम भवन हैं और चित्रा भूमि से नीचे एक लाख योजन तक मध्यम ऋद्धिधारक विमानवासी देवों के विपुल भवन हैं ॥८-१२॥

अब भवनवासी देवों का प्रमाण दर्शाते हैं–

घनाङ्गुलस्य यन्मूलं प्रथमं श्रेणिसंगुणम्।
तत्समा जातिभेदेन दशधा भावनामराः ॥१३॥

अर्थ–घनांगुल के प्रथम वर्ग मूल को जगत्श्रेणी से गुणित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, उतने ही दस प्रकार की जाति भेद से युक्त भवनवासी देवों का प्रमाण है ॥१३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब भवनवासियों के दस जातियों के नाम और उनकी कुमार संज्ञा की सार्थकता का दिग्दर्शन करते हैं—

असुरानागदेवाः सुपर्णाद्वीपास्तथाब्धयः।
विद्युतः स्तनिताख्या दिक्कुमारा अग्निसंज्ञकाः ॥१४॥
वाताभिधा इमे देवा दशभेदाः स्वजातितः।
नाना सम्पद्युताः प्रोक्ता भावना आगमे जिनैः ॥१५॥
कुमारा इव सर्वत्र क्रीडन्त्येते ततो मताः।
असुरादिकुमाराश्च सर्वे सार्थकनामकाः ॥१६॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने आगम में अनेक प्रकार की सम्पत्ति से युक्त भवनवासी देवों के असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार नामक दस भेद कहे हैं। ये सभी देव कुमारों के सदृश सर्वत्र क्रीड़ा करते हैं, इसलिये इनके असुर कुमार आदि दसों कुलों के अन्त में कुमार शब्द सार्थक नामवाची है ॥१४-१६॥

अब दसों कुलों में अवस्थित असुरकुमारादि देवों के वर्ण और चिह्न कहते हैं—

असुराः कृष्णसद्वर्णा नागाब्धयश्च पाण्डुराः।
स्तनिता दिक्कु माराः स्युः सुपर्णाः काञ्चनप्रभाः ॥१७॥
विद्युद् द्वीपाग्नयो नीलवर्णा अत्यन्तसुन्दराः।
अरुणा मरुतोऽत्रेति वर्णभेदान्विता इमे ॥१८॥
मणिर्नागस्ततो दीप्तो गरुडो गजसत्तमः।
मकरः स्वस्तिकं वज्रं सिंहश्च कलशस्ततः ॥१०॥
तुरगोऽमूनि चिह्नानि राजन्ते मुकुटे क्रमात्।
दशभेदानि दीप्राणि दशानां भावनात्मनाम् ॥२०॥

अर्थ—सभी असुरकुमार देव कृष्ण वर्ण के, नागकुमार और उदधिकुमार पाण्डु वर्ण के, स्तनितकुमार, दिक्कुमार और सुपर्णकुमार काञ्चन वर्ण के, विद्युत्कुमार, द्वीपकुमार एवं अग्निकुमार ये सभी देव अत्यन्त सुन्दर नीलवर्ण के हैं और वायुकुमार के देव लालवर्ण के होते हैं। इनमें इस प्रकार वर्ण भेद हैं। दसों कुलों में उत्पन्न असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के मुकुटों में क्रम से चूड़ामणि, नाग, गरुड़, उत्तम हाथी, मगर, स्वस्तिक, वज्र, सिंह, कलश और अश्व ये देदीप्यमान दस चिह्न सुशोभित होते हैं ॥१७-२०॥

अब भवनवासी देवों के भवनों की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं—

असुराणां चतुःषष्टि लक्षाणि भवनानि च।
नागानां चतुरग्राशीतिलक्षप्रमिता गृहाः ॥२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सुपर्णानां गृहास्ततः।
द्वीपानामुदधीनां च विद्युतां स्तनितात्मनाम् ॥२२॥
दिगाख्यानां तथाग्नीनां प्रत्येकं भवनानि च।
स्युः षट्सप्तति लक्षाणि वातानां गृहसत्तमाः ॥२३॥
स्युः षण्णवति लक्षाण्यमी सर्वे पिण्डिता गृहाः।
द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सप्तकोटियुतानि च ॥२४॥

अर्थ—असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख भवन हैं। नागकुमार देवों के चौरासी लाख, सुपर्णकुमार के बहत्तर लाख, द्वीपकुमार के ७६ लाख, उदधिकुमार के ७६ लाख, विद्युत्कुमार के ७६ लाख, स्तनितकुमार के ७६ लाख, दिक्कुमार के ७६ लाख, अग्निकुमार के ७६ लाख और वायुकुमार के ९६ लाख भवन हैं। इन दस कुलों के सर्व भवनों का एकत्रित योग (६४ लाख+८४ लाख+७२ लाख+(७६ लाख×६)+९६=) ७७२००००० अर्थात् सात करोड़ बहत्तर लाख है ॥२१-२४॥

अब दस कुल सम्बन्धी बीस इन्द्रों के नाम, उनका दिशागत अवस्थान और प्रतीन्द्रों की संख्या कहते हैं—

प्रथमश्चमरेन्द्राख्यो वैरोचनो द्वितीयकः।
भूतानन्दस्तृतीयेन्द्रो धरणानन्दसंज्ञकः ॥२५॥
वेणुश्च वेणुधारी हि पूर्णो वशिष्ठनामकः।
इन्द्रो जलप्रभाभिख्यो जलकान्त्यभिधानकः ॥२६॥
हरिषेणो हरित्कान्तोऽग्निशिखी चाग्निवाहनः।
इन्द्रोऽमितगतिर्नाम्ना तथेन्द्रोऽमितवाहनः ॥२७॥
घोषाख्येन्द्रो महाघोषो वेलाञ्जनः प्रभञ्जनः।
एतेऽखिलामराभ्यचर्या दिव्यालङ्कारभूषिताः ॥२८॥
असुरादिकुलानां च क्रमेण द्वि द्वि संख्यया।
भवन्ति विंशतिश्चेन्द्राः स्त्रीमहर्द्धिसुरान्विताः ॥२९॥
दक्षिणायां दिशि स्वामी चमरेन्द्रो वसेन्महान्।
उत्तरदिग्विभागे च वैरोचनोऽमरैः समम् ॥३०॥
एवं शेषौ पती द्वौ द्वौ दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः।
इन्द्रौ च भवतः छत्रसिंहासनाद्यलङ्कृतौ ॥३१॥
दशानामसुरादीनां द्वौ द्वौ चेन्द्रौ प्रतिस्फुटम्।
स्यातां द्वौ द्वौ प्रतीन्द्रौ च दिव्यसम्पत्सुरावृतौ ॥३२॥
सर्वे पिण्डीकृता ज्ञेयाः प्रतीन्द्रा विंशतिप्रमाः।
दिव्यरूपधरा दिव्याणिमाद्यष्टर्द्धिमण्डिताः ॥३३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—चमर-वैरोचन, भूतानन्द-धरणानन्द, वेणु-वेणुधारी, पूर्ण-वशिष्ठ, जलप्रभ-जलकान्त, हरिषेण-हरित्कान्त; अग्निशिखी-अग्निवाहन, अमितगति-अमितवाहन, घोष-महाघोष; वेलंजन और प्रभंजन ये क्रम से असुरकुमारादि दस कुलों के दो-दो इन्द्र हैं। ये बीसों इन्द्र समस्त भवनवासी देवों से सम्मानित, दिव्य अलंकारों से विभूषित, अनेक देवियों और महाऋद्धिधारी देवों से समन्वित रहते हैं। इनमें चमरेन्द्र दक्षिण दिशा का स्वामी होने से दक्षिण में रहता है और वैरोचन उत्तर दिशा का स्वामी होने से अनेक देवों के साथ उत्तर में निवास करता है। इसी प्रकार छत्र, सिंहासन आदि से अलंकृत शेष नव कुलों के दो-दो इन्द्र क्रमशः दक्षिण और उत्तर दिशा में निवास करते हैं। जिस प्रकार असुरकुमार आदि दस कुलों के दो-दो इन्द्र होते हैं, उसी प्रकार दिव्य वैभव और अनेक देवों से परिवेष्टित प्रत्येक कुल के दो-दो प्रतीन्द्र होते हैं। दिव्य रूप को धारण करने वाले और अणिमा आदि आठ दिव्य ऋद्धियों से मण्डित इन सर्व प्रतीन्द्रों की एकत्रित संख्या भी बीस ही है, ऐसा जानना चाहिए ॥२५-३३॥

अब दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों के भवनों की भिन्न-भिन्न संख्या कहकर उन भवनों का विशेष व्याख्यान करते हैं—

प्रागुक्त भवनानां चासुरादिजाति भागिनाम्।
मध्ये स्युश्चमरेन्द्रस्य रत्नोच्चभवनान्यपि ॥३४॥
चतुस्त्रिंशच्चलक्षाणि भूतानन्दस्य सद्गृहाः।
सन्ति लक्षाश्चतुश्चत्वारिंशद्वेणोर्गृहाः परे ॥३५॥
अष्टात्रिंशच्च लक्षाणि पूर्णाख्यस्य सुरेशिनः।
जलप्रभाख्यशक्रस्य हरिषेणामरेशिनः ॥३६॥
ततोऽग्निशिखिनश्चामितगतेस्त्रिदशेशिनः ।
घोषेन्द्रस्य पृथग्भूताः प्रत्येकं सन्ति सद्गृहाः ॥३७॥
चत्वारिंशच्च लक्षाणि वेलाञ्जनस्य सन्ति च।
पञ्चाशल्लक्षसंख्यानि महान्ति भवनानि च ॥३८॥
वैरोचनस्य धामानि त्रिंशल्लक्षाणि सन्ति च।
धरणानन्दनाम्नश्चत्वारिंशल्लक्षसद्गृहाः ॥३९॥
स्युर्वेणुदारिणो लक्षचतुस्त्रिंशत्प्रमा गृहाः।
वशिष्ठाह्वयशक्रस्य जलकान्ति सुरेशिनः ॥४०॥
हरिकान्तामरेन्द्रस्याग्निवाहनामरेशिनः ।
तथैव ह्यमिताद्यन्तवाहनत्रिदशेशिनः ॥४१॥
महाघोषस्य विद्यन्ते प्रत्येकं भवनानि च।
षड्त्रिंशल्लक्षसंख्यानि प्रभञ्जनामरेशिनः॥४२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भवनानि च षड्चत्वारिंशल्लक्षाणि सन्ति वै।
इत्युक्तसंख्ययुक्तानि नानारत्नमयानि च ॥४३॥
एकैकजिनचैत्यालयालङ्कृतोन्नतान्यपि ।
दिव्यैश्चैत्यद्रुमैर्मानस्तम्भैः कूटध्वजोत्करैः ॥४४॥
भूषितानि भृतानि स्त्रीवृन्दसैन्यामरादिभिः।
गीतनर्तनवाद्यादि जिनार्चोत्सवकोटिभिः ॥४५॥
रम्याणि विस्फुरच्छुद्धमणिभित्तिमयान्यपि।
दिव्यामोदप्रपूर्णानि सर्वाक्षसुखदानि वै ॥४६॥
इत्युक्तवर्णनैश्चान्यैरागमोक्तसुवर्णनैः ।
राजन्ते भवनान्युच्चैर्दिव्यसम्पत्समुच्चयैः ॥४७॥
सर्वाणि च समस्तानां दक्षिणाशामरेशिनाम्।
दशानां चोत्तरेन्द्राणां भोग्यानि पुण्यपाकतः ॥४८॥

अर्थ—पूर्व में असुरकुमार आदि दस कुलों के आश्रित भवनों की जो संख्या कही है, उन्हीं के मध्य में इन्द्रों के भवन अवस्थित हैं। रत्नों से निर्मित चमरेन्द्र के उच्च भवनों की संख्या ३४ लाख है। भूतानन्द के भवनों की संख्या ४४ लाख, वेणु के ३८ लाख, पूर्ण के ४० लाख, जलप्रभ इन्द्र के ४० लाख, हरिषेण के ४० लाख, अग्निशिखी के ४० लाख, अमितगति के ४० लाख और घोष नामक इन्द्र के भी ४० लाख भवन हैं तथा वेलाञ्जन के उत्तम भवन ५० लाख हैं। उत्तरेन्द्रों में वैरोचन के भवनों की संख्या ३० लाख, धरणानन्द के ४० लाख, वेणुधारी के ३४ लाख, वशिष्ठ इन्द्र के ३६ लाख, जलकान्त के ३६ लाख, हरिकान्त के ३६ लाख, अग्निवाहन के ३६ लाख, अमितवाहन के ३६ लाख, महाघोष इन्द्र के ३६ लाख और प्रभंजन इन्द्र के ४६ लाख भवन हैं। इस प्रकार उपर्युक्त (७७२ लाख) संख्या से युक्त ये सभी भवन रत्नमय हैं। ये प्रत्येक भवन उन्नत चैत्यालयों से अलंकृत हैं, दिव्य चैत्यवृक्षों, मानस्तम्भों, कूटों और ध्वजा समूहों से विभूषित हैं, देवांगनाओं के समूहों से एवं देवों को सैन्य समूहों से भरे रहते हैं, गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि से और जिन पूजन के करोड़ों उत्सवों से रम्य हैं, देदीप्यमान उत्तम मणियों की भित्तियों से निर्मित हैं, दिव्य आमोदों से परिपूर्ण हैं और पाँचों इन्द्रिय के सम्पूर्ण सुखों को देने वाले हैं। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णनों से, आगमोक्त एवं अन्य वर्णनों से तथा अति विशाल दिव्य सम्पत्ति समूहों से वे दक्षिणदिशागत सम्पूर्ण भवन अत्यन्त शोभायमान होते हैं। यह सब वर्णन दक्षिण दिशागत समस्त (१०) इन्द्रों का है, उत्तर दिशागत दसों इन्द्रों के भी पूर्व पुण्य के फल से सर्व भोग्य पदार्थ इसी प्रकार जानना चाहिए ॥३४-४८॥

अब उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भवनों का प्रमाण तथा जिनेन्द्र प्रतिमा युक्त दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करते हैं—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जम्बूद्वीपप्रमव्यासा जघन्या सद्गृहा मताः।
संख्ययोजनविस्ताराः केचिच्च मध्यमाः शुभाः ॥४९॥
असंख्ययोजनव्यासा उत्कृष्टा भवनोत्कराः।
क्रमेणैतेऽसुरादीनां दशधा चैत्यपादपाः ॥५०॥
अश्वत्थः सप्तपर्णाख्यः शाश्वतः शाल्मली द्रुमः।
जम्बूश्च वेतसोवृक्षोऽथप्रियङ्गुः पलाशकः ॥५१॥
शिरीषाख्यः कदम्बश्च राजद्रुम इमे शुभाः।
रत्नपीठाश्रिता रत्नमया रत्नांशुदीपिताः ॥५२॥
असुरादिदशानां दशविधा चैत्यपादपाः।
रत्नोपकरणोपेता दीप्ता भवन्ति शाश्वताः ॥५३॥
मूलेऽमीषां चतुर्दिक्षुप्रत्येकं सुरपूजिताः।
पञ्च पञ्च प्रमाः सन्ति जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः ॥५४॥

अर्थ—भवनवासियों के जघन्य भवनों का व्यास जम्बूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन है। मध्यम भवनों का व्यास संख्यात योजन और उत्कृष्ट भवनों का विस्तार असंख्यात योजन प्रमाण है। असुरकुमार आदि दस कुलों के क्रम से अश्वत्थ–पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मलि–सेमल, जम्बू–जामुन, वेतस–वेंत का वृक्ष, प्रियंगु, पलाश–ढाक, शिरीष–सिरस, कदम्ब और राजद्रुम–कृतमाल ये दस चैत्यवृक्ष हैं। रत्नपीठ पर स्थित, रत्नमय, रत्नकिरणों से देदीप्यमान, प्रकाशमान रत्न के उपकरणों से युक्त, अत्यन्त रमणीक और शाश्वत ये दस प्रकार के चैत्यवृक्ष असुरकुमार आदि दस कुलों में से क्रमशः प्रत्येक के एक–एक हैं। इन प्रत्येक चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में देव समूहों से पूज्य परमोत्कृष्ट पाँच–पाँच जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं ॥४९–५४॥

अब मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं—

पञ्चपञ्चप्रमाणाः स्युर्मानस्तम्भा महोन्नताः।
रत्नपीठाश्रिता हेमघण्टाध्वजादि शोभिताः ॥५५॥
तीर्थेशप्रतिमासारैः शिरोभागविराजिताः।
मणिदीप्तांश्च सर्वेषां भवनानां दिशं प्रति ॥५६॥

अर्थ—सम्पूर्ण भवनों (चैत्यवृक्षों) की प्रत्येक दिशा में तीर्थंकरों की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमाओं से जिनके शिरोभाग विभूषित हैं ऐसे देदीप्यमान मणियों से निर्मित, स्वर्णमय घण्टाओं एवं ध्वजाओं से सुशोभित, रत्नपीठ पर स्थित महा उन्नत पाँच–पाँच मानस्तम्भ हैं ॥५५–५६॥

अब इन्द्रादिक के भेद कहते हैं—

प्रतीन्द्रो लोकपालाश्च त्रायस्त्रिंशसुरास्ततः।
सामान्यकाह्वया अङ्गरक्षाश्च परिषत्सुराः ॥५७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सप्तानीकामरा वै प्रकीर्णका आभियोगिकाः।
किल्विषिका इति प्रोक्ता दशभेदाः परिच्छदाः ॥५८॥

अर्थ—प्रत्येक कुलों में एक-एक इन्द्र के परिवार में प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश, सामानिक, अंगरक्षक, तीन प्रकार के परिषद्, अनीक देव, प्रकीर्णक देव आभियोग्य और किल्विषिक ये दस-दस भेद होते हैं ॥५७-५८॥

अब इन्द्रादिक पदवियों के दृष्टांत कहते हैं—

एकैकस्यापि शक्रस्य पृथग्भूताः स्वपुण्यजाः।
इन्द्राः सर्वेऽमरैः सेव्या राजतुल्या महर्द्धिकाः ॥५९॥
युवराजसमा विश्वे प्रतीन्द्राः सुरसेविताः।
स्वप्रधानसमा लोकपाला देवाः प्रकीर्तिताः ॥६०॥
पुत्रादिसमसस्नेहास्त्रायस्त्रिंशसुरा मताः।
मान्यपात्रसमानाः स्युः सामान्यकाख्यनिर्जराः ॥६१॥
अङ्गरक्षसमा अङ्गरक्षा इन्द्रान्तवर्तिनः।
अन्तर्मध्यान्तभेदेन त्रिविधाः परिषत्सुराः ॥६२॥
सेनातुल्या अनीकाः प्रकीर्णका नागरोपमाः।
भृत्यवाहनसादृश्या आभियोगिक निर्जराः ॥६३॥
स्वपापपुण्यभोक्तारः किल्विषिका इवान्त्यजाः।
इत्यमी कार्यकर्तार इन्द्राणां च पृथग्विधाः ॥६४॥

अर्थ—अपने-अपने पुण्य कर्मोदय से एक-एक इन्द्र के पृथक्-पृथक् प्रतीन्द्र आदि दस-दस प्रकार के देव होते हैं। इनमें सर्व देवों से सेव्यमान महाऋद्धि का धारक इन्द्र राजा सदृश होता है। सर्व प्रतीन्द्र युवराज सदृश, सर्व लोकपाल मन्त्री सदृश, सर्व त्रायस्त्रिंश देव स्नेह के भाजन स्वरूप पुत्र आदि के सदृश, सर्व सामानिक देव मान्यपात्र अर्थात् सम्माननीय व्यक्तियों सदृश, इन्द्र के समीप रहने वाले अंगरक्षक देव राजाओं के अंगरक्षक सदृश, तीनों प्रकार के पारिषद् देव राजा की अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सभा के सदृश, अनीक जाति के देव सेना सदृश, प्रकीर्णक देव नागरिक-प्रजा सदृश, आभियोग्य देव दास एवं सवारी सदृश और किल्विषिक जाति के देव चाण्डालों आदि के सदृश होते हैं। अपने-अपने पाप और पुण्य के फलों को भोगते हुए ये सभी देव इन्द्र का पृथक्-पृथक् कार्य करते हैं ॥५९-६४॥

अब इन्द्रादिक पाँच प्रकार के देवों में विभूति आदि की समानता-असमानता दर्शाते हुए चारों लोकपालों का अवस्थान कहते हैं—

इन्द्रतुल्यः प्रतीन्द्रः स्यात्त्रायस्त्रिंश सुरास्तथा।
लोकपालाश्च सामान्यका इमे त्रिविधामराः ॥६५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विभूत्येन्द्रसमानाः स्युः किञ्चिदूनातपत्रकाः।
सोमः पूर्वदिशः स्वामी दक्षिणाशापतिर्यमः ॥६६॥
वरुणः पश्चिमाशास्थः कुवेर उत्तराधिपः।
चत्वारोऽमी हि दिग्नाथा जिनाङ्घ्रिनम्रमौलयः ॥६७॥

अर्थ—त्रायस्त्रिंश देव, लोकपाल और सामानिक ये तीन प्रकार के देव विभूति (आयु, परिवार, ऋद्धि और विक्रिया) आदि में इन्द्र के सदृश ही होते हैं। केवल इनके छत्र नहीं होता किन्तु प्रतीन्द्र इन्द्र तुल्य ही होते हैं। जिनेन्द्र प्रभु के चरणों में नम्र हैं मुकुट जिनके ऐसे चारों लोकपालों में से सोम पूर्वदिशा के, यम दक्षिण के, वरुण पश्चिम के और कुबेर उत्तर दिशा के स्वामी हैं ॥६५-६७॥

अब प्रत्येक इन्द्रों के त्रायस्त्रिंश सामानिक और अंगरक्षक देवों की संख्या कहते हैं—

सर्वेन्द्राणां त्रयस्त्रिंशत् त्रायस्त्रिंशसुराः पृथक्।
सामानिकाश्चतुःषष्टिसहस्राश्चमरस्य च ॥६८॥
सन्ति वैरोचनेन्द्रस्य सहस्राः षष्टिसम्मिताः।
षट्पञ्चाशत्सहस्राणि भूतानन्दस्य सन्ति ते ॥६९॥
शेषसप्तदशानां धरणानन्दादिकात्मनाम्।
प्रत्येकं सन्ति सामानिकाः पञ्चाशत्सहस्रकाः ॥७०॥
चमरेन्द्रस्य पार्श्वस्था विद्यन्ते तनुरक्षकाः।
षट्पञ्चाशत्सहस्राग्रलक्षद्वय प्रमाणकाः ॥७१॥
भवन्त्येवाङ्गरक्षाश्च वैरोचनसुरेशिनः।
चत्वारिंशत्सहस्राग्रद्विलक्षसंख्यसम्मिताः ॥७२॥
भूतानन्दसुरेन्द्रस्य भवन्ति चाङ्गरक्षकाः।
चतुर्विंश सहस्राधिकलक्षद्वयसंख्यकाः ॥७३॥
धरणानन्दमुख्यानां शेषसप्तदशात्मनाम्।
प्रत्येकमङ्गरक्षाः स्युर्द्विलक्षप्रमिताः पृथक् ॥७४॥

अर्थ—सभी इन्द्रों के त्रायस्त्रिंश देव पृथक्-पृथक् तैंतीस ही होते हैं। चमरेन्द्र की सभा में सामानिक देवों की संख्या ६४००० है। वैरोचन के ६०००, भूतानन्द के ५६००० और धरणानन्द आदि अवशेष सत्रह इन्द्रों में से प्रत्येक इन्द्र के सामानिक देवों की संख्या ५०, ५० हजार प्रमाण है। चमरेन्द्र के अंगरक्षक देवों का प्रमाण दो लाख ५६ हजार, वैरोचन के दो लाख ४० हजार, भूतानन्द के दो लाख २४ हजार और धरणानन्द आदि सत्रह इन्द्रों के पृथक्-पृथक् दो-दो लाख तनुरक्षक देव होते हैं ॥६८-७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब पारिषद देवों की संख्या कहते हैं–

चमराख्यसुरेशस्य चान्तःपरिषदि स्फुटम्।
भवन्ति परिषद्देवा अष्टाविंशसहस्त्रकाः ॥७५॥
मध्यपरिषदि प्रोक्ता स्त्रिंशत्सहस्त्रनिर्जराः।
बाह्य परिषदिद्वात्रिंशत्सहस्त्रामरा मताः ॥७६॥
वैरोचनस्य चान्तः परिषदि प्रोदिताः सुराः।
षड्विंशति सहस्त्राणि शक्राङ्घ्रिनम्रमस्तकाः ॥७७॥
मध्यपरिषदिख्यातास्तेऽष्टाविंशसहस्त्रकाः ।
बाह्य परिषदि प्रोक्तास्त्रिंशत्सहस्त्र निर्जराः ॥७८॥
भूतानन्दस्य चान्तः परिषदि श्रीजिनोदिताः।
आद्यन्त परिषद्देवाः षट्सहस्त्रप्रमाणकाः ॥७९॥
सुरा अष्टसहस्त्राः स्युर्मध्यपरिषदिस्थिताः।
सहस्त्रदशगीर्वाणा बाह्यापरिषदिस्थिताः ॥८०॥
शेषाणां धरणानन्दादि सप्तदशभागिनाम्।
चतुःसहस्त्रदेवाः पृथगन्तः परिषत्स्थिताः ॥८१॥
षट्सहस्त्रप्रमा देवा मध्यपरिषदि स्मृताः।
अष्टौ सहस्त्रगीर्वाणा बाह्यपरिषदि श्रिताः ॥८२॥
अन्तः परिषदो देव समित्याख्योऽस्ति नायकः।
मध्यापरिषदः स्वामी चन्द्रदेवोऽमरावृतः ॥८३॥
बाह्या परिषदो मुख्यो यदुनामामरोत्तमः।
इत्युक्ता परिषत्संख्या शक्राणामागमे जिनैः ॥८४॥

अर्थ–चमरेन्द्र की अन्तः परिषद् में पारिषद देवों की संख्या २८ हजार, मध्य परिषद् में ३० हजार और बाह्य परिषद् में ३२ हजार है। वैरोचन के अन्तः परिषद् के देव २६ हजार, मध्य परिषद् के इन्द्र के चरणों में नतमस्तक होने वाले पारिषद देव २८ हजार और बाह्य परिषद् के देव ३० हजार कहे गये हैं। भूतानन्द के अन्तः परिषद् के देव जिनेन्द्र भगवान् ने छह हजार मध्य परिषद् के पारिषद् देव आठ हजार और बाह्य परिषद् के दस हजार देव कहे हैं। धरणानन्द आदि सत्रह इन्द्रों के पृथक्-पृथक् अन्तः परिषद् के देव चार-चार हजार, मध्य परिषद् के छह-छह हजार और बाह्य परिषद् के पारिषद देव आठ-आठ हजार हैं। भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा आगम में अन्तः परिषद् के अधिनायक देव का नाम समित्, मध्य परिषद् के अधिप देव का नाम चन्द्र और बाह्य परिषद् के अधिनायक देव का नाम यदु कहा है। आगम में प्रत्येक इन्द्रों के पारिषद् देवों की संख्या भी पूर्वोक्त प्रकार ही कही गई है ॥७५-८४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब अनीक देवों के भेद और चमरेन्द्र के महिषों की संख्या कहते हैं–

महिषाः प्रवरा अश्वा रथा गजाः पदातयः।
गन्धर्वा वरनर्तक्य इमे सप्तविधा मताः ॥८५॥
अनीकाः पुण्यजाः सप्त सप्तकक्षान्विताः पृथक्।
प्रत्येकं प्रीतिदाः प्रीता असुरेन्द्रस्य सर्वदा ॥८६॥
नावश्च गरुडा हस्तिनो महामकरास्तथा।
उष्ट्राश्च खड्गिनः सिंहाः शिविका तुरगा इमे।८७॥
नवभेदा अनीकाः प्रत्येकं सुरेन्द्रपुण्यजाः।
सुरविक्रियजाः सप्त सप्तकक्षाङ्किताः शुभाः ॥८८॥
मुख्या आद्याश्च नागादीनां नवानां सुधाशिनाम्।
अनुक्रमेण शेषाणां शक्रप्रीतिकराः पराः ॥८९॥
शेषा ये चासुरेन्द्रस्य प्रागुक्तास्तुरगादयः।
षडनीकास्त एव स्युर्नागादीनां यथाक्रमम् ॥९०॥
चमरस्यादिमेऽनीके चतुःषष्टिसहस्रकाः।
महिषाः सन्ति चोत्तुङ्गा दीप्ताङ्गाः सुरमण्डिताः॥९१॥
तेभ्यः शेषेषु सर्वेषु महिषानीकषट्स्वपि।
प्रत्येकं महिषाः सन्ति द्विगुणद्विगुणप्रमाः ॥९२॥

अर्थ–असुरेन्द्र के पूर्व पुण्य के फल से उत्पन्न होने वाली, प्रीति उत्पन्न कराने वाली और पृथक्-पृथक् सात-सात कक्षाओं से युक्त महिष, श्रेष्ठ अश्व, रथ, गज, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक-सेनाएँ (देव) होतीं हैं। अवशेष नागकुमार आदि नव भवनवासी इन्द्रों के पुण्यफल स्वरूप, देवों की विक्रिया से उत्पन्न, इन्द्रों को प्रीति उत्पन्न कराने वालों और सात-सात कक्षाओं से युक्त अनीक (सेनाएँ) होतीं हैं। इन अनीकों में प्रत्येक इन्द्र के अनुक्रम से नाव, गरुड़, गज, महामत्स्य, ऊँट, खड्गी (गेंडा) सिंह, शिविका और घोड़ा ये प्रमुख होती हैं, शेष छह अनीकें पूर्व में जैसे असुरेंद्र के क्रमशः घोड़ा, रथ, हाथी आदि कहे हैं उसी प्रकार नागकुमार आदि नव इन्द्रों के भी यथाक्रम से जानना चाहिए। यथा–

१. असुरकुमार–महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।
२. नागकुमार–नाव, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।
३. सुपर्णकुमार–गरुड़, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।
४. द्वीपकुमार–हाथी, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।
५. उदधिकुमार–मगर, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।
६. विद्युत्कुमार–ऊँट, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

७. स्तनितकुमार–खड्गी, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

८. दिक्कुमार–सिंह, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

९. अग्निकुमार–शिविका, घोड़ा. रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

१०. वायुकुमार–अश्व, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नर्तकी।

(असुरकुमार के) चमरेन्द्र के प्रथम अनीक में देदीप्यमान शरीर वाले, देवताओं से मण्डित और ऊँचे-ऊँचे ६४ हजार महिष हैं। इन्हीं चमरेन्द्र की शेष छह कक्षों में से प्रत्येक कक्ष में महिषों की संख्या का प्रमाण दूना-दूना होता गया है ॥८५-९२॥

एषां सप्तमहिषानीकेषु प्रत्येकं महिषाणां संख्या प्रोच्यते–

चमरेन्द्रस्य प्रथमे अनीके महिषाश्चतु:षष्टि सहस्राणि। द्वितीये चैकलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि। तृतीये द्विलक्षषट्पञ्चाशत्सहस्राणि। चतुर्थे पञ्चलक्षद्वादशसहस्राणि। पञ्चमे दशलक्ष चतुर्विंशतिसहस्राणि। षष्ठे विंशतिलक्षाष्ट चत्वारिंशत्सहस्राणि। सप्तमे अनीके महिषाश्चत्वारिंशल्लक्षषण्णवति सहस्राणि। सर्वे अमी सप्तानीकानां पिण्डीकृता: महिषा: एकाशीतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि भवन्ति।

अर्थ–अब सात कक्षों में से प्रत्येक कक्ष के महिषों की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं–

चमरेन्द्र की प्रथम कक्ष में ६४ हजार महिष हैं। द्वितीय कक्ष में एक लाख २८ हजार, तृतीय कक्ष में दो लाख ५६ हजार, चतुर्थ कक्ष में ५ लाख १२ हजार, पञ्चम कक्ष में १० लाख २४ हजार, षष्ठ कक्ष में २० लाख ४८ हजार और सप्तम कक्ष में महिषों की संख्या ४० लाख ९६ हजार है। इस प्रकार चमरेन्द्र के सातों अनीकों (कक्षाओं) के महिषों का एकत्रित योग ८१ लाख २८ हजार (८१२८०००) होता है।

अब चमरेन्द्र के अनीकों की सम्पूर्ण संख्या और वैरोचन के महिषों की संख्या कहते हैं–

इत्येवं महिषानीक समानास्तुरगादय:।
प्रोक्ता गणनयाशेषा: षडनीका पृथक् पृथक् ॥९३॥
पञ्चकोट्योऽष्टषष्टिश्च लक्षा: षण्णवतिस्तथा।
सहस्त्रा इति संख्याङ्कै: प्रोदिता गणना जिनै: ॥९४॥
पिण्डिता चमरेन्द्रस्य सिद्धान्ते निखिला सताम्।
महिषाश्वादि सप्तानामनीकानां शुभाप्तये॥९५॥
वैरोचनस्य चानीके प्रथमे महिषा मता:।
षष्टिसहस्त्रसंख्याश्च तेभ्योऽनीकेषु षट्स्वपि ॥९६॥
शेषेषु महिषा: प्रोक्ता द्विगुणाद्विगुणा: पृथक्।
पूर्ववत्पुनरेतेषां संख्या व्यासेन चोच्यते ॥९७॥

अर्थ–इस प्रकार चमरेन्द्र की सातों कक्षाओं के महिषों की जितनी संख्या कही गई है, उतनी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ही संख्या अश्व आदि अवशेष छह अनीकों की पृथक्-पृथक् कही गई है। जिनेन्द्र भगवान् ने आगम में सज्जनों को शुभ (कल्याण) की प्राप्ति के लिये चमरेन्द्र की महिष, अश्व आदि सातों अनीकों की एकत्रित संख्या का योग ५ करोड़ ६८ लाख ९६ हजार (५६८९६०००) कहा है। वैरोचन की प्रथम अनीक में महिषों की संख्या ६० हजार है। इनके शेष छह कक्षों में महिषों की पृथक्-पृथक् संख्या दुगुनी-दुगुनी है, जो पृथक्-पृथक् कही जाती है ॥९३-९७॥

अब वैरोचन की प्रत्येक कक्षाओं की भिन्न-भिन्न संख्या कहते हैं—

वैरोचनेन्द्रस्य प्रथमे अनीके महिषाः षष्टिसहस्राणि। द्वितीये चैकलक्षविंशतिसहस्राणि। तृतीये द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। चतुर्थे चतुर्लक्षाशीतिसहस्राणि। पञ्चमे नवलक्षषष्ठिसहस्राणि। षष्ठे एकोनविंशतिलक्षविंशति सहस्राणि। सप्तमे अनीके महिषाः अष्टत्रिंशल्लक्ष चत्वारिंशत्सहस्राणि। सर्वे एकत्रीकृताः सप्तानीकानां महिषाः षट्सप्तति लक्षविंशति सहस्राणि भवेयुः।

अर्थ—वैरोचनेन्द्र की प्रथम अनीक में ६० हजार महिष, द्वितीय में एक लाख २० हजार, तृतीय में दो लाख ४० हजार, चतुर्थ में ४ लाख ८० हजार, पंचम में ९ लाख ६० हजार, षष्ठ में १९ लाख २० हजार और सप्तम अनीक में ३८ लाख ४० हजार महिष हैं। इन सातों अनीकों के एकत्रित महिषों का योग ७६ लाख २० हजार (७६२००००) है।

इत्थंभूता बुधैर्ज्ञेया समाना गणनाखिला।
संख्या च शेषषण्णां ह्यश्वाद्यनीकात्मनां पृथक्॥९८॥
पञ्चकोट्यस्त्रयस्त्रिंशल्लक्षास्तथा सहस्त्रकाः।
चत्वारिंशदिति ज्ञेया संख्या पिण्डीकृताखिला॥९९॥
सप्तानां महिषादीनां सैन्यानां श्रीजिनागमे।
पुण्योदयेन जातानां वैरोचनामरेशिनः ॥१००॥
भूतानन्दस्य नावः स्युरनीके प्रथमेऽपराः।
षट्पञ्चाशत्सहस्त्राणि ताभ्यः क्रमेण पूर्ववत् ॥१०१॥
द्विगुणा द्विगुणा नावः शेषानीकेषु षट्स्वपि।
सुखबोधाय चैतेषां पृथक् संख्या निगद्यते ॥१०२॥

अर्थ—इस प्रकार विद्वानों के द्वारा शेष अश्व आदि छह अनीकों की पृथक्-पृथक् संख्या महिषों की संख्या के सदृश ही जानना चाहिए। जिनागम में वैरोचन इन्द्र के पुण्योदय से उत्पन्न होने वाले महिष आदि सातों अनीकों का एकत्रित प्रमाण पाँच करोड़ तैंतीस लाख चालीस हजार (५३३४००००) जानना चाहिए। भूतानन्द इन्द्र के प्रथम अनीक में ५६००० नाव हैं, इसके बाद अवशेष छह कक्षों में क्रम से यह संख्या दूनी-दूनी होती गई है। सुख-पूर्वक ज्ञान कराने के लिये यह संख्या पृथक्-पृथक् कहते हैं ॥९८-१०२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब भूतानन्द की सातों अनीकों में नाव की संख्या पृथक्-पृथक् कहते हैं—

भूतानन्देन्द्रस्य प्रथमानीके नावः षट्पञ्चाशत्सहस्राणि। द्वितीयानीके चैकलक्षद्वादशसहस्राणि। तृतीये द्विलक्षचतुर्विंशतिसहस्राणि। चतुर्थे चतुर्लक्षाष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि। पञ्चमे अष्टलक्षषण्णवति-सहस्राणि। षष्ठे सप्तदशलक्षद्विनवतिसहस्राणि। सप्तमे सैन्ये नावः पञ्चत्रिंशल्लक्षचतुरशीतिसहस्राणि एताः सप्तानीकानां सर्वा नाव एकत्रीकृताः एकसप्ततिलक्षद्वादशसहस्राणि भवन्ति।

अर्थ—भूतानंद की प्रथम कक्ष अनीक की प्रथम कक्ष में ५६ हजार नाव हैं, द्वितीय में एक लाख बारह हजार, तृतीय में दो लाख २४ हजार, चतुर्थ में ४ लाख ४८ हजार, पंचम में ८ लाख ९६ हजार, षष्ठ में १७ लाख ९२ हजार और सप्तम अनीक में ३५ लाख ८४ हजार नाव है। इन सातों कक्षों की सर्व नावों का एकत्रित योग ७१ लाख १२ हजार (७११२०००) है।

अब भूतानन्द की शेष अनीकों की एवं धरणानन्द की प्रथम अनीक की संख्या कहते हैं—

षण्णामश्वादिसैन्यानां शेषाणां नौसमा मता।
संख्या पृथक् पृथग्भूता नर्तक्यन्ता न संशयः ॥१०३॥
चतस्रः कोटयो लक्षाः सप्ताग्रनवतिप्रमाः।
सहस्राश्चतुरग्राशीतिश्चैषां पिण्डिताखिला ॥१०४॥
सतां संख्या मता सप्तसैन्यानां श्रीजिनेशिना।
पूर्वपुण्योदयोत्थानां भूतानन्दसुरेशिनः ॥१०५॥
शेषसप्तदशानां धरणानन्दादिकात्मनाम्।
अनीके प्रथमे नौप्रमुखानि वाहनानि च ॥१०६॥
प्रागुक्तानि पृथक् पञ्चाशत्सहस्राणि सन्ति वै।
तेभ्यः संख्यान्यसैन्यानां द्विगुणा द्विगुणा पृथक् ॥१०७॥

अर्थ—भूतानन्द इन्द्र की अश्व से लेकर नर्तकी पर्यन्त की शेष छह अनीकों का पृथक्-पृथक् प्रमाण नाव के प्रमाण सदृश ही है, इसमें संशय नहीं। जिनेन्द्र भगवान् ने भूतानन्द इन्द्र के पूर्व पुण्योदय से उत्पन्न सातों अनीकों की एकत्रित संख्या चार करोड़ सत्तानवे लाख चौरासी हजार (४९७८४०००) प्रमाण कही है। धरणानन्द आदि अवशेष सत्रह इन्द्रों के पूर्व कही गई नौ पृथक्-पृथक् प्रमुख अनीकों की प्रथम कक्ष में वाहनों की संख्या पचास हजार प्रमाण है, इनसे आगे-आगे अवशेष छह कक्षों में दूनी-दूनी कही गई है ॥१०३-१०७॥

अमीषां विस्तरेण बालावबोधाय व्याख्यानं क्रियते—

धरणानन्दादि शेष सप्तदशेन्द्राणां नौगरुडादिप्रागुक्तवाहनानि क्रमात्-प्रथमे अनीके पञ्चाशत्सहस्राणि। द्वितीये चैकोलक्षः। तृतीये द्वौ लक्षौ। चतुर्थे चत्वारो लक्षाः। पञ्चमे अष्टौ लक्षाः। षष्ठे षोडशलक्षाः। सप्तमे द्वात्रिंशल्लक्षाणि नौ गरुडादि वाहनानि सैन्ये भवन्ति। इमानि सर्वाणि नौ प्रमुखवाहनानि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सप्तानीकानां पिण्डीकृतानि प्रतिशक्रं त्रिषष्टिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि भवेयुः।

अब इनका पृथक्-पृथक् प्रमाण कहते हैं—

अर्थ—धरणानन्द आदि अवशेष सत्रह इन्द्रों के पूर्व कहे हुए नाव, गरुड़ आदि वाहन क्रम से प्रथम अनीक के प्रथम कक्ष में ५० हजार, द्वितीय में एक लाख, तृतीय में दो लाख, चतुर्थ में ४ लाख, पंचम में ८ लाख, षष्ठ में १६ लाख और सप्तम में नाव एवं गरुड़ आदि वाहनों की संख्या ३२ लाख प्रमाण है। इस प्रकार एक-एक इन्द्र के पास नाव हैं प्रमुख जिनमें, ऐसे सातों वाहनों का एकत्रित प्रमाण त्रेसठ लाख पचास हजार (६३५००००) है।

अब प्रत्येक इन्द्र की अनीकों का एकत्रित योग और उनके महत्तर आदि कहते हैं—

षट्शेषाश्वादिकानीकानां संख्यागणना समा।
आद्यानीकेन विज्ञेया विशेषान्तरवर्जिता ॥१०८॥
चतुःकोट्यश्चतुश्चत्वारिंशल्लक्षाः सहस्त्रकाः।
पञ्चाशच्चेति विज्ञेया संख्या गणितकोविदैः ॥१०९॥
सर्वैकत्रीकृता सप्तानीकानां वासवं प्रति।
सप्त सप्त पृथक् कक्षायुक्तानां प्रवरागमे ॥११०॥
षण्णां क्रमाद्यनीकानां स्वामी महत्तरोऽमरः।
नर्तकीनामनीकेऽन्त्ये देवीमहत्तरी प्रभुः ॥१११॥
देवाः प्रकीर्णका आभियोग्याः किल्विषिकाः पृथक्।
स्वल्पसम्पत्सुखोपेताः संख्यातीताः स्मृता जिनैः ॥११२॥

अर्थ—अश्व आदि छह अनीकों की संख्या का प्रमाण प्रथम अनीक प्रमाण ही जानना चाहिए, इसमें कोई अन्तर नहीं है। जिनागम में गणितज्ञ पुरुषों के द्वारा सात-सात कक्षाओं से युक्त सातों अनीकों का पृथक्-पृथक् एकत्रित योग चार करोड़ चवालीस लाख पचास हजार (४४४५००००) कहा गया है, यह प्रमाण एक-एक इन्द्र का अलग अलग है। क्रम से छह अनीकों के स्वामी महिष, घोड़ा, रथ, गज, पयादे और गन्धर्व महत्तर देव हैं तथा नृत्यकी नामक सप्तम अनीक की स्वामी महत्तरी (प्रधान) देवी होती है। प्रत्येक इन्द्र के घास अल्प सम्पत्ति और अल्प सुख से युक्त प्रकीर्णक आभियोग्य और किल्विषिक जाति के पृथक्-पृथक् असंख्यात असंख्यात देव होते हैं, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है ॥१०८-११२॥

अब असुरकुमारादि देवों की देवांगनाओं, वल्लभिकाओं और विक्रिया देवांगनाओं का प्रमाण कहते हैं—

असुराणां च षट्पञ्चाशत्सहस्त्राणि योषितः।
देव्यो वल्लभिकाः सन्ति सहस्त्रषोडशप्रमाः ॥११३॥
दिव्याः पञ्चमहादेव्यः पञ्चेन्द्रियसुखप्रदाः।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नागानां च स्त्रियः पञ्चाशत्सहस्त्रप्रमास्तथा ॥११४॥
प्रीता वल्लभिकादेव्यः सहस्त्रदशसम्मिताः।
दिव्यरूपा महादेव्यः पञ्चशर्मादिखानयः ॥११५॥
सुपर्णानां चतुश्चत्वारिंशत्सहस्त्रदेवताः।
देव्यो वल्लभिका रम्याश्चतुःसहस्त्रसम्मिताः ॥११६॥
सन्ति पञ्च महादेव्यो रूपादिरसखानयः।
शेष द्वीपादिसप्तानामिन्द्रादीनां सुराङ्गनाः ॥११७॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्त्राणि प्रत्येकं चारुमूर्तयः।
तथा वल्लभिका देव्यो द्विसहस्त्रप्रमाः प्रियाः ॥११८॥
रम्याः पञ्चमहादेव्यो मनोनयनवल्लभाः।
असुरादि त्रयाणामेकैका देवी निजेच्छया ॥११९॥
विक्रियर्द्ध्या सहस्त्राष्टदिव्यरूपाणि योषिताम्।
विकरोति विनामूलशरीरं च पृथक् पृथक् ॥१२०॥
शेषद्वीपादि सप्तानामेकैका देवता क्षणात्।
प्रत्येकं षट्सहस्त्राणि स्त्रीरूपाणि सृजेत्स्वयम् ॥१२१॥

अर्थ—असुरकुमारों के ५६००० देवांगनाएँ, १६००० वल्लभिकाएँ और पाँचों इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वालीं पाँच महादेवियाँ होतीं हैं। नागकुमारों के ५०००० देवांगनाएँ, १०००० वल्लभिकाएँ और पंचेन्द्रियों के सुख की खान स्वरूप, दिव्यरूप धारण करने वालीं पाँच महादेवियाँ हैं। सुपर्णकुमार देवों के ४०००० देवांगनाएँ, अत्यन्त रम्य ४००० वल्लभिकाएँ और रूप एवं रस की खान स्वरूप पाँच महादेवियाँ हैं। द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रों में से प्रत्येक इन्द्र की देवियाँ ३२०००, सुन्दर आकृति से युक्त वल्लभिकाएँ २००० और मन एवं नेत्रों को प्रिय लगने वालीं अत्यन्त रम्य महादेवियाँ पाँच होतीं हैं। असुरकुमार, नागकुमार और सुपर्णकुमार इन्द्रों की एक-एक देवी अपनी इच्छा से मूल शरीर को छोड़कर पृथक्-पृथक् दिव्य रूप को धारण करने वाली आठ-आठ हजार देवांगना रूप विक्रिया करतीं हैं। शेष द्वीपकुमार आदि सात इन्द्रों की एक-एक देवी अपनी इच्छा से मूल शरीर को छोड़कर पृथक्-पृथक् छह-छह हजार विक्रिया रूप का सृजन करती हैं ॥११३-१२१॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के पारिषद्, अंगरक्षक और अनीक आदि देवांगनाओं का प्रमाण कहते हैं—

चमरेन्द्रस्य चान्तःपरिषत्स्थित सुधाभूजः।
एकैकस्य पृथक् सन्ति देव्यः सार्धशतद्वयम् ॥१२२॥
द्वितीया परिषद्देवस्य स्त्रियो द्विशतप्रमाः।
तृतीया परिषद् गीर्वाणस्य सार्धशतस्त्रियः ॥१२३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वैरोचनस्य चान्तः परिषत्स्थितामृताशिनः।
एकैकस्य पृथग्भूता देव्यस्त्रिंशतसम्मिताः ॥१२४॥
द्वितीया परिषत्स्थस्य सार्धद्विशतयोषितः।
तृतीया परिषत्स्थस्य शतद्वयसुराङ्गनाः ॥१२५॥
नागेन्द्रस्यादिमायां परिषद्यवस्थितस्य च।
एकैक निर्जरस्य प्रत्येकं देव्यः शतद्वयम् ॥१२६॥
मध्यमायां सुरैकस्य षष्ट्यग्रशतयोषितः।
अन्तिमायां च ताश्चत्वारिंशदग्रशतस्त्रियः ॥१२७॥
सुपर्णस्यादिमायां परिषद्यप्यमरस्य च।
एकैकस्याङ्गनाः प्रत्येकं षष्ट्यग्रशतप्रमाः ॥१२८॥
मध्यमायां च चत्वारिंशद्युक्तशतयोषितः।
अंतिमायां सुरैकस्य विंशत्यग्रशतस्त्रियः ॥१२९॥
शेषद्वीपादिसप्तानामन्तः परिषदि स्फुटं।
देवैकैकस्य चत्वारिंशत्संयुक्तशताङ्गनाः ॥१३०॥
मध्यमापरिषत्स्थस्य विंशत्यग्रशताङ्गनाः।
अन्तिमा परिषद्देवैकस्य सन्ति शतस्त्रियः ॥१३१॥
सेनामहत्तराणां चाङ्गरक्षाणां सुराङ्गनाः।
प्रत्येकं शतसंख्याः स्युः स्वपुण्यपरिपाकजाः ॥१३२॥
सैन्यकानां च पञ्चाशत्स्त्रियः प्रत्येकमञ्जसा।
सर्वनिकृष्टदेवानां स्युर्द्वात्रिंशत्सुराङ्गनाः ॥१३३॥

अर्थ—चमरेन्द्र की अन्तः परिषद् में जितने देव हैं, उनमें एक-एक देव की पृथक्-पृथक् डेढ़-डेढ़ सौ देवियाँ हैं। द्वितीय परिषद् के देवों के दो-दो सौ और तृतीय परिषद् के देवों के साढ़े तीन-साढ़े तीन सौ देवियाँ हैं। वैरोचन इन्द्र की अन्तः परिषद् में जितने देव हैं, उनमें एक-एक देव के पृथक्-पृथक् तीन-तीन सौ देवियाँ हैं। द्वितीय परिषदस्थ देवों में प्रत्येक के पास ढ़ाई-ढ़ाई सौ देवियाँ हैं और तृतीय परिषद् के पारिषदों के पास दो-दो सौ देवियाँ हैं। नागेन्द्र की प्रथम परिषदस्थ पारिषद देवों में एक-एक देव के अलग-अलग दो-दो सौ देवियाँ हैं। मध्यम परिषदस्थ देवों के पृथक्-पृथक् एक सौ साठ-एक सौ साठ और अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों के एक सौ चालीस देवियाँ हैं। सुपर्ण इन्द्र की प्रथम सभा के देवों में एक-एक के पृथक्-पृथक् एक सौ साठ-एक सौ साठ देवियाँ हैं। मध्यम परिषद् के देवों की एक सौ चालीस-एक सौ चालीस और अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों की पृथक्-पृथक् एक सौ बीस-एक सौ बीस देवियाँ हैं। अवशेष द्वीपकुमार आदि सातों प्रकार के इन्द्रों की अन्तः परिषदस्थ

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देवों में प्रत्येक देव के एक सौ चालीस देवियाँ हैं। मध्यम परिषदस्थ पारिषदों में प्रत्येक देव की एक सौ बीस-एक सौ बीस देवांगनाएँ हैं तथा अन्तिम परिषदस्थ पारिषदों में प्रत्येक देव की सौ-सौ देवांगनाएँ हैं। अनीक देवों के प्रत्येक सेना अधिनायकों (महत्तरों) में प्रत्येक सेनापति के और प्रत्येक अंगरक्षक के अपने-अपने पूर्व पुण्य के फल से उत्पन्न होने वालीं सौ-सौ देवांगनाएँ हैं। प्रत्येक अनीक देवों के पचास-पचास और हीन से हीन देवों के बत्तीस बत्तीस देवांगनाएँ होतीं हैं ॥१२२-१३३॥

अब असुरेन्द्र आदि दसों इन्द्रों की आयु का कथन करते हैं–

असुराणां भवेदायुरुत्कृष्टं सागरोपमस्।
दशवर्षसहस्त्राणि जघन्यायुर्न संशयः ॥१३४॥
नागानां परमायुः स्यात्पल्योपम त्रयप्रमम्।
गरुडानां भवत्यायुः सार्धपल्यद्वयं परम् ॥१३५॥
द्वीपानामायुरुत्कृष्टं पल्यद्वयमखण्डितम्।
शेषाब्ध्यादिकषण्णां स्यात्सार्ध पल्यैकजीवितम् ॥१३६॥

अर्थ–असुरकुमारों की उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम और जघन्यायु दस हजार वर्ष प्रमाण है। नागकुमारों की तीन पल्योपम और गरुड़कुमारों की उत्कृष्ट आयु २$\frac{१}{२}$ पल्योपम प्रमाण है। द्वीपकुमारों की उत्कृष्ट आयु दो पल्योपम तथा शेष छह उदधिकुमारादिकों की उत्कृष्ट आयु डेढ़ (१$\frac{१}{२}$) पल्योपम प्रमाण है (जघन्य आयु दस हजार वर्ष है) ॥१३४-१३६॥

अब इन्द्रादिकों की और उत्तरेन्द्रों की आयु आदि का निरूपण करते हैं–

इन्द्राणां च प्रतीन्द्राणां लोकपालामृताशिनाम्।
त्रायस्त्रिंशसुराणां च सामानिकसुधाभुजाम् ॥१३७॥
उत्कृष्टायुरिदं ख्यातं तेषां मध्ये सुधाभुजाम्।
उत्तरेन्द्रस्य सिद्धान्ते तदायुः साधिकं मतम् ॥१३८॥
पूज्याः सर्वे प्रतीन्द्राश्च लोकपालामरास्तथा।
त्रायास्त्रिंशसुराः सामानिका एते समानकाः ॥१३९॥
महान्तः स्वस्वशक्रेणायुः सम्पदृर्द्धिशर्मभिः।
विक्रियाज्ञानदेवाद्यैः किंचिदूनातपत्रकाः ॥१४०॥

अर्थ–इन्द्रों की, प्रतीन्दों की, लोकपाल देवों की, त्रायस्त्रिंश देवों की और सामानिक देवों की उत्कृष्ट आयु समान होती है। इनमें उत्तरेन्द्रों की आयु सिद्धान्त में (दक्षिणेन्द्रों से) कुछ अधिक कही गई है। अन्य देवों द्वारा पूज्य समस्त प्रतीन्द्र तथा लोकपाल देव, त्रायस्त्रिंश देव और सामानिक देवों के छत्र इन्द्र के छत्र से कुछ छोटे होते हैं शेष आयु सम्पत्ति, ऋद्धि, सुख, विक्रिया शक्ति, ज्ञान और देवों के समूह आदि में ये सब अपने-अपने इन्द्र के सदृश ही होते हैं ॥१३७-१४०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों की देवांगनाओं की आयु का प्रतिपादन करते हैं–

चमरेन्द्रस्य देवीनां सार्धपल्यद्विजीवितम्।
वैरोचनस्य च स्त्रीणामायुः पल्यत्रयं महत् ॥१४१॥
नागेन्द्रस्यङ्गनानां हि पल्याष्टमांशजीवितम्।
सुपर्णस्यामरस्त्रीणां त्रिकोटिपूर्वजीवितम् ॥१४२॥
द्वीपादिशेषसप्तानां पत्नीनामायुरुत्तमम्।
अल्पमृत्युविनिःक्रान्तं त्रिकोटिवर्षसम्मितम् ॥१४३॥

अर्थ–चमरेन्द्र की देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु अढ़ाई ($२\frac{१}{२}$) पल्य, वैरोचन की देवियों की तीन पल्य, नागकुमारेन्द्र की देवांगनाओं की पल्य के ८ वें भाग, सुपर्णकुमारेन्द्र की देवियों की आयु तीन पूर्व कोटि और अपघात मृत्यु से रहित द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रों की देवियों की उत्कृष्ट आयु तीन करोड़ (३०००००००) वर्ष की होती है ॥१४१-१४३॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के अंगरक्षकों, सेना महत्तरों और अनीक देवों की आयु कहते हैं–

चमरस्याङ्गरक्षाणां सेनामहत्तरात्मनाम्।
आयुः पल्यं तथा सैन्यकानां पल्यार्धजीवितम् ॥१४४॥
तथा वैरोचनस्याङ्गरक्षकाणां स्वजीवितम्।
सेनामहत्तराणां हि स्वायुः पल्यं च साधिकम् ॥१४५॥
सैन्यकानां च पल्यार्धं साधिकं जीवितं मतम्।
नागेन्द्रस्याङ्गरक्षाणां सेनामहत्तरात्मनाम् ॥१४६॥
पूर्वकोटिप्रमाणायुः सैन्यकानामखण्डितम्।
वर्षकोटिप्रमं चायुस्ततोऽपि गरुडस्य वै ॥१४७॥
अङ्गरक्षकसेनानां महत्तराणां च जीवितम्।
कोटिवर्षप्रमं सैन्यकानां लक्षाब्दजीवितम् ॥१४८॥
शेषद्वीपादिसप्तानामङ्गमरक्षामृताशिनाम् ।
सेनामहत्तराणां चायुर्लक्षवर्षमानकम् ॥१४९॥
अनीकाह्वयदेवानामायुः खण्डविवर्जितम्।
वर्षाणां प्रवरं पञ्चाशत्सहस्त्रप्रमाणकम् ॥१५०॥

अर्थ–चमरेन्द्र के अंगरक्षकों और सेना महत्तरों की आयु एक पल्य प्रमाण तथा अनीक (सेना) देवों की आयु अर्ध पल्य प्रमाण है। वैरोचन इन्द्र के अंगरक्षकों और सेना महत्तरों की आयु एक पल्य से कुछ अधिक तथा अनीक देवों की आयु अर्ध पल्य से कुछ अधिक है। नागकुमार इन्द्र के अंगरक्षकों और सेना महत्तरों की आयु एक कोटि पूर्व की और अनीक देवों की कोटि वर्ष प्रमाण आयु है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गरुड़कुमार इन्द्रों के अंगरक्षकों और सेना महत्तरों की आयु कोटि वर्ष प्रमाण तथा सैन्यकों की एक लाख वर्ष प्रमाण है। शेष द्वीपकुमार आदि सात इन्द्रों के अंगरक्षक देवों और सेना महत्तरों की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष प्रमाण तथा अनीक देवों की अपघात रहित उत्कृष्ट आयु पचास हजार (५००००) वर्ष प्रमाण है ॥१४४-१५०॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के पारिषद देवों की आयु का निरूपण कहते हैं—

चमरस्य सुराणामाद्यायां परिषदि स्फुटम्।
सार्धपल्यद्वयं चायुर्द्वितीयायां सुधाभुजाम् ॥१५१॥
पल्यद्वयं तृतीयायां तत्सार्धपल्यसम्मितम्।
वैरोचनस्य देवानामाद्यायां परिषद्यपि ॥१५२॥
त्रिपल्यायुर्द्वितीयायां सार्धद्विपल्यजीवितम्।
तृतीयायां सुराणां चायुर्द्विपल्योपमं मतम् ॥१५३॥
नागस्य निर्जराणां प्रथमायां परिषद्यपि।
आयुः पल्याष्टमो भागो द्वितीयायां सुरात्मनाम् ॥१५४॥
पल्यषोडश भागानामेकोभागोऽस्ति जीवितम्।
तृतीयापरिषत्स्थानां गीर्वाणानामखण्डितम् ॥१५५॥
द्वात्रिंशद्विहतांशानां पल्यस्यैकांशजीवितम्।
वैनतेयस्य चाद्यायां परिषद्यमृताशिनाम् ॥१५६॥
त्रिकोटिपूर्वमानायुर्द्वितीयायां च जीवितम्।
द्विकोटिपूर्वमन्त्यायां कोटिपूर्वायुरिष्यते ॥१५७॥
द्वीपादिशेषसप्तानां देवानां परिषद्यपि।
प्रथमायां भवेदायुस्त्रिकोटिवर्षासम्मितम् ॥१५८॥
द्वितीयायां सुराणां च द्विकोटिवर्षजीवितम्।
तृतीयापरिषत्स्थानां कोटिवर्षायुरुत्तमम् ॥१५९॥

अर्थ—चमरेन्द्र की प्रथम परिषदस्थ पारिषदों की उत्कृष्ट आयु ढाई ($२\frac{१}{२}$) पल्य, द्वितीय परिषद् के पारिषदों की आयु दो पल्य की और तृतीय परिषद् के पारिषदों की आयु डेढ़ ($१\frac{१}{२}$) पल्य की होती है। वैरोचन इन्द्र की प्रथम परिषद् के पारिषदों की आयु तीन पल्य, द्वितीय परिषद् के पारिषदों की ढाई पल्य और तृतीय परिषद् के पारिषदों की आयु दी पल्य प्रमाण है। नागकुमार इन्द्र की प्रथम परिषद् के पारिषदों की आयु पल्य के आठवें भाग, द्वितीय परिषद् के पारिषदों की आयु पल्य के सोलहवें भाग और तृतीय सभा के देवों की आयु पल्य के बत्तीसवें भाग प्रमाण होती है। गरुड़कुमार इन्द्र की प्रथम सभा के देवों की आयु तीन पूर्व कोटि की, द्वितीय सभा के देवों की दो पूर्व कोटि की और तृतीय सभा के देवों की एक पूर्व कोटि की आयु होती है। द्वीपकुमार आदि शेष सात इन्द्रों की प्रथम परिषद् के पारिषदों की आयु तीन करोड़ (३००००००) वर्ष, द्वितीय परिषद् के पारिषदों की दो करोड़

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

(२०००००००) वर्ष और तृतीय परिषद् के पारिषदों की उत्कृष्ट आयु एक करोड़ (१०००००००) वर्ष प्रमाण होती है ॥१५१-१५९॥

अब असुरकुमार आदि इन्द्रों के शरीर की ऊँचाई, उच्छ्वास एवं आहार के क्रम का निरूपण करते हैं—

असुराणां तनूत्सेधश्चापानि पञ्चविंशतिः।
नागादिनवशेषाणां दशचापोच्चविग्रहः ॥१६०॥
असुराणां हृदाहारो गते वर्षसहस्त्रके।
उच्छ्वासः स्याद् गते पक्षे नागानां गरुडात्मनाम् ॥१६१॥
द्वीपानां मानसाहारः सार्धद्वादशभिर्दिनैः।
उच्छ्वासोऽपि मुहूर्तैश्च सार्धद्वादशसंख्यकैः ॥१६२॥
अब्धीनां विद्युदाख्यानां स्तनितानां सुधाभुजाम्।
भवेच्च मानसाहारो गतैर्द्वादशभिर्दिनैः ॥१६३॥
दिव्यामोदमयोच्छ्वासो मुहूर्तैर्द्वादशप्रमैः।
दिक्कु मारसुराणां चाग्नीनां वातामृताशिनाम् ॥१६४॥
मानसाहार एवस्ति सार्धसप्तदिनैर्गतैः।
स्यादुच्छ्वासो मुहूर्तैश्च सार्धसप्तप्रमैर्गतैः ॥१६५॥

अर्थ—असुरकुमार इन्द्र के शरीर का उत्सेध पच्चीस धनुष प्रमाण और शेष नागकुमार आदि नव इन्द्रों के शरीर का उत्सेध दस-दस धनुष प्रमाण है। असुरकुमार देव एक हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर मनसा आहार करते हैं और एक पक्ष व्यतीत हो जाने पर श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार, गरुड़कुमार और द्वीपकुमार १२ $\frac{१}{२}$ दिनों में मानसिक आहार करते हैं और १२ $\frac{१}{२}$ मुहूर्त में उच्छ्वास लेते हैं। उदधिकुमार, विद्युत्कुमार और स्तनितकुमार देव १२ दिन व्यतीत होने पर आहार ग्रहण करते हैं और १२ मुहूर्त व्यतीत होने पर दिव्य एवं सुगन्धमय उच्छ्वास लेते हैं। दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देव ७ $\frac{१}{२}$ दिन व्यतीत हो जाने पर आहार ग्रहण करते हैं और ७ $\frac{१}{२}$ मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर श्वासोच्छ्वास ग्रहण करते हैं ॥१६०-१६५॥

अब भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र कहते हैं—

असुराणामुत्कृष्टं चावधिज्ञानं भवोद्भवम्।
योजनानामसंख्यातकोट्यो भवान्तरादिवित् ॥१६६॥
नागादिनवशेषाणां चासंख्यातसहस्त्रकाः।
योजनानि जघन्यं तत्सर्वेषां पञ्चविंशतिः।१६७॥
बहुः स्तोक इतिख्यातोऽवधिश्च दिक्चतुष्टये।
श्वभ्रभूत्रयपर्यन्तमधोभागेऽवधिर्भवेत् ॥१६८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मेरोः शिखरपर्यन्तमूर्द्ध्वलोकेऽवधिर्मतः।
भावनामरसर्वेषां लक्षयोजनसम्मितः ॥१६९॥

अर्थ—असुरकुमार देवों का अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात करोड़ योजन है। ये अपने भवान्तरों को भी जानते हैं। अवशेष नागकुमार आदि नव इन्द्रों का उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात हजार योजन है। सभी इन्द्रों का जघन्य अवधि क्षेत्र २५ योजन प्रमाण है। चारों दिशाओं में यह अवधि क्षेत्र प्रति अल्प कहा गया है, वैसे सभी भवनवासी देव अपने अवधिज्ञान से नीचे तीसरे नरक पर्यंत और ऊपर एक लाख योजनों से सम्मित मेरु पर्वत के शिखर पर्यंत जानते हैं ॥१६६-१६९॥

अब चमरेन्द्र आदि इन्द्रों के परस्पर स्पर्धा स्थानों का कथन करते हैं—

सौधर्मेन्द्रेण चित्ते चमरेन्द्रः कुरुते वृथा।
सहाकिञ्चित्करामीर्ष्यां क्षेत्रसद्भाववर्तनात् ॥१७०॥
तथैशानसुरेन्द्रेण सहेर्ष्यां निःफलां मुधा।
हृदि वैरोचनेन्द्रोऽपि करोति पापकारिणीम् ॥१७१॥

अर्थ—क्षेत्रगत निमित्त कारण से चमरेन्द्र अपने चित्त में सौधर्मेन्द्र से वृथा ही कुछ ईर्ष्या करता है। इसी प्रकार वैरोचन भी अपने हृदय में ऐशानेन्द्र से पापोत्पादक और निष्फल ईर्ष्या करता है ॥१७०-१७१॥

अब इस सिद्धान्तसाररूप श्रुत को पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं—

इत्येवं करणानुयोगकथकं सर्वज्ञवाण्युद्भवम्,
धर्मध्याननिबन्धनं शुभनिधिं व्यावर्णनोत्थं परम्।
श्रीमद्भावनसंज्ञकामृतभुजां सिद्धान्तसारं श्रुतम्,
धर्मध्यानशुभाप्तये मुनिविदो यत्नात् पठन्त्वन्वहम् ॥१७२॥

अर्थ—इस प्रकार जो करणानुयोग को कहने वाला है, सर्वज्ञ की वाणी से निःसृत है, धर्मध्यान का हेतु है, शुभ का खजाना है तथा जिसमें भवनवासी देवों का महान् वर्णन है ऐसे इस सिद्धान्तसार ग्रन्थ का मुनिजन धर्मध्यानरूपी शुभ परिणामों की प्राप्ति के लिये प्रयत्नपूर्वक निरन्तर अध्ययन करें ॥१७२॥

अधिकारान्त मङ्गल

ये तीर्थेशजिनालया मणिमया नागामरैः पूजिताः
स्तुत्या भक्तिभरेण पुण्यनिधयो मेरोरधो भूतले,
या दिव्या जिनमूर्तयोऽति सुभगाश्चैत्यद्रुमेषु स्थिता-
स्तास्तानित्यसुखाप्तयेऽहमनिशं वन्दे स्तुवे भक्तितः ॥१७३॥

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्ति विरचिते दशविधभवनवासिदेव वर्णनोनामद्वादशोऽधिकारः॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—मेरु पर्वत के नीचे पृथ्वीतल पर नागकुमार आदि के द्वारा पूजित और भक्ति के भार से स्तुत्य जो जिनेन्द्र भगवान् के मणिमय जिनालय हैं तथा जो चैत्य वृक्षों पर स्थित पुण्य की निधि स्वरूप, दिव्य और अति सुभग जिन प्रतिमाएँ स्थित हैं, उन समस्त प्रतिमाओं की मैं सुख प्राप्ति के लिये भक्ति भाव से अहर्निश वन्दना करता हूँ और स्तुति करता हूँ ॥१७३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसारदीपक नाम महाग्रन्थ में दस प्रकार के भवनवासी देवों का वर्णन करने वाला द्वादश अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रयोदश अधिकार

व्यन्तर देवों का वर्णन

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा

असंख्यव्यन्तरावासस्थितान् सर्वान् जिनालयान्।
व्यन्तरामरवन्द्यार्च्यान् प्रतिमाभिः सह स्तुवे ॥१॥
अथ पञ्चगुरून्नत्वा विश्वकल्याणसिद्धिदान्।
करिष्ये वर्णनं सिद्ध्यै ह्यष्टधाव्यन्तरात्मनाम् ॥२॥

अर्थ—व्यन्तर देवों से वन्दनीय और पूजनीय व्यन्तर देवों के असंख्यात आवासों में स्थित प्रतिमाओं सहित सम्पूर्ण जिनालयों का मैं स्तवन करता हूँ। इसके बाद विश्व का कल्याण करने वाले और सिद्धि प्रदान करने वाले पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करके अब मैं आत्म सिद्धि के लिये आठ प्रकार के व्यन्तर देवों का वर्णन करूँगा ॥१-२॥

व्यन्तर देवों के आठ भेद—

आदिमाः किन्नरादेवाः किम्पुरुषा महोरगाः।
गन्धर्वाख्यास्ततो यक्षा राक्षसा भूतनिर्जराः ॥३॥
पिशाचाश्च ह्यमी ज्ञेया अष्टधा व्यन्तरामराः।
अमीषां वर्णभेदादीन् पृथग्वक्ष्येऽधुनाचिदे ॥४॥

अर्थ—किन्नर देव, किम्पुरुष देव, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ प्रकार के व्यन्तर देव हैं। अब ज्ञान प्राप्ति के लिये इनके शरीर का वर्ण और इनके भेद अलग-अलग कहता हूँ ॥३-४॥

अब व्यन्तर देवों के शरीर का वर्ण कहते हैं—

प्रियङ्गुफलभाः किन्नराश्च किम्पुरुषाः सिताः।
महोरगा हि कृष्णाङ्ग गन्धर्वयक्षराक्षसाः ॥५॥
हेमप्रभास्त्रयो भूताः कृष्णवर्णाः पिशाचकाः।
बहुलप्रभसद्गात्रा अमीषां भेद उच्यते ॥६॥

अर्थ—किन्नर देवों के शरीर का वर्ण प्रियंगुफल सदृश नील वर्ण, किम्पुरुषों का धवल वर्ण, महोरगों का कृष्ण वर्ण, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों का स्वर्ण सदृश वर्ण, भूतों का कृष्ण वर्ण और पिशाच जाति के देवों का पंक सदृश वर्ण होता है। अब इन आठों देवों के भिन्न-भिन्न भेद कहते हैं ॥५-६॥

अब व्यन्तर देवों के मुख्य आठ कुलों के अवान्तर भेद कहते हैं—

किन्नरा दशभेदा हि किम्पुरुषा द्विपञ्चधा।
महोरगाश्च तावन्तो गन्धर्वाः स्युर्दशात्मकाः ॥७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रोक्ता द्वादशधा यक्षाः सप्तप्रकारराक्षसाः।
भूताः सप्तविधाश्च द्विसप्तभेदाः पिशाचकाः ॥८॥

अर्थ—किन्नर देवों के दस भेद, किम्पुरुषों के दश भेद, महोरगों के दश भेद, गन्धर्वों के दश भेद, यक्षों के बारह, राक्षसों के सात, भूतों के सात और पिशाचों के चौदह भेद होते हैं ॥७-८॥

अब किन्नर और किम्पुरुष कुलों के अवान्तर भेदों के नाम कहते हैं—

आदिमाः किन्नरादेवाः किम्पुरुषास्ततोऽमराः।
हृदयङ्गमगीर्वाणाः स्वरूपाः पालकामराः ॥९॥
किन्नरकिन्नराः किन्नरनिन्द्याभिधनिर्जराः।
ततः किन्नरमान्याः किन्नरादिरम्यसंज्ञकाः ॥१०॥
किन्नरोत्तमसंज्ञाश्चैते किन्नरा द्विपञ्चधाः।
आद्याः सत्पुरुषा देवा महापुरुषसंज्ञकाः ॥११॥
देवाः पुरुषनामानः पुरुषोत्तमनिर्जराः।
पुरुषप्रभगीर्वाणास्तथातिपुरुषामराः ॥१२॥
वायवो मरुदेवाख्या मरुत्प्रभाभिधानकाः।
यशोमन्त इमे किम्पुरुषा दशविधा मताः ॥१३॥

अर्थ—प्रथम किन्नर नाम के व्यन्तर देवों में किन्नर और किम्पुरुष ये दो इन्द्र, हृदयंगम और स्वरूप ये प्रतीन्द्र हैं, शेष पालक किन्नरकिन्नर, किन्नरनिन्द्य, किन्नरमान्य, किन्नररम्य और किन्नरोत्तम ये दस प्रकार के किन्नर देव हैं। सत्पुरुष (इन्द्र), महापुरुष (इन्द्र), पुरुषनाम (प्रतीन्द्र), पुरुषोत्तम (प्रतीन्द्र), पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरुत, मरुदेव, मरुत्प्रभ और यशोमन्त नाम के दस प्रकार के किम्पुरुष व्यन्तर देव होते हैं ॥९-१३॥

अब महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच व्यन्तर देवों के अवान्तर नाम आदि कहते हैं—

अतिकाया महाकाया भुजगाभिधनिर्जराः।
ततो भुजगशाल्याख्याः स्कन्धशाल्यभिधानकाः ॥१४॥
मनोहराश्च अशिनाख्या महासुराह्वयामराः।
गम्भीराः प्रियदर्श्याख्या दशधैते महोरगाः ॥१५॥
आद्यो गीतरतिर्नाम्ना गीतकीर्तिसमाह्वयः।
हाहाख्यकोऽथ हूहूसंज्ञो नारदश्च तुम्बुरः ॥१६॥
कन्दवो वासवाभिख्यो महास्वरोऽथ धैवतः।
गन्धर्वकुलनामानि दशधेमानि सन्ति च ॥१७॥
आदिमो मणिभद्रस्तु पूर्णभद्राह्वयस्ततः।
शैलभद्रो मनोभद्रो भद्रकाख्यः सुभद्रकः ॥१८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर्वभद्रो मनुष्योऽथ धनपालः स्वरूपकः।
यक्षोत्तमो मनोहारी यक्षा द्वादशधा ह्यमी ॥१९॥
आद्यो भीमो महाभीमो विघ्नहारि समाह्वयः।
उदङ्को राक्षसाभिख्यो महाराक्षसनामकः ॥२०॥
ब्रह्मराक्षसनामामी सप्तधा राक्षसा मताः।
स्वरूपः प्रतिरूपाख्यो भूतोत्तमाभिधोमरः ॥२१॥
प्रतिभूतो महाभूतस्ततः प्रच्छन्नसंज्ञकः।
आकाशभूत इत्येते सप्तधा भूतजातयः ॥२२॥
कालाख्योऽथ महाकालः कूष्माण्डो राक्षसोऽमरः।
यक्षः सम्मोहकाभिख्यस्तारकश्चाशुचिः शुचिः ॥२३॥
सतालो देहनामाथ महादेहाभिधानकः।
पूर्णः प्रवचनाख्योऽमी पिशाचाश्च द्विसप्तधा ॥२४॥

अर्थ—अतिकाय (इन्द्र), महाकाय (इन्द्र), भुजगा (प्रतीन्द्र), भुजगशाल्य (प्रतीन्द्र), स्कंधशाल्य, मनोहर, अशनि, महासुर, गम्भीर और प्रियदर्शी ये दस प्रकार के महोरग व्यन्तर देव हैं। गीतरति (इन्द्र), गीतकीर्ति (इन्द्र), हा हा (प्रतीन्द्र), हू हू (प्रतीन्द्र), नारद, तुम्बुर, कन्दव, वासव, महास्वर और धैवत ये दस प्रकार के गन्धर्व कुल के व्यन्तर देव हैं। मणिभद्र (इन्द्र), पूर्णभद्र (इन्द्र), शैलभद्र (प्रतीन्द्र), मनोभद्र (प्रतीन्द्र), भद्रक, सुभद्रक, सर्वभद्र, मनुष्य, धनपाल, स्वरूपक, यक्षोत्तम और मनोहारी ये बारह प्रकार के यक्ष कुल के व्यन्तर देव हैं। भीम (इन्द्र), महाभीम (इन्द्र), विघ्नहारी (प्रतीन्द्र), उदंक (प्रतीन्द्र), राक्षस, महाराक्षस और ब्रह्मराक्षस ये सात प्रकार के राक्षस व्यन्तर देव हैं। स्वरूप (इन्द्र), प्रतिरूप (इन्द्र), भूतोत्तम (प्रतीन्द्र), प्रतिभूत (प्रतीन्द्र), महाभूत, प्रच्छन्न और आकाशभूत ये सात प्रकार के भूत जाति के व्यन्तर देव हैं। काल (इन्द्र), महाकाल (इन्द्र), कूष्माण्ड (प्रतीन्द्र), राक्षस (प्रतीन्द्र), यक्ष, सम्मोहक, तारक, अशुचि, शुचि, सताल, देह, महादेह, पूर्ण और प्रवचन ये चौदह प्रकार के पिशाच जाति के व्यन्तर देव हैं ॥१४-२४॥

अब प्रत्येक कुलों के इन्द्रों के नाम, प्रतीन्द्रों की संख्या और दो-दो वल्लभिकाओं के नाम कहते हैं—

आद्यौ द्वौ द्वाविमाविन्द्रौ पूज्यावेकं कुलं प्रति।
पृथग्भूतौ प्रतीन्द्रौ च द्वौ द्वौ देवार्चितौ परौ ॥२५॥
आद्येन्द्रः किन्नरो नाम्ना किम्पुरुषो द्वितीयकः।
ततः सत्पुरुषेन्द्रोऽथ महापुरुषदेवराट् ॥२६॥
अतिकायो महाकायः शक्रो गीतरविस्ततः।
गीतकीर्ति समाख्यो माणिभद्रः पूर्णभद्रकः ॥२७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भीम इन्द्रो महाभीमः स्वरूपः प्रतिरूपकः।
कालेन्द्रोऽथ महाकाल इमे षोडश वासवाः।२८॥
षोडशैव प्रतीन्द्राः स्युः षोडशानां सुरेशिनाम्।
द्वे द्वे तथा सहस्त्रे स्युर्देव्यः प्रत्येकमूर्जिताः ॥२९॥
किन्नरस्या वंतसाख्या देवी केतुमती भवेत्।
शची किम्पुरुषस्यास्ति रतिसेना रतिप्रिया ॥३०॥
स्यातां सत्पुरुषेन्द्रस्य रोहिणी नवमीस्त्रियौ।
हरिता पुष्पवत्यौ स्तो महापुरुषनायिके ॥३१॥
अतिकायस्य चेन्द्राणी भोगा भोगवती भवेत्।
महाकायस्य देवी चानिन्दिता पुष्पगन्धिनी ॥३२॥
शची गीतरतीन्द्रस्य स्वरसेना सरस्वती।
नन्दिनी प्रियदर्शा स्याद् गीतकीर्तेश्च वल्लभा ॥३३॥
माणिभद्रस्य देवी स्यात्कुन्दाख्या बहुरूपिणी।
पूर्णभद्रस्य सद्देवी तारका चोत्तमा भवेत् ॥३४॥
भीमस्य वसुमित्रास्ति सुपद्मा प्राणवल्लभा।
रत्नप्रभा सुवर्णाभा महाभीमस्य चाङ्गना ॥३५॥
स्वरूपस्य महादेवी स्वरूपा बहुरूपिणी।
प्रतिरूपस्य चेन्द्राणी सुसीमास्ति शुभानना ॥३६॥
कालस्य कमलादेवी भवेच्च कमलप्रभा।
महाकालस्य देवी स्यादुत्पला च सुदर्शना ॥३७॥
एते द्वे द्वे महादेव्यौ रूपसौभाग्यभूषिते।
प्रत्येकं वासवानां स्तो द्वात्रिंशत्ताश्च पिण्डिताः ॥३८॥

अर्थ—एक-एक कुल में अन्य देवों से पूज्य दो-दो इन्द्र होते हैं और प्रत्येक कुल में देवों से पूजित दो-दो प्रतीन्द्र होते हैं। प्रथम कुल में किन्नर और किम्पुरुष दो इन्द्र हैं। द्वितीय किम्पुरुषों के कुल में सत्पुरुष और महापुरुष ये दो इन्द्र हैं। इसके आगे तृतीय आदि कुलों में अतिकाय, महाकाय, गीतरव, गीतकीर्ति, मणिभद्र, पूर्णभद्र, भीम, महाभीम, स्वरूप, प्रतिरूपक, काल और महाकाल ये सोलह इन्द्र होते हैं। सोलहों इन्द्रों के सोलह ही प्रतीन्द्र होते हैं। इन सभी इन्द्रों और प्रतीन्द्रों में से प्रत्येक के भिन्न-भिन्न दो-दो हजार देवांगनाएँ होतीं हैं। किन्नर इन्द्र के अवतन्स और केतुमती दो शची हैं। किम्पुरुष के रतिसेना और रतिप्रिया ये दो शची हैं। सत्पुरुष के रोहणी और नवमी तथा महापुरुष के हरित और पुष्पवती ये शची हैं। अतिकाय इन्द्र के भोगा और भोगवती तथा महाकाय इन्द्र के अनिन्दिता और पुष्पगन्धिनी ये दो-दो इन्द्राणियाँ हैं। गीतरति इन्द्र के स्वरसेना और सरस्वती तथा गीतकीर्ति के नन्दिनी

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और प्रियदर्शा नाम की दो-दो इन्द्राणियाँ हैं। मणिभद्र देव के कुन्दा और बहुरूपिणी एवं पूर्णभद्र के तारका और उत्तमा ये दो-दो वल्लभिकाएँ हैं। भीम इन्द्र के वसुमित्रा तथा सुपद्मा और महाभीम के रत्नप्रभा एवं सुवर्णाभा ये दो-दो इन्द्राणियाँ हैं। स्वरूप इन्द्र के स्वरूपा, बहुरूपिणी तथा प्रतिरूप के सुसीमा और शुभानना ये दो-दो इन्द्राणियाँ हैं। काल इन्द्र के कमलादेवी, कमलप्रभा तथा महाकाल इन्द्र के उत्पला और सुदर्शना ये दो-दो महादेवियाँ हैं। इस प्रकार रूप एवं सौभाग्य से विभूषित दो, दो महा इन्द्राणियाँ प्रत्येक इन्द्रों के भिन्न-भिन्न हैं। इस प्रकार सोलह इन्द्रों के बत्तीस इन्द्राणियाँ हैं ॥२५-३८॥

अब व्यन्तर देवों के निवास का एवं उनके पुरों (नगरों) आदि का वर्णन करते हैं—

रत्नप्रभाक्षितेः सन्ति खरभागे महागृहाः।
चतुर्दशसहस्त्राणि भूतानामविनश्वराः ॥३९॥
रत्नप्रभावनेः पङ्कभागे रत्नमयाः शुभाः।
आवासा राक्षसानां स्युः सहस्त्रषोडशप्रमाः ॥४०॥
शेषव्यन्तरदेवानां मध्यलोकेऽचलादिषु।
सर्वतः सन्ति चावासाश्चैत्यालयविराजिताः ॥४१॥
अञ्जनो वज्रधातुश्च द्वीपः सुवर्णनामकः।
द्वीपा मनःशिलाभिख्यो द्वीपो वज्रसमाह्वयः ॥४२॥
रजतो हिङ्गुलद्वीपो हरितालाभिधानकः।
अष्टद्वीपेषु चैतेषु समभागे समावनौ ॥४३॥
अष्टानां व्यन्तरेन्द्राणां प्रत्येकं शाश्वतानि च।
जम्बूद्वीपसमानानि पञ्चपञ्चपुराण्यपि ॥४४॥
पूर्वादिदिक्षु विद्यन्ते मानस्तम्भजिनालयैः।
चैत्यवृक्षैश्च युक्तानि स्वस्वेन्द्रनामभिः स्फुटम् ॥४५॥
अमीषां मध्यभागस्थं स्वेन्द्रनामयुतं पुरम्।
प्रभं चावर्तकं कान्तं मध्यमं चेति दिक्ष्वपि ॥४६॥

अर्थ—रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में भूत नामक व्यन्तर देवों के शाश्वत चौदह हजार महागृह हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकभाग में राक्षस कुल व्यन्तरों के रत्नमयी और अत्यन्त रमणीक सोलह हजार प्रमाण आवास हैं। शेष व्यन्तर देवों के चैत्यालयों से विभूषित आवास तिर्यग्लोक के पर्वतों पर सर्वत्र हैं। अंजन, वज्रधातु, सुवर्ण, द्वीप, मनः शिल द्वीप, वज्र द्वीप, रजत द्वीप, हिंगुल द्वीप और हरिताल द्वीप, इन आठ द्वीपों में चित्रा भूमि पर समभाग में अर्थात् भूमि के नीचे या पर्वतों के ऊपर नहीं जम्बूद्वीप सदृश समतल भूमि पर आठ प्रकार के व्यन्तर देवों में से प्रत्येक इन्द्र के जम्बूद्वीप सदृश प्रमाण वाले पाँच-पाँच नगर हैं। ये नगर मानस्तम्भों, जिनालयों और चैत्यवृक्षों से युक्त तथा अपने-अपने इन्द्रों के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नाम से संयुक्त पूर्वादि चारों दिशाओं में हैं। इन नगरों में से अपने-अपने इन्द्रों के नाम से युक्त पुर नाम का नगर मध्य में स्थित है, अवशेष किन्नरप्रभ, किन्नरावर्त, किन्नरकान्त और किन्नरमध्य ये चारों नगर क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में अवस्थित हैं ॥३९-४६॥

एतेषां पृथग्नामानि प्रोच्यंते–

एषां पुराणां मध्यस्थपुरस्य किन्नरपुराख्यं नाम स्यात्। पूर्वभागस्थितपुरस्य किन्नरप्रभाह्वयं नामास्ति। दक्षिणदिग् भागस्थपुरस्य किन्नरावर्तपुराभिधं नाम स्यात्। पश्चिमाशास्थपुरस्य किन्नरकान्तपुरसंज्ञं नामास्ति। उत्तरादिग् स्थितपुरस्य किन्नर मध्यमाह्वयं नाम भवेत्। तथा अन्येषां सप्तद्वीपस्थ सर्वपुराणां अनया रीत्या स्व स्वेन्द्रनामपूर्वाणि प्रभावर्तकान्त मध्यमान्तानि नामानि भवन्ति।

अब इन नगरों के पृथक् -पृथक् नाम कहते हैं–

अर्थ–अंजन द्वीप के मध्य स्थित नगर का नाम किन्नरपुर है। पूर्व दिशा स्थित नगर का नाम किन्नरप्रभ है। दक्षिण दिग् स्थित नगर का नाम किन्नरावर्त है। पश्चिम दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरकान्त है और उत्तर दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरमध्य है। इसी प्रकार सातों द्वीपों में अपने-अपने इन्द्रों के नाम हैं पूर्व में जिनके ऐसे पुर, प्रभ, आवर्त, कान्त और मध्य नाम के नगर इसी रीति से पूर्वादि दिशाओं में अवस्थित हैं।

अब प्राकार, द्वार, प्रासाद, सभामण्डप एवं चैत्यवृक्षों आदि का प्रमाण पूर्वक वर्णन करते हैं–

प्राकारा नगरेषु स्युः शाश्वताः प्रोन्नताः शुभाः।
द्विक्रोशाधिकसप्तत्रिंशद्योजनैश्च विस्तृताः ॥४७॥
मूले क्रोशद्वयाग्रद्वादशसंख्यैश्च योजनैः।
सार्धद्वियोजन व्यासा मूर्ध्नि द्वारादिभूषिताः ॥४८॥
द्वाराणामुदयोऽमीषां सार्धद्विषष्टियोजनः।
विस्तारः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनप्रमः ॥४९॥
द्वाराणां मस्तकेऽमीषां प्रासादामणिसङ्कुलाः।
विद्यन्ते प्रोन्नता रम्याः पञ्चसप्ततियोजनैः ॥५०॥
विस्तृताः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनैः शुभाः।
तेषां मध्ये सुधर्माख्यो राजते मणिमण्डपः ॥५१॥
योजनानां नवोत्तुङ्गः सार्धद्वादशयोजनैः।
आयतो विस्तृतः क्रोशाधिकषड्भिश्च योजनैः ॥५२॥
तस्य द्वाराणि रम्याणि द्वियोजनोन्नतानि च।
योजनव्यासयुक्तानि मण्डपस्य भवन्त्यपि ॥५३॥
इत्येवं वर्णना ज्ञेया सर्वेन्द्राणां पुरेषु च।
नगराणां चतुर्दिक्षु चत्वारश्चैत्यपादपाः ॥५४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रत्नपीठाश्रिता मूले चतुर्दिक्षु विराजिताः।
भौमेन्द्र पूजिताभिः स्युर्जिनेन्द्रदिव्यमूर्तिभिः ॥५५॥
मानस्तम्भाश्च चत्वारो मणिपीठत्रिकोर्ध्वगाः।
शालत्रय युताः सन्ति सिद्धबिम्बाढ्यशेखराः ॥५६॥

अर्थ—उन प्रत्येक नगरों में ३७ योजन २ कोस ऊँचे, मूल में १२ $\frac{१}{२}$ योजन चौड़े, ऊपर २ $\frac{१}{२}$ योजन चौड़े, शाश्वत, शुभ और द्वारों आदि से विभूषित आकार हैं। इन आकारों में स्थित द्वारों में से प्रत्येक द्वार की ऊँचाई ६२ $\frac{१}{२}$ योजन तथा चौड़ाई ३१ $\frac{१}{४}$ योजन प्रमाण है। इन द्वारों के ऊपर ७५ योजन ऊँचे और ३१ $\frac{१}{४}$ योजन चौड़े मणिमय प्रासाद हैं। जिनके मध्य में सुधर्मा नाम के मणिमय मण्डप सुशोभित होते हैं। जो ९ योजन ऊँचे, १२ $\frac{१}{२}$ योजन चौड़े और ६ $\frac{१}{४}$ योजन चौड़े हैं। उस सभा मण्डप के द्वार अत्यन्त रमणीक, दो योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े हैं। इसी प्रकार का वर्णन सर्व इन्द्रों (दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों) के नगरों में जानना चाहिए। नगरों की चारों दिशाओं में (एक-एक) चार चैत्य वृक्ष हैं। जिनके मूल में चारों दिशाओं में रत्नपीठ के आश्रित, व्यन्तर देवों से पूजित जिनेन्द्र भगवान् के दिव्य मूर्तियाँ हैं। इन्हीं चारों वृक्षों के सामने तीन-तीन मणिमय पाठ के ऊपर, तीन कोट से युक्त चार मानस्तम्भ हैं, जिनके शिखर सिद्ध भगवान् के बिम्बों से युक्त हैं ॥४७-५६॥

अब पिशाचादि व्यन्तर देवों के चैत्य वृक्षों के भिन्न-भिन्न नाम, उनमें स्थित प्रतिबिम्ब एवं मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं—

अशोकश्चम्पको नागस्तुम्बुरुश्च वटद्रुमः।
बदरी तुलसी वृक्षः कदम्बोऽष्टांह्रिपा इमे ॥५७॥
मणिपीठाग्रभागस्थाः पृथ्वीसारमयोन्नताः।
भवनेषु क्रमात्सन्ति ह्यष्टानां व्यन्तरात्मनाम् ॥५८॥
तेषां मूले चतुर्दिक्षु चतस्रः प्रतिमाः पृथक्।
चतुस्तोरणसंयुक्ता दीप्ता दिव्या जिनेशिानाम् ॥५९॥
मानस्तंभोऽस्ति चैकैकः एकैकां प्रतिमां प्रति।
मुक्तास्त्रग्मणिघण्टाढ्यस्त्रिपीठशालभूषितः ॥६०॥

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इन आठों व्यन्तर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (केसर), तुम्बरु, वट, वदरी, तुलसी और कदम्ब नाम वाले चैत्यवृक्ष होते हैं। ये ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पृथ्वी के सारमय (पृथ्वीकायिक) और मणिपीठ के अग्रभाग पर स्थित होते हैं। इन वृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में जिनेन्द्र भगवान् की चार-चार तोरण द्वारों से युक्त, देदीप्यमान और दिव्य पृथक्-पृथक् चार प्रतिमाएँ हैं तथा एक-एक प्रतिमा के प्रति मुक्तादामों एवं मणिमय घण्टाओं से युक्त, मणिमय तीन-तीन पीठ और प्राकार से युक्त एक-एक मानस्तम्भ है ॥५७-६०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब नगरों की चारों दिशाओं में स्थित वनों एवं विदिशाओं में स्थित नगरों का कथन करते हैं–

पुराणां च चतुर्दिक्षु त्यक्त्वा द्वे च सहस्त्रके।
योजनानां हि चत्वारि वनानि शाश्वतान्यपि ॥६१॥
लक्षयोजनदीर्घाणि लक्षार्धविस्तृतानि वै।
अशोकसप्तपर्णाम्र-चम्पकाढ्यानि सन्ति च ॥६२॥
मध्येऽमीषां हि चत्वारो राजन्ते चैत्यपादपाः।
अशोक-सप्तपर्णाम्र-चम्पकाख्या जिनार्चनैः ॥६३॥
विदिक्षु नगराणां स्युर्गणिकानां पुराणि च।
सहस्त्रचतुरशीतियोजनैर्विस्तृतानि वै ॥६४॥
वृत्ताकाराणि नित्यानि प्राकारादियुतान्यपि।
पुराणि शेष भौमानामनेकद्वीपवार्धिषु ॥६५॥

अर्थ–नगरों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, आम्र और चम्पक नाम के चार-चार शाश्वत वन हैं, जो एक-एक लाख योजन लम्बे तथा पचास-पचास हजार योजन चौड़े हैं। इन वनों के मध्य में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से युक्त अशोक, सप्तपर्ण, आम्र और चम्पक नाम के चार-चार चैत्य वृक्ष शोभायमान होते हैं। नगरों की चारों विदिशाओं में गणिकाओं के वलयाकार, शाश्वत और आकार आदि से युक्त नगर हैं, जो ८४००० योजन लम्बे और ८४००० योजन ही चौड़े हैं। शेष व्यन्तर देवों के नगर अनेक द्वीपों एवं अनेक समुद्रों में हैं ॥६१-६५॥

अब किन्नर आदि सोलह इन्द्रों की ३२ गणिका महत्तरों के नाम कहते हैं–

इन्द्रं प्रति त्विमे स्तो महत्तरिके सुराङ्गने।
गणिकासंज्ञिके द्वे द्वे पृथक् पल्यैकजीविते ॥६६॥
माधुरी मधुरालापा देवी च मधुरस्वरा।
पुरुषादिप्रियाख्या पृथुका सोमाह्वया ततः ॥६७॥
प्रदर्शनी हि भोगाख्या भोगावती भुजङ्गिनी।
नागप्रिया सुतोषाथ घोषाख्या विमलप्रिया ॥६८॥
सुस्वरानिन्दितादेवी देवी भद्रा सुभद्रका।
मालिनी पद्ममालाख्या सर्वश्री सर्वसैनिका ॥६९॥
रुद्राथ रुद्रदर्शाख्या भूतकान्ता समाह्वया।
भूतभूतप्रिया देवी दत्ता महाभुजङ्गिनी ॥७०॥
अम्बिकाथ करालाख्या सुरसेना सुदर्शना।
इन्द्राणां स्युरिमा देव्यो द्वात्रिंशद्विश्वपिण्डिताः ॥७१॥

अर्थ–सोलह इन्द्रों में से प्रत्येक की गणिका नाम की दो-दो प्रधान देवांगनाएँ हैं, इनमें से प्रत्येक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

की आयु एक-एक पल्य प्रमाण है। माधुरी, मधुरालाप, मधुरस्वरा, पुरुषश्रिया, पृथुका, सोमा, प्रदर्शनी, भोगा, भोगवती, भुजंगिनी, नागप्रिया, सुतोषा, घोषा, विमलप्रिया, सुस्वरा, अनिंदिता, भद्रा, सुभद्रका, मालिनी, पद्ममाला, सर्वश्री, सर्वसैनिका, रुद्रा, रुद्रदर्शा, भूतकान्ता, भूतप्रिया, दत्ता, महाभुजंगिनी, अम्बिका, कराला, सुरसेना और सुदर्शना ये ३२ गणिका महत्तरिकाएँ व्यन्तरवासी इन्द्रों की हैं ॥६६-७१॥

अब व्यन्तर देवों के तीन प्रकार के निवास स्थानों का अवस्थान सूचित कर उनके नगरों एवं कूटों का प्रमाण कहते हैं—

अष्टानां व्यन्तराणां स्युः पुराणि भवनानि च।
आवासा इति विज्ञेयास्त्रिविधाः स्थानकाः शुभाः ॥७२॥
मध्यलोकस्थद्वीपाब्धिमहीषु स्यु पुराणि च।
खरांशे पङ्कभागे चाधोलोके भवनान्यपि ॥७३॥
आवासाः सन्ति चैतेषामूर्ध्वलोके क्षयोज्झिताः।
पर्वताग्रेषु कूटेषु वृक्षाग्रेषु ह्रदादिषु ॥७४॥
वृत्तोत्कृष्टपुराणां स्याद् व्यासो लक्षैकयोजनः।
जघन्यनगराणां किलैकयोजनविस्तरः ॥७५॥
उत्कृष्टभवनानां हि सकलोत्कृष्टविस्तरः।
योजनद्विशताग्रस्थसहस्त्रद्वादशप्रमः ॥७६॥
जघन्यभवनानां स्याद् विस्तरोऽतिजघन्यकः।
योजनानामधोलोके पञ्चविंशतिमानकः ॥७७॥
विष्कम्भो निखिलोत्कृष्टावासानां श्रीजिनागमे।
योजनानां जिनैः प्रोक्तः सहस्त्रद्वादशप्रमः ॥७८॥
आवासानां जघन्यानां व्यासः क्रोशत्रयं भवेत्।
उत्कृष्टभवनादीनां मध्ये कूटोऽस्ति भास्वरः ॥७९॥
योजनत्रिंशतव्यासः शतैकयोजनोन्नतः।
जघन्यभवनादीनां मध्ये कूटी जघन्यकः ॥८०॥
एकगव्यूतिविस्तारो हेमरत्नमयोऽक्षयः।
क्रोशैकस्य त्रिभागानामेकभागसमुन्नतः ॥८१॥

अर्थ—आठों प्रकार के व्यन्तर देवों के रहने के शुभ स्थान पुर, भवन और आवास के भेद से तीन प्रकार के जानना चाहिए। मध्यलोक में (सम) पृथ्वी पर स्थित द्वीप, समुद्रों में व्यन्तर देवों के जो निवास स्थान हैं, उन्हें पुर कहते हैं। अधोलोक में खर और पंकभाग में जो स्थान हैं, उन्हें भवन कहते हैं तथा ऊर्ध्वलोक में अर्थात् पृथ्वीतल से ऊपरी भागों में पर्वतों के अग्रभागों पर, कूटों पर, वृक्षों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के अग्रभागों पर और पर्वतस्थ सरोवरों आदि में जो स्थान हैं, उन्हें आवास कहते हैं। ये तीनों प्रकार के निवास स्थान हानि-क्षय से रहित अर्थात् शाश्वत हैं। उत्कृष्ट पुर वृत्ताकार और एक लाख योजन विस्तार वाले हैं तथा जघन्य पुर एक योजन विस्तार वाले हैं। समस्त उत्कृष्ट भवनों का उत्कृष्ट विस्तार १२२०० योजन प्रमाण है। अधोलोक स्थित जघन्य भवनों का जघन्य विस्तार २५ योजन प्रमाण है। जिनागम में जिनेन्द्र भगवान के द्वारा सम्पूर्ण उत्कृष्ट आवासों का विष्कम्भ १२००० योजन कहा गया है तथा जघन्य आवासों का व्यास तीन कोस कहा गया है। उत्कृष्ट भवन आदि के मध्य में देदीप्यमान कूट हैं, जो ३०० योजन चौड़े और १०० योजन ऊँचे हैं। जघन्य भवनों आदि के मध्य में जघन्य कूट हैं, जो स्वर्ण और रत्नमय हैं, शाश्वत हैं तथा एक कोस चौड़े और $\frac{१}{३}$ कोस ऊँचे हैं ॥७२-८१॥

अब कूटों का अवशेष वर्णन करते हुए व्यन्तर देवों के निवास (आवासों आदि का) स्थानों का विभाग दर्शाते हैं—

अमीषां सर्वकूटानां मध्यभागे च मूर्धनि।
स्फुरद्रत्नमयस्तुङ्ग एकैकः श्रीजिनालयः ॥८२॥
ज्येष्ठानां भवनादीनामुत्कृष्टा वेदिका मता।
प्रतोलीतोरणाद्याढ्या क्रोशद्वयोच्छ्रितोर्जिता ॥८३॥
लघूनां भवनादीनां लध्वी सद्वेदिका भवेत्।
पञ्चविंशतिचापोच्चा गोपुरादिविभूषिता ॥८४॥
केषाञ्चिद् भौमदेवानामावासाः सन्ति केवलम्।
केषाञ्चिद् भवनैः सार्धमावासाः स्युः सुधाभुजाम् ॥८५॥
पुराणि भवनान्युच्चावासाः एते त्रयः शुभाः।
भवन्ति वसतिस्थानाः केषाञ्चित्पुण्यपाकतः ॥८६॥
तथेतित्रिविधस्थानानि स्युर्भवनवासिनाम्।
नवानामसुराणां च केवलं भवनान्यपि ॥८७॥

अर्थ—इन उत्कृष्ट एवं जघन्य सर्व कूटों के ऊपर मध्य भाग में देदीप्यमान रत्नमय एक-एक उत्तुंग जिनालय हैं। उत्कृष्ट भवनों आदि की उत्कृष्ट वेदियाँ प्रतोली तथा तोरणों आदि से युक्त दो कोस ऊँची हैं तथा जघन्य भवनों आदि की जघन्य वेदियाँ गोपुर आदि से विभूषित और २५ धनुष ऊँची हैं। पूर्व पुण्योदय से किन्हीं किन्हीं व्यन्तर देवों के मात्र आवास ही हैं, किन्हीं के आवास और भवन दोनों हैं तथा किन्हीं-किन्हीं व्यन्तर देवों के आवास, भवन और पुर ये तीनों प्रकार के अत्यन्त शुभ निवास स्थान होते हैं। भवनवासी देवों में असुरकुमारों के मात्र भवन होते हैं, अन्य शेष भवनवासियों के तीनों प्रकार के निवास स्थान होते हैं ॥८२-८७॥

अब व्यन्तरेन्द्रों के परिवार देवों का विवेचन करते हैं—

प्रतिशक्रं भवेदेकैकः प्रतीन्द्रोऽमरावृतः।
प्रत्येकं किन्नरादीनां सर्वेन्द्राणां भवन्ति च ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चत्वार्येव सहस्त्राणि देवाः सामानिकाह्वयाः।
अङ्गरक्षामराः सन्ति सहस्त्रषोडशप्रमाः ॥८९॥
आदिमापरिषत्स्थाः स्युर्देवा अष्टशतानि च।
मध्यमापरिषद्देवाः सहस्त्रप्रमिता मताः॥९०॥
अन्तिमापरिषत्स्थामरा द्वादशशतप्रमाः।
गजा अश्वा रथास्तुङ्गा वृषभाश्च पदातयः ॥९१॥
गन्धर्वाः सुरनर्तक्यः सप्तानीकान्यमूनि च।
प्रत्येकं सर्वयुक्तानि कक्षाभिः सप्तसप्तभिः ॥९२॥
गजानां प्रथमेऽनीकेऽष्टाविंशति सहस्त्रकाः।
गजाश्च द्वितीये षट्पञ्चाशत्सहस्त्रहस्तिनः ॥९३॥
इत्येवं च तृतीयाद्यनीकेषु द्विगुणोत्तराः।
सप्तमानीकपर्यन्तं विद्यन्ते हस्तिनः क्रमात् ॥९४॥
सप्तानीकगजाः सर्वे सन्ति पिण्डीकृता बुधैः।
पञ्चत्रिंशच्चलक्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्त्रकाः ॥९५॥
इत्थं गणनया ज्ञेया ह्यश्चसंख्यागजप्रमा।
तथारथाद्यनीकानि गजसंख्यासमानि च ॥९६॥
द्वे कोट्यौ चाष्टचत्वारिंशल्लक्षाणि सहस्त्रकाः।
द्व्यधिका नवतिश्चेति संख्यासर्वाजिनैर्मता ॥९७॥
पिण्डीकृताऽप्यनीकानां सप्तानां श्रीजिनागमे।
सप्तसप्तप्रकाराणां गजादीनां सुरेशिनाम् ॥९८॥
प्रकीर्णकाह्वया देवा आभियोगिकसंज्ञकाः।
किल्विषिकास्त्रयोऽत्रैते ह्यसंख्याता भवन्ति च ॥९९॥
त्रायस्त्रिंशसुरा लोकपालाः सन्ति न जातुचित्।
ततोऽस्ति व्यन्तरेन्द्राणां परिवारोऽखिलोऽष्टधा ॥१००॥

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष आदि प्रत्येक इन्द्र के परिवार में देवों से वेष्टित एक-एक प्रतीन्द्र देव होते हैं। सामानिक देव चार (४०००) हजार और अंगरक्षक देव १६००० हजार होते हैं। अभ्यन्तर परिषद् के देव ८०० मध्यम परिषद् के १००० और बाह्य परिषद् के देव १२०० होते हैं। प्रत्येक इन्द्र के हाथी, घोड़ा, उत्तुंग रथ, वृषभ, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक सात-सात कक्षाओं से युक्त होती हैं। सातों अनीकों में से हाथियों की अनीक की प्रथम कक्ष में २८००० हाथी, द्वितीय में ५६००० हाथी होते हैं। इस प्रकार तृतीय कक्ष से सप्तम कक्ष पर्यन्त क्रम से दुगुने-दुगुने संख्या प्रमाण हाथी होते हैं। गणधर देवों के द्वारा सातों कक्षों के हाथियों का एकत्रित योग ३५५६००० कहा गया है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इसी प्रकार सातों कक्षों के घोड़ों की संख्या तथा रथ आदि शेष पाँचों की संख्या गजों की संख्या के प्रमाण ही जानना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा सात-सात कक्षाओं से युक्त सातों अनीकों की सम्पूर्ण संख्या का योग (३५५६०००×७) =२४८९२००० कहा गया है। जिनागम में सात-सात कक्षाओं से युक्त गज आदि सातों अनीकों के देवों का एकत्रित २४८९२००० योग प्रत्येक व्यन्तरेन्द्रों के पृथक्-पृथक् कहा गया है। प्रत्येक इन्द्र के परिवार में प्रकीर्णक, आभियोगिक और किल्विषिक नामक तीनों प्रकार के देव असंख्यात होते हैं। व्यतरेन्द्रों के परिवार में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव कभी नहीं होते, इसलिए इन सभी इन्द्रों का परिवार प्रतीन्द्र, सामानिक, अंगरक्षक, पारिषद्, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोगिक और किल्विष के भेद से आठ प्रकार का होता है ॥८८-१००॥

अब नित्योपपादादि वानव्यन्तर देवों का निवास क्षेत्र कहते हैं—

एकं हस्तान्तरं त्यक्त्वा ह्याद्यचित्रामहीतले।
नित्योत्पादक नामानो वसन्ति व्यन्तरामराः ॥१०१॥
ततो दशसहस्त्राणि हस्तानां च विहाय च।
सन्ति दिग्वासिनस्त्यक्त्वा स्मादोर्दशसहस्त्रकान् ॥१०२॥
वसन्त्यन्तरवासाख्याः पुनर्दशसहस्त्रकान्।
करांस्त्यक्त्वा च कूष्माण्डास्तिष्ठन्त्यतो विमुच्य च ॥१०३॥
हस्तविंशसहस्त्राणि वसन्त्युत्पन्न निर्जराः।
ततो विंशसहस्त्राणि कराणां प्रविहाय च ॥१०४॥
सन्त्यनुत्पन्नगीर्वाणास्तस्माद् विंशसहस्त्रकान्।
करान् मुक्त्वा वसन्त्येव प्रमाणकाभिधाः सुराः ॥१०५॥
ततो विंशसहस्त्राणि हस्तानां परिमुच्य च।
तिष्ठन्ति गन्धगीर्वाणास्तस्माद् विंशसहस्त्रकान् ॥१०६॥
हस्तांस्त्यक्त्वा महागन्धाः पुनर्विमुच्य विंशति।
सहस्त्राणि कराणां स्युर्भुजगाख्या विहाय च ॥१०७॥
पुनर्विंशसहस्त्राणि हस्तानां निवसन्ति च।
प्रीतिङ्करास्ततस्त्यक्त्वा करविंशसहस्त्रकान् ॥१०८॥
आकाशोत्पन्ननामानो देवा वसन्ति भूतले।
एते द्वादशाधा देवा विज्ञेया वानव्यन्तराः ॥१०९॥

अर्थ—चित्रा पृथ्वी के ऊपर एक हाथ का अन्तराल छोड़कर नित्योत्पादक नाम के व्यन्तर देव रहते हैं। इनसे १०००० हाथ छोड़कर दिग्वासी देव, इनसे १०००० हाथ छोड़कर अन्तरवासी नाम के देव रहते हैं। इनसे १०००० हाथ छोड़कर कूष्माण्ड देव रहते हैं। इनसे २०००० हाथ छोड़कर उत्पन्न

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देव तथा इनसे २०००० हाथ छोड़कर अनुत्पन्न देव रहते हैं। इनसे २०००० हाथ छोड़कर प्रमाणक देव, इनसे २०००० हाथ छोड़कर गन्ध देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़कर महागन्ध नाम के देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़कर भुजग नामक देव, इनसे २० हजार हाथ छोड़कर प्रीतिंकर और इनसे २० हजार हाथ छोड़कर आकाशोत्पन्न नाम के देव निवास करते हैं। इस प्रकार भूतल पर इन बारह प्रकार के व्यन्तर देवों का निवास जानना चाहिए ॥१०१-१०९॥

नित्योत्पादकदेवानामखण्डायुर्जिनैर्मतम् ।
दशवर्षसहस्त्राणि दिग्वासिनां च जीवितम् ॥११०॥
विंशत्यब्दसहस्त्राण्यन्तरवासिसुधाभुजाम् ।
त्रिंशद्वर्षसहस्त्राणि कूष्माण्डानां च जीवितम् ॥१११॥
चत्वारिंशत्सहस्त्राब्दमुत्पन्नाख्यामृताशिनाम् ।
परमायुर्भवेत् पञ्चाशत्सहस्त्राब्दमानकम् ॥११२॥
अनुत्पन्नात्मनां षष्टिसहस्त्रवर्षजीवितम्।
प्रमाणकात्मनां सप्ततिसहस्त्राब्दसंस्थितिः ॥११३॥
गन्धाख्यानां तथाशीतिसहस्त्रवर्षजीवितम्।
महागन्धाख्यदेवानां श्रुते चायुर्मतं जिनैः ॥११४॥
वर्षाणां चतुरग्राशीतिसहस्त्रप्रमाणकम्।
भुजगानां भवेदायुः पल्यैकस्याष्टमांशकः ॥११५॥
प्रीतिङ्करात्मनां पल्यस्य चतुर्थांशजीवितम्।
आकाशोत्पन्नदेवानामायुः पल्यार्धसम्मितम् ॥११६॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के द्वारा नित्योत्पादक देवों की अखण्ड आयु दश हजार वर्ष दिग्वासियों की २० हजार वर्ष, अन्तरवासी देवों की ३० हजार वर्ष, कूष्माण्ड देवों की ४० हजार वर्ष, उत्पन्न देवों की ५० हजार वर्ष, अनुत्पन्न देवों की ६० हजार वर्ष, प्रमाणक देवों की ७० हजार वर्ष, गन्ध देवों की ८० हजार वर्ष और महागन्ध देवों की उत्कृष्ट आयु ८४ हजार वर्ष कही गई है तथा जिनागम में भुजग देवों की आयु पल्य का ८ वाँ भाग, प्रीतिंकर देवों की पल्य का चौथाई भाग और आकाशोत्पन्न देवों की आयु अर्ध पल्य प्रमाण कही गई है ॥११०-११६॥

अब व्यन्तर देवों की जघन्योत्कृष्ट आयु, अवगाहना, आहार, श्वासोच्छ्वास और अवधिज्ञान के विषय का प्रमाण कहते हैं—

उत्कृष्टं व्यन्तराणां स्यादायुः पल्योपमं क्रमात्।
दशवर्षसहस्त्राणि सर्वजघन्यजीवितम् ॥११७॥
दशचापोन्नतः कायः समस्त व्यन्तरात्मनाम्।
मानसाहार एवास्ति सार्धपञ्चदिनैर्गतैः ॥११८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सार्धपञ्चमुहूतैनि:क्रान्तैरुच्छ्वास एव च।
व्यन्तराणामसंख्यातयोजनान्यवधिर्मत: ॥११९॥
उत्कृष्टोहि जघन्यश्च पञ्चविंशतियोजन:।
ऊर्ध्वाधोऽपि कियन्मात्रो भवप्रत्ययसम्भव: ॥१२०॥

अर्थ—व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण और जघन्य आयु दस हजार वर्ष प्रमाण होती है। समस्त व्यन्तर देवों के शरीर की ऊँचाई दस धनुष प्रमाण है। ५$\frac{१}{२}$ दिन व्यतीत हो जाने के बाद व्यन्तर देव मनसा आहार करते हैं और ५$\frac{१}{२}$ मुहूर्त व्यतीत हो जाने के बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं। व्यन्तर देवों का उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र असंख्यात योजन प्रमाण और जघन्य अवधि क्षेत्र २५ योजन प्रमाण है। ये ऊर्ध्व और अध: कुछ भवों को भी यथा सम्भव जानते हैं ॥११७-१२०॥

अब प्राचार्य करणानुयोग पढ़ने की प्रेरणा देते हैं—

एतद् व्यन्तरजातिभेदविभवस्थित्यादिसंसूचकम्
धर्मध्याननिबन्धनं ह्यघहरं चार्हन्मुखाब्जोद्भवम्।
सिद्धान्तं करणानुयोगममलं चित्ताक्षदन्त्यङ्कुशम्।
सद्ध्यानाय सुयोगिन: सुविधिना नित्यं पठन्त्वादरात् ॥१२१॥

अर्थ—इस प्रकार व्यन्तर देवों के जाति, भेद, वैभव और स्थिति आदि को संसूचन करने वाला, धर्मध्यान का हेतु, पापनाशक, अर्हन्त भगवान् के मुखरूपी कमल से उत्पन्न तथा मन और इन्द्रियरूपी हाथी को वश करने के लिये अंकुश के सदृश इस सिद्धान्तसाररूप निर्मल करणानुयोग को उत्तम ध्यान की सिद्धि के लिये उत्तम योगीजन विधिविधान से आदर (विनय) पूर्वक नित्य ही पढ़ो ॥१२१॥

अधिकारान्त मंगल

ये श्रीमद्भवनेषु विश्वनगरेष्वावास सर्वेषु चा-
धो मध्योर्ध्वसुभूमिसर्वगिरिषु श्रीमज्जिनेन्द्रालया:।
तत्रस्था जिनमूर्तयोऽतिसुभगाहचैत्यद्रुमादिस्थिता
या स्तास्ता: शिवशर्म्मभूतिजननीर्वन्दे स्तुवे मुक्तये ॥१२२॥

इतिश्री सिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते व्यन्तरदेवस्थितिभेद-भूत्पादिवर्णनोनामत्रयोदशमोऽधिकार:।

अर्थ—समस्त भवनों, नगरों एवं आवासों में, अधो, मध्य और ऊर्ध्व लोकों में, सर्व सुदर्शन मेरु आदि पर्वतों पर तथा अत्यन्त शोभा युक्त चैत्य आदि वृक्षों पर स्थित वैभव युक्त जितने जिन मन्दिर हैं, उन मन्दिरों में स्थित कल्याण और सुख को उत्पन्न करने के लिये माता के सदृश जो जिन प्रतिमाएँ हैं, उन सबका मैं मुक्ति प्राप्ति के लिये स्तवन करता हूँ, वन्दना करता हूँ ॥१२२॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में आठ प्रकार के भेद वाले व्यन्तर देवों की स्थिति आदि का प्ररूपण करने वाला त्रयोदश अधिकार समाप्त हुआ ॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतुर्दश अधिकार

ज्योतिषी देवों का वर्णन

मंगलाचरण

ज्योतिर्देवविमानस्थासंख्यातश्रीजिनालयान् ।
जिनबिम्बान्वितान् वन्दे स्तुवे नित्यान् शिवाय च ॥१॥

अर्थ—ज्योतिर्देवों के विमानों में स्थित जो असंख्यात जिनालय हैं, उन जिनालयों में स्थित जिन प्रतिमाओं के समूह की मैं मोक्ष प्राप्ति के हेतु नित्य ही वन्दना करता हूँ और उनका स्तव करता हूँ ॥१॥

अब ज्योतिषी देवों के भेदों का प्ररूपण करते हैं—

चन्द्राः सूर्या ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्णतारकाः।
एते पञ्चविधाः प्रोक्ता ज्योतिष्कदेवतागणाः ॥२॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिष देवों के समूह पाँच प्रकार के कहे गये हैं ॥२॥

अब तारा आदि ज्योतिर्देवों के स्थान का निर्देश करते हैं—

दशोनाष्टशतान्यस्माद्योजनानि महीतलात्।
त्यक्त्वा सन्ति विमानानि तारकाणां नभोंगणे ॥३॥
ततोप्यूर्ध्वनभो मुक्त्वा दशयोजनसम्मितम्।
आदित्यानां विमानानि विद्यन्ते शाश्वतान्यपि ॥४॥
अशीतियोजनान्यूर्ध्वं पुनस्त्यक्त्वा भवन्ति खे।
चन्द्राणां सद्विमानान्यतो योजनचतुष्टयम् ॥५॥
मुक्त्वा नक्षत्रदेवानां विमानानि च सन्त्यनु।
त्यक्त्वा योजनचत्वारि बुधानां स्युर्विमानकाः ॥६॥
मुक्त्वातोयोजनत्रीणि शुक्राणां स्युर्विमानकाः।
त्यक्त्वाथ योजनत्रीणि बृहस्पतिविमानकाः ॥७॥
मुक्त्वानु योजनत्रीणि मङ्गलानां विमानकाः।
त्यक्त्वातो योजनत्रीणि शनैश्चरविमानकाः ॥८॥
ज्योतिः पटलबाहुल्यमित्थं दशोत्तरं शतम्।
योजनानां भवेत्सर्वं विमानव्याप्तखाङ्गणे॥९॥
चित्रामहीतलाद्योजनानां नवशतान्तरे।
सर्वज्योतिष्कदेवानां विद्यन्ते हि विमानकाः ॥१०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर जाकर आकाश में ताराओं के विमान हैं। नभ में तारागणों से दस योजन ऊपर सूर्य के शाश्वत विमान हैं, इनसे ८० योजन ऊपर आकाश में चन्द्र विमान हैं। चन्द्र से चार योजन ऊपर नक्षत्र विमान, इससे चार योजन ऊपर बुध विमान, इससे ३ योजन ऊपर शुक्र विमान, इससे तीन योजन ऊपर गुरु विमान, इससे तीन योजन ऊपर मंगल विमान और मंगल से तीन योजन ऊपर शनि का विमान है। इस प्रकार ज्योतिर्पटल के सर्व विमान आकाश में पिण्ड रूप से ११० योजन क्षेत्र को व्याप्त करके रहते हैं। समस्त ज्योतिषी देव चित्रा पृथ्वी के तल से (७९० योजन की ऊँचाई से प्रारम्भ कर) ९०० योजन (७९०+११०=९००) की ऊँचाई तक स्थित हैं ॥३-१०॥

चित्रा पृथ्वी से ज्योतिर्बिम्बों की ऊँचाई की तालिका—

क्रमांक	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	पृथ्वी से योजनों में ऊँचाई	मीलों में ऊँचाई
१	तारागण	चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर	३१६०००० मील ऊपर
२	सूर्य	७९० + १० = ८०० योजन ऊपर	३२००००० मील ऊपर
३	चन्द्र	८०० + ८० = ८८० योजन ऊपर	३५२०००० मील ऊपर
४	नक्षत्र	८८० + ४ = ८८४ योजन ऊपर	३५३६००० मील ऊपर
५	बुध	८८४ + ४ = ८८८ योजन ऊपर	३५५२००० मील ऊपर
६	शुक्र	८८८ + ३ = ८९१ योजन ऊपर	३५६४००० मील ऊपर
७	गुरु	८९१ + ३ = ८९४ योजन ऊपर	३५७६००० मील ऊपर
८	मंगल	८९४ + ३ = ८९७ योजन ऊपर	३५८८००० मील ऊपर
९	शनि	८९७ + ३ = ९०० योजन ऊपर	३६००००० मील ऊपर

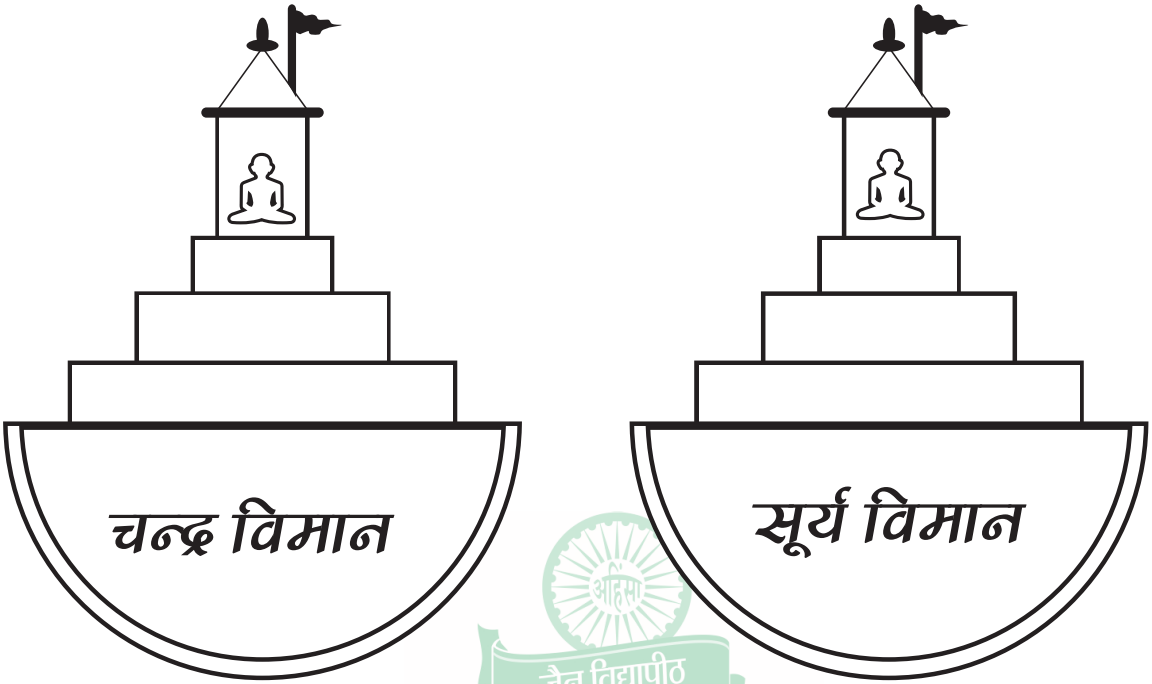
अब ज्योतिर्विमानों का स्वरूप कहते हैं—

उत्तानगोलकार्धेन समानाकृतयः शुभाः।
वृत्ताकाराविमानाः स्युः श्वेतरत्नमयोन्नताः ॥११॥
मध्येऽमीषां पुराणि स्युर्भूषितानि जिनालयैः।
देवीदेवभृतानि श्रीसौधानीकाङ्कितानि च ॥१२॥

अर्थ—ऊर्ध्वमुख अर्ध गोल (गेंद) के आकार सदृश शुभ आकृति वाले सर्व ज्योतिर्विमान गोलाकार, श्वेतरत्नमय और उन्नत हैं। इन विमानों के मध्य में जिनालयों से विभूषित, देव-देवियों से भरी हुई और लक्ष्मी युक्त प्रासादों से अलंकृत रमणीक नगरियाँ हैं ॥११-१२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सूर्य, चन्द्र विमानों की आकृतियों का चित्रण–



अहिंसा जैन विद्यापीठ

अब सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिर्विमानों के व्यास का प्रमाण कहते हैं–

कृतैकषष्टिभागानां योजनस्य विमानकम्।
निशाकरस्य षट् पञ्चाशद्भागविस्तरं भवेत् ॥१३॥
त्रयः क्रोशाश्चतुश्चत्वारिंशदग्रशतानि च।
त्रयोदशैव चापानामिति किञ्चित्तथाधिकम् ॥१४॥
व्यासं चन्द्रविमानस्य प्रोक्तं जैनागमे जिनैः।
कृतैकषष्टिभागानां योजनस्य विमानकम् ॥१५॥
स्यात्सूर्यस्याष्ट चत्वारिंशद्भागविस्तरान्वितम्।
विमानं शुक्रदेवस्य क्रोशैकविस्तृतं भवेत् ॥१६॥
बृहस्पतिविमानं स्यात्पादोनक्रोशविस्तरम्।
मङ्गलस्य बुधस्यैव शनैश्चरस्य कोविदैः ॥१७॥
प्रत्येकं सद्विमानस्य मतार्धक्रोशविस्तृतिः।
तारकाणां विमानाश्च केचित्सर्वजघन्यकाः ॥१८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्रोशैकस्य चतुर्भागविस्तरा मध्यमा क्रमात्।
क्रोशार्ध विस्तृताः केचित् पादोनक्रोशविस्तराः ॥१९॥
केचिच्च सकलोत्कृष्टाः क्रोशव्यासविमानकाः।
इति ताराविमानानां त्रिधाविष्कम्भ उच्यते ॥२०॥
नक्षत्राणां विमानाः स्युः सर्वे क्रोशैकविस्तृताः।
सर्व ज्योतिर्विमानानां व्यासार्धं स्थूलता भवेत् ॥२१॥

अर्थ—चन्द्र विमान का विस्तार एक योजन के ६१ भागों में से ५६ भाग प्रमाण अर्थात् $\frac{५६}{६१}$ योजन प्रमाण है। जिनागम में जिनेन्द्र भगवान् द्वारा चन्द्र विमान का व्यास तीन कोस और १३४४ धनुष से कुछ ($\frac{१६}{६१}$ धनुष) अधिक कहा गया है। सूर्य के विमान का विस्तार एक योजन के ६१ भागों में से ४८ भाग अर्थात् $\frac{४८}{६१}$ भाग योजन प्रमाण और शुक्रदेव के विमान का विस्तार एक कोस प्रमाण है। बृहस्पति देव के विमान का विस्तार पौन कोश तथा मंगल, बुध और शनि देवों के विमानों का विस्तार विद्वानों के द्वारा अर्ध-अर्ध कोस प्रमाण कहा गया है। तारागणों के कुछ विमान जघन्य हैं, जिनका विस्तार एक कोश का चतुर्थ भाग अर्थात् $\frac{१}{४}$ कोश है, मध्यम विमानों में किन्हीं का प्रमाण-अर्ध ($\frac{१}{२}$) कोश और किन्हीं का पौन कोश ($\frac{३}{४}$) है। उत्कृष्ट विमानों का प्रमाण एक कोश है, इस प्रकार तारागणों के विमानों का विष्कम्भ तीन प्रकार का कहा गया है। सर्व नक्षत्रों के विमानों का व्यास एक-एक कोश है। सर्व ज्योतिर्विमानों की मोटाई अपने-अपने विस्तार के अर्धभाग प्रमाण है ॥१३-२१॥

अमीषां विस्तरेण व्याख्यानं प्रोच्यते—

चन्द्रविमानस्य स्थौल्यं योजनस्यैक षष्टिभागानां अष्टाविंशतिभागप्रमाणं स्यात्। सूर्यविमानस्य योजनैकषष्टिभागानां चतुर्विंशतिभागप्रमबाहुल्यं भवेत्। शुक्रविमानस्य क्रोशार्धं स्थूलतास्ति। बृहस्पतिविमानस्य क्रोशाष्टभागानां त्रिभागसम्मितं बाहुल्यं स्यात्। मङ्गलबुधशनैश्चरविमानानां प्रत्येकं क्रोशचतुर्थांशस्थूलता भवेत्। तारकविमानानां जघन्यं स्थौल्यं क्रोशस्याष्टमो भागः स्यात्। मध्यमं च क्रोशचतुर्थांशः क्रोशाष्टभागानां त्रिभागप्रमं स्यात्। उत्कृष्ट क्रोशार्धं च। नक्षत्रविमानानां स्थौल्यं क्रोशार्धं भवति।

अब ज्योतिर्विमानों के बाहल्य (मोटाई) का व्याख्यान विस्तार से करते हैं—

चन्द्र विमान की मोटाई $\frac{२८}{६१}$ योजन, सूर्य विमान की $\frac{२४}{६१}$ योजन, शुक्र विमान की $\frac{१}{२}$ कोश, गुरु के विमान की $\frac{३}{८}$ कोश तथा मंगल, बुध और शनि के विमानों की मोटाई पृथक्-पृथक् पाव ($\frac{१}{४}$) कोश प्रमाण है। तारागणों के जघन्य विमानों की मोटाई है $\frac{१}{८}$ कोश, मध्यम विमानों में से किन्हीं की मोटाई $\frac{१}{४}$ कोश और किन्हीं की $\frac{३}{८}$ कोश, उत्कृष्ट विमानों की मोटाई और नक्षत्रों के विमानों की मोटाई अर्ध-अर्ध कोश प्रमाण है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर्व ज्योतिर्विमानों का एकत्रित व्यास एवं बाहल्य निम्न प्रकार है–

क्रम	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	व्यास (विस्तार)		बाहल्य (मोटाई)	
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	चन्द्र विमान	$\frac{५६}{६१}$ योजन	३६७२$\frac{८}{६१}$ मील	$\frac{२८}{६१}$ योजन	१८३६$\frac{४}{६१}$ मील
२	सूर्य विमान	$\frac{४८}{६१}$ योजन	३१४७$\frac{३३}{६१}$ मील	$\frac{२४}{६१}$ योजन	१५७३$\frac{४७}{६१}$ मील
३	शुक्र विमान	१ कोस	१००० मील	$\frac{१}{२}$ कोस	५०० मील
४	गुरु विमान	$\frac{३}{४}$ कोस	७५० मील	$\frac{३}{८}$ कोस	३७५ मील
५	बुध विमान	$\frac{१}{२}$ कोस	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोस	२५० मील
६	मंगल विमान	$\frac{१}{२}$ कोस	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोस	२५० मील
७	शनि विमान	$\frac{१}{२}$ कोस	५०० मील	$\frac{१}{४}$ कोस	२५० मील
८	तारागणों का जघन्य	$\frac{१}{४}$ कोस	२५० मील	$\frac{१}{८}$ कोस	१२५ मील
९	तारागणों का मध्यम	$\frac{१}{२}$ कोस व $\frac{३}{४}$	५०० व ७५० मी०	$\frac{१}{४}$ व $\frac{३}{८}$ कोस	२५० व ३७५ मी०
१०	तारागणों का उत्कृष्ट	कोस	१००० मील	$\frac{१}{२}$ कोस	५०० मील
११	नक्षत्र विमान	१ कोस	१००० मील		
१२	राहु विमान	१ कोस			
१३	केतु विमान				

अब सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की किरणों का प्रमाण एवं उनका स्वरूप कहते हैं–

सूर्यस्य सूर्यकान्ताश्मविमानस्य महान्ति च।
द्वादशैव सहस्त्राणि सन्त्युष्णकिरणान्यपि ॥२२॥
चन्द्रस्य चन्द्रकान्ताश्मविमानस्य भवन्त्यपि।
द्विषट्सहस्त्रसंख्यानि सच्छीतकिरणानि च ॥२३॥
स्युः शुक्रस्य विमानस्य पञ्चविंशशतांशवः।
अन्ये ज्योतिष्कदेवानां विमाना मन्दरोचिषः ॥२४॥

अर्थ–सूर्य का विमान सूर्यकान्त मणि से निर्मित है। सूर्य की १२००० किरणें हैं जो उष्ण हैं। चन्द्रमा का विमान चन्द्रकान्त पत्थर (मणि) से निर्मित है। इसकी भी किरणें १२००० ही हैं किन्तु वे शीतल हैं। शुक्र के विमान की २५०० किरणें हैं। (जो प्रकाश से उज्ज्वल हैं) शेष अन्य ज्योतिष्क देवों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के विमानों की किरणें मन्द प्रकाश वालीं हैं ॥२२-२४॥

अब तारागणों का तिर्यग् अन्तर चन्द्र-सूर्य के ग्रहण का कारण एवं चन्द्रकलाओं में हानि वृद्धि का कारण कहते हैं—

तारकाणां जघन्यं स्यात्तिर्यगन्तरमेव च।
क्रोशस्य सप्तमो भागः पञ्चाशद्योजनप्रमम् ॥२५॥
मध्यमं सकलोत्कृष्टं सहस्रयोजनप्रमम्।
निशाकरविमानस्य किञ्चिदूनैकयोजनम् ॥२६॥
अन्तरं प्रविधायाधो भागे राहुविमानकम्।
गच्छद्गतैश्च षण्मासैः पर्वान्ते चन्द्रमण्डलम् ॥२७॥
आच्छादयति चेत्येवं ख्यातं तद्ग्रहणं भुवि।
तथा सूर्यविमानस्य किञ्चिद्धीनैकयोजनम् ॥२८॥
कृत्वान्तरमधोभागे कृष्णं केतुविमानकम्।
व्रजन्निःक्रान्तषण्मासैः पर्वान्ते भानुमण्डलम् ॥२९॥
आच्छादयति चात्रैतत्सूर्यग्रहणमुच्यते।
राहुश्यामविमानस्य ध्वजोपरि विहाय खे ॥३०॥
चतुरङ्गुष्ठविमानान्तरं स्याच्चन्द्रविमानकम्।
अरिष्टस्य विमानस्य केतूपरि विमुच्य खे ॥३१॥
चतुरङ्गुष्ठमात्रान्तरं स्याद् भानुविमानकम्।
चन्द्रमण्डलपूर्णस्य कृष्णपक्षे दिनं प्रति ॥३२॥
कृतषोडशभागानामेकैकांशः प्रहीयते।
प्रतिपद्दिनमारभ्याधःस्थराहुगतेर्वशात् ॥३३॥
तथा चन्द्रविमानस्य शुक्लपक्षे दिनं प्रति।
वर्धते भागएकैकः पूर्णमास्यन्तमञ्जसा ॥३४॥

अर्थ—एक तारा से दूसरी तारा का तिर्यग् जघन्य अन्तर एक कोश का सातवाँ भाग अर्थात् $\frac{१}{७}$ कोश (१४२$\frac{६}{७}$ मील) है। तिर्यग् मध्यम अन्तर ५० योजन (दो लाख मील) और उत्कृष्ट अन्तर १०० योजन (४ लाख मील है।) कुछ कम एक योजन व्यास वाला राहु का विमान चन्द्र विमान के अधोभाग में कुछ अन्तराल से गमन करता हुआ प्रत्येक छह मास बाद पर्व (पूर्णिमा) के अन्त में चन्द्र के विमान को आच्छादित कर लेता है। लोक में यही आच्छादन क्रिया चन्द्र ग्रहण के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कुछ कम एक योजन व्यास वाला कृष्ण वर्ण केतु का विमान सूर्य विमान के अधोभाग में कुछ अन्तराल से गमन करता हुआ प्रत्येक छह मास बाद पर्व (अमावस्या) के अन्त में सूर्य के विमान को आच्छादित कर लेता है, लोक में इसी को सूर्य ग्रहण कहते हैं। श्यामवर्ण राहु विमान की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर आकाश में चन्द्र विमान अवस्थित है, इसी प्रकार श्यामवर्ण केतु

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विमान की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर आकाश में सूर्य विमान अवस्थित है। चन्द्र विमान के नीचे स्थित अंजन वर्ण राहु के गमन विशेष के वश से कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर अमावस्या पर्यन्त चन्द्र की सोलह कलाओं में से एक-एक अंश प्रतिदिन घटता जाता है। अर्थात् कृष्णरूप होता जाता है। उसी प्रकार शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त एक-एक अंश प्रतिदिन वृद्धिंगत होता जाता है। अर्थात् शुक्लरूप होता जाता है ॥२५-३४॥

अब अन्य प्रकार से चन्द्र कलाओं की हानि-वृद्धि का कथन करते हैं—

शुक्लपक्षे सदा राहुः स्वयं मन्दगतिर्भवेत्।
चन्द्रस्यैव निसर्गेण शीघ्रा गतिश्च सत्यपि ॥३५॥
कृष्णपक्षे सदा राहोर्मता शीघ्र गतिर्बुधैः।
स्वभावेन च चन्द्रस्य मन्दागतिर्दिनं प्रति ॥३६॥
एवं गतिवशाच्चन्द्र कलानां प्रत्यहं भवेत्।
षोडशानां कलैकैका हानिर्वृद्धिर्द्विपक्षयोः ॥३७॥

अर्थ—शुक्लपक्ष में राहु की गति हमेशा स्वभाव से ही मन्द होती जाती है और स्वभावतः ही चन्द्र की गति तेज होती जाती है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन राहु की स्वभावतः शीघ्र गति हो जाती है और चन्द्र की मन्दगति होती जाती है, ऐसा विद्वज्जनों के द्वारा कहा गया है। इस प्रकार गति विशेष के वश से दोनों पक्षों में प्रतिदिन चन्द्र की सोलह कलाओं में हानि-वृद्धि होती है ॥३५-३७॥

अब चन्द्रादिक ज्योतिषी देवों के विमान वाहक देवों के आकार और संख्या का विवेचन करते है—

सिंहरूपधरा देवाः चतुःसहस्रसम्मिताः।
लगित्वा पूर्वदिग्भागे नयन्तीन्दुविमानकम् ॥३८॥
गजवेषधरास्तुङ्गास्तावन्तो वाहनामराः।
तद्दक्षिणदिशि स्थित्वा व्योम्नि तच्चालयन्ति च ॥३९॥
सुरा वृषभरूपेण चतुःसहस्रमानकाः।
पश्चिमाशां सदाश्रित्य नयन्ति चन्द्रमण्डलम् ॥४०॥
दिव्याश्वविक्रियापन्नाश्चतुः सहस्रनिर्जराः।
लगित्वोत्तरदिग्भागे सविमाना व्रजन्ति खे ॥४१॥
एवं सूर्यविमानेऽपि सिंहादिवेषधारिणः।
सन्ति वाहनगीर्वाणाः सहस्रषोडशप्रमाः ॥४२॥
तथाशेषग्रहाणां स्युर्विमानवाहकाः सुराः।
प्रत्येकं च चतुर्दिक्षु लग्ना द्विद्विसहस्रकाः ॥४३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पिण्डीकृता इमे सर्वे ज्ञेया वाहननिर्जराः।
एकैकस्य ग्रहस्यापि पृथक् चाष्टसहस्त्रकाः ॥४४॥
सहस्त्रसम्मिताः सिंहास्तावन्तो गजसत्तमाः।
सहस्त्रवृषभास्तावन्तोऽश्वाश्चवाहनामराः ॥४५॥
एते पिण्डीकृताः सर्वे चतुःसहस्त्रमानकः।
नक्षत्राणां विमानेषु चतुर्दिक्षु पृथक्-पृथक् ॥४६॥
तारकाणां विमानेषु सिंहाः पञ्चशतप्रमाः।
तावन्तो दन्तिनः पञ्चशतानि वृषभामराः।४७॥
तावन्तोऽश्वा इमे सर्वेऽल्पपुण्या वाहनामराः।
सिंहादिविक्रियापन्ना ज्ञेया विमानवाहकाः ॥४८॥

अर्थ—पूर्व दिशा में सिंह के आकार को धारण करने वाले ४००० देव चन्द्र विमान में लगकर उसे चलाते हैं। उन्नत गज आकार को धारण करने वाले वाहन जाति के ४००० देव दक्षिण दिशा में स्थित होकर चन्द्र विमान को आकाश में चलाते हैं। पश्चिम दिशा में वृषभ आकार को धारण करने वाले ४००० देव चन्द्र विमान में जुत कर उसे चलाते हैं तथा उत्तर दिशा में विक्रिया युक्त ४००० देव दिव्य अश्व के रूप को धारण और उसमें जुत कर विमान को चलाते हैं। इसी प्रकार सिंह, हाथी, वृषभ और अश्व रूप को धारण करने वाले १६००० वाहन जाति के देव सूर्य विमान में भी होते हैं। इसी प्रकार अवशेष शुक्र, गुरु, बुध, शनि और मंगल के विमानों में प्रत्येक विमानों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार वाहन जाति के देव जुतते हैं। इन सबका योग करने पर प्रत्येक ग्रह के पृथक्-पृथक् वाहन जाति के देव आठ-आठ हजार हैं। वाहन जाति के १००० सिंह रूपधारी देव, १००० गज रूपधारी, १००० वृषभ रूपधारी और १००० अश्व रूपधारी देव प्रत्येक नक्षत्र विमानों की चारों दिशाओं में पृथक्-पृथक् होते हैं और इनका योग करने पर एक-एक नक्षत्र विमान के सर्व देव चार चार हजार होते हैं। तारागणों के प्रत्येक विमानों की चारों दिशाओं में क्रमशः ५०० सिंह, ५०० हाथी, ५०० बैल और ५०० घोड़े होते हैं, इन प्रत्येक विमानों के देवों का एकत्रित प्रमाण दो-दो हजार होता है। सिंहादिक की विक्रिया युक्त, विमान वाहक इन वाहन जाति के देवों को अल्प पुण्याधिकारी जानना चाहिए ॥३८-४८॥

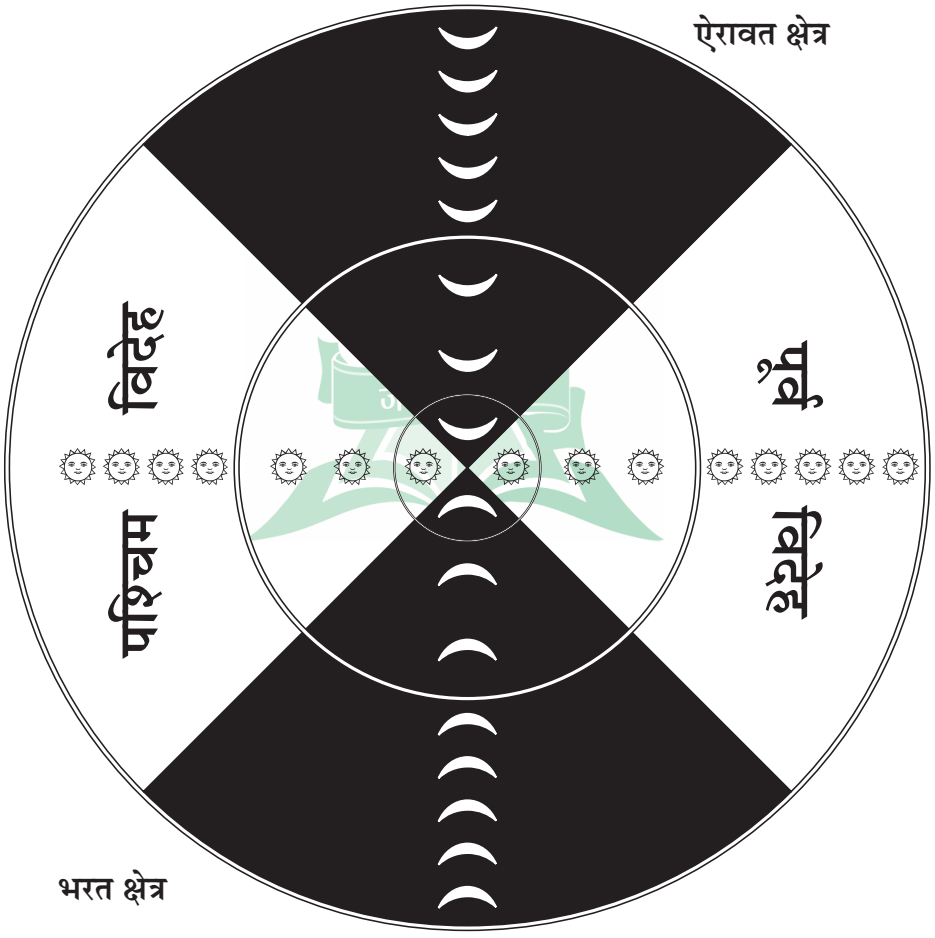
अब मनुष्य लोक में स्थित चन्द्र-सूर्यों की संख्या का निरूपण करते हैं—

जम्बूद्वीपे पृथक् स्यातां द्वौ चन्द्रौ द्वौ दिवाकरौ।
लवणोदे च चतुश्चन्द्राश्चत्वारो भानवो मताः ॥४९॥
स्युर्द्वीपे धातकीखण्डे चन्द्राद्वादशसंख्यकाः।
तावन्तो भानवः कालोदधौ चन्द्रमसः स्मृताः ॥५०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

द्विचत्वारिंशदादित्यास्तावन्तः पुष्करार्धके।
द्विसप्ततिप्रमाश्चन्द्रास्तावन्तः स्युर्दिवाकराः ॥५१॥
इमे पिण्डीकृताः सर्वे द्वात्रिंशदधिकं शतम्।
चन्द्राः सूर्याश्च तावन्तो नृक्षेत्रे सकले मताः ॥५२॥

अर्थ—जम्बूद्वीप में पृथक्-पृथक् दो चन्द्र और दो सूर्य हैं। लवणोदधि में चार चन्द्र एवं चार सूर्य हैं। धातकीखण्ड में १२ चन्द्र तथा १२ ही सूर्य हैं। कालोदधि में ४२ चन्द्र और ४२ ही सूर्य हैं, इसी प्रकार पुष्करार्धवर द्वीप में ७२ चन्द्र एवं ७२ सूर्य हैं। इन सबका एकत्रित योग करने पर सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र में (२ + ४ + १२ + ४२ + ७२ =) १३२ सूर्य और १३२ ही चन्द्रमा हैं ॥४९-५२॥ जैसे–



(चित्रण में जिस प्रकार जम्बूद्वीप लवण समुद्र और धातकीखण्ड के चन्द्र सूर्य दर्शाए गये हैं उसी प्रकार कालोदक एवं पुष्करार्ध क्षेत्र में भी जानना चाहिए।

अब एक चन्द्र के परिवार का निरूपण करते हैं–

चन्द्रेन्द्रस्य भवेत्सूर्यः प्रतीन्द्रो मिलिता ग्रहाः।
अष्टाशीतिश्च नक्षत्राण्यष्टाविंशतिरेव च ॥५३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षट्षष्टिश्च सहस्त्राणि तथा नवशतान्यपि।
पञ्चसप्ततिसंख्याना: कोटीकोट्यो हि तारका: ॥५४॥

अर्थ—चन्द्रमा इन्द्र है। इसके परिवार में सूर्य प्रतीन्द्र (एक), ग्रह ८८, अभिजित् सहित अश्विनी आदि नक्षत्र २८ एवं छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी अर्थात् ६६९७५०००००००००००० तारागण है ॥५३-५४॥

अब जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्रों और कुलाचलों की ताराओं का विभाजन दर्शाते हैं—

तेभ्यो हिमवदाद्यद्रिवर्षेषु द्विगुणोत्तरा:।
भवन्ति तारका यावद्विदेहक्षेत्रमुत्तमम् ॥५६॥
विदेहक्षेत्रतोऽर्धार्धास्तारका: सन्त्यनुक्रमात्।
ऐरावतान्तमेवाद्रि नीलाख्य रम्यकादिषु ॥५७॥

(जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र पर्यन्त की शलाकाएँ क्रमश: दुगुनी-दुगुनी होती गई हैं और विदेह से आगे क्रमश: दुगुनी हीन होती गई हैं तथा इन सर्व शलाकाओं का कुल योग (१ + २ + ४ + ८ + १६ + ३२ + ६४ + ३२ + १६ + ८ + ४ + २ + १) = १९० है, इसलिए श्लोक में १९० का भाग देने को कहा गया है।)

अर्थ—छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारागणों के प्रमाण को १९० से भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतनी ताराएँ भरतक्षेत्र के ऊपर हैं, उनसे हिमवन् आदि कुलाचलों एवं विदेह पर्यंत के क्षेत्रों पर तारागणों का प्रमाण क्रमश: दुगुना-दुगुना होता गया है तथा विदेह क्षेत्र से, ऐरावत है अन्त में जिसके ऐसे रम्यक आदि क्षेत्रों पर और नील आदि कुलाचलों के ऊपर इन तारागणों का प्रमाण क्रमश: अर्ध अर्ध हीन होता गया है ॥५५-५७॥

तारकाणां विवरणं क्रियते—

भरतक्षेत्रस्योपरि तारा: सप्तशतपञ्चोत्तर कोटीकोट्य: भवन्ति। हिमवत: उपरिदशाधिक चतुर्दशशतकोटीकोट्यश्च हैमवतवर्षस्योपरि तारा: विंशत्यग्राष्टाविंशतिकोटीकोट्य:। महाहिमवत: उपरि पञ्चसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्कोटीकोट्यश्च। हरिवर्षस्योपरितारा एकादशसहस्रद्विशताशीति कोटीकोट्य: निषधस्योपरि तारा द्वाविंशतिसहस्र पंचशतषष्टिकोटीकोट्य:। विदेहक्षेत्रस्योपरि तारा: पञ्च-चत्वारिंशत्सहस्रैक-शतविंशति कोटीकोट्य: भवेयु:। नीलस्योपरि तारा द्वाविंशतिसहस्रपञ्चशत-षष्टिकोटीकोट्य:। रम्यकस्योपरि तारा एकादशसहस्रद्विशताशीतिकोटीकोट्य: सन्ति। रुक्मिण: उपरितारा: पञ्चसहस्रषट्शतश्चत्वारिंशत्कोटी-कोट्य: सन्ति। हैरण्यवतस्योपरि द्विसहस्राष्टशतविंशति कोटीकोट्यश्च। शिखरिण: उपरि एकसहस्र-चतु:शतदशोत्तरकोटीकोट्यश्च। ऐरावतस्योपरि तारा: पञ्चोत्तरसप्तशत-कोटीकोट्य: सन्ति। एवं पिण्डीकृता: जम्बूद्वीपे सर्वे तारका: एकलक्षत्रयस्त्रिंशत्सहस्रनवशत-पञ्चाशत्कोटीकोट्यो भवन्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है–

क्रम	क्षेत्र और पर्वतों के नाम	तारागणों का प्रमाण	क्रम	क्षेत्र और पर्वतों के नाम	तारागणों का प्रमाण
१	भरतक्षेत्र के ऊपर	७०५ कोड़ाकोड़ी	८	नील पर्वत के ऊपर	२२५६० कोड़ाकोड़ी
२	हिमवन् पर्वत के ऊपर	१४१० कोड़ाकोड़ी	९	रम्यकक्षेत्र के ऊपर	११२८० कोड़ाकोड़ी
३	हैमवतक्षेत्र के ऊपर	२८२० कोड़ाकोड़ी	१०	रुक्मी पर्वत के ऊपर	५६४० कोड़ाकोड़ी
४	महाहिमवन् पर्वत के ऊपर	५६४० कोड़ाकोड़ी	११	हैरण्यवतक्षेत्र के ऊपर	२८२० कोड़ाकोड़ी
५	हरिक्षेत्र के ऊपर	११२८० कोड़ाकोड़ी	१२	शिखरिन् पर्वत के ऊपर	१४१० कोड़ाकोड़ी
६	निषध पर्वत के ऊपर	२२५६० कोड़ाकोड़ी	१३	ऐरावतक्षेत्र के ऊपर	७०५ कोड़ाकोड़ी
७	विदेहक्षेत्र के ऊपर	४५१२० कोड़ाकोड़ी			
	योग	८९५३५		योग	४४४१५

कुल योग–जम्बूद्वीप में कुल तारागण ८९५३५+४४४१५=१३३९५० हैं।

अब अढ़ाई द्वीपस्थ प्रत्येक द्वीप के ज्योतिर्विमानों की पृथक्-पृथक् संख्या दर्शाते हैं–

सार्धद्वीपद्वयोश्चाब्ध्योर्द्वयोर्ज्योतिष्कनिर्जराः ।
प्रागुक्तक्रमवृद्ध्या प्रवर्धन्ते निखिला अपि ॥५८॥

अर्थ–अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों में समस्त ज्योतिष्क देव पूर्वोक्त क्रम वृद्धि से ही वृद्धिङ्गत होते हैं–

अमीषां विस्तरः निगद्यते–

जम्बूद्वीपे द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ, ग्रहा षट्सप्तत्यग्रशतं। नक्षत्राणि षट्पञ्चाशत्, ताराः एकलक्ष-त्रयस्त्रिंशत्सहस्र नवशतपञ्चाशत्कोटीकोट्यः। लवणसमुद्रे चन्द्राश्चत्वारः, सूर्याश्चत्वारः, ग्रहाः द्विपञ्चा-शदग्रत्रिशतानि। नक्षत्राणि द्वादशाधिकशतं। ताराः द्विलक्षसप्तषष्टिसहस्रनवशतकोटीकोट्यः। धातकीखण्डद्वीपे द्वादशनिशाकराः। द्वादशादित्याः। दशशतषट्पञ्चाशत ग्रहाः। त्रिशतषड्त्रिंशन्नक्षत्राणि। अष्टलक्षत्रिसहस्र सप्तशतकोटीकोट्यः तारकाः स्युः। कालोदधौ चन्द्रमसः द्विचत्वारिंशद्विवाकरा द्विचत्वारिंशत्। ग्रहाः त्रिसहस्र-षट्शत षण्णवतिश्च। नक्षत्राणि एकादशशतषट्सप्ततिसंख्यानि। ताराः अष्टाविंशतिलक्षद्वादशसहस्र नवशत-पञ्चाशत्कोटीकोट्यः। पुष्करार्धद्वीपे चन्द्राः द्वासप्ततिः। भानवः द्वासप्ततिः। ग्रहाः षट्सहस्रत्रिशतषड्त्रिंशत्। नक्षत्राणि षोडशाग्रविंशतिशतानि। ताराः अष्टचत्वारिंशल्लक्ष द्वाविंशतिसहस्रद्विशतकोटीकोट्यः सन्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों के ऊपर निवास करने वाले समस्त ज्योतिष्क देवों का प्रमाण भिन्न-भिन्न दर्शाते हैं–

नोट–उपर्युक्त गद्य का अर्थ निम्नांकित तालिका में अवधारित किया गया है।

क्रम	द्वीप एवं समुद्र के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारागण
१	जम्बूद्वीप	२	२	१७६	५६	१३३९५० कोड़ाकोड़ी
२	लवणसमुद्र	४	४	३५२	११२	२६७९०० कोड़ाकोड़ी
३	धातकीखण्डद्वीप	१२	१२	१०५६	३३६	८०३७०० कोड़ाकोड़ी
४	कालोदधि समुद्र	४२	४२	३६९६	११७६	२८१२९५० कोड़ाकोड़ी
५	पुष्करार्ध द्वीप	७२	७२	६३३६	२०१६	४८२२२०० कोड़ाकोड़ी
	योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	८८४०७०० कोड़ाकोड़ी

अब चन्द्रमा के अवशेष परिवार देवों के नाम, नृलोक में ज्योतिर्देवों का गमन क्रम और मानुषोत्तर के आगे ज्योतिर्देवों की अवस्थिति कहते हैं–

विधोः शेषपरिवारसुराः सामान्यकादयः।
अष्टभेदा हि पूर्वोक्ताः प्रतीन्द्रप्रमुखाः सदा ॥५९॥
त्रायस्त्रिंशसुरैर्लोकपालैर्विना भवन्ति च।
सार्धद्वीपद्वये पङ्क्त्या ज्योतिर्देवा भ्रमन्त्यमी ॥६०॥
मानुषोत्तरतो बाह्ये तिष्ठन्ति ज्योतिषां गणाः।
ये संख्यवर्जितास्तेषामचलत्वं भवेत्सदा ॥६१॥

अर्थ–पूर्वोक्त दस भेदों में से त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देवों के बिना, प्रतीन्द्र है प्रमुख जिनमें, ऐसे सामानिक आदि आठ भेद वाले देव चन्द्र के अवशेष परिवार में होते हैं। अर्थात् ज्योतिष्क देवों का इन्द्र चन्द्रमा है, इसके परिवार में प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्षक, पारिषद्, अनीक, प्रकीर्णक आभियोग्य और किल्विषिक जाति के देव होते हैं। अढ़ाई द्वीप में ज्योतिर्देवों का गमन पंक्ति पूर्वक होता है। मानुषोत्तर पर्वत के आगे असंख्यात ज्योतिष्क देवों के समूह हैं, जो निरन्तर अचल ही रहते हैं अर्थात् कभी गमन नहीं करते ॥५९-६१॥

अब मनुष्यलोक की ध्रुव ताराओं का प्रमाण कहते हैं–

जम्बूद्वीये च षट्त्रिंशत्प्रमाणास्तारका ध्रुवाः।
लवणाब्धौ तथैको न चत्वारिंशद्युतं शतम् ॥६२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तारकाः धातकीखण्डे सहस्रं दशसंयुतम्।
कालोदेचैक चत्वारिंशत्सहस्त्रास्तथा शतम् ॥६३॥
विंशत्यग्रं ध्रुवाः सन्ति तारकाः पुष्करार्धके।
त्रिपञ्चाशत् सहस्त्राणि त्रिंशदग्रं शतद्वयम् ॥६४॥
ध्रुवाः स्युस्तारका एषां चलनं जातु नास्त्यपि।
तिर्यग्लोके समस्ताश्च ध्रुवाज्योतिष्कनिर्जराः ॥६५॥

अर्थ—जम्बूद्वीप में ३६ ध्रुव ताराएँ हैं। लवण समुद्र में १३९ धातकीखण्ड में १०१०, कालोदधि के ऊपर ४११२० और पुष्करार्ध के ऊपर ५३२३० ध्रुवताराएँ हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में (३६ + १३९ + १०१० + ४११२० + ५३२३० =) ९५५३५ ध्रुवताराएँ हैं, ये कभी भी चलायमान नहीं होतीं। अर्थात् गमन नहीं करतीं। तिर्यग्लोक में अर्थात् अढ़ाई द्वीप से बाहर के सभी ज्योतिर्देव ध्रुव हैं। अर्थात् कभी गमन नहीं करते ॥६२-६५॥

अब मेरु से ज्योतिष्क देवों की दूरी का प्रमाण, उनके गमन का क्रम और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का एवं सूर्य से वेदी के अन्तर का प्रमाण कहते हैं—

एकः विंशाधिकैकादश शतैर्योजनैश्च खे।
तिर्यग्मेरुं विहायैते परिभ्रमन्ति सर्वतः ॥६६॥
सर्वज्योतिष्कवृन्दार्धाः स्वस्वद्वीपाम्बुधिं श्रिताः।
ज्योतिष्का मर्त्यलोकस्यैकस्मिन् भागे चलन्ति च ॥६७॥
अन्ये ज्योतिर्गणार्धा ज्योतिष्कामराभ्रमन्त्यपि।
खे स्वस्वसद्विमानस्था भागेऽन्यस्मिन्निरन्तरम् ॥६८॥
लवणाद्याः स्वविष्कम्भाः सूर्यार्धमण्डलोनिताः।
स्वसूर्यार्धेन संभक्तास्तदन्तरं द्विसूर्ययोः ॥६९॥
सूर्यान्तरं यदेवात्र तस्यार्धमन्तरं हि तत्।
वेदिकासन्नमार्गस्य दिवाकरस्य जायते ॥७०॥

अर्थ—सर्व ज्योतिर्गण सुदर्शन मेरु को तिर्यग् रूप से ११२१ योजन (४४८४००० मील) छोड़कर प्रदक्षिणा रूप से मेरु के चारों ओर आकाश में परिभ्रमण करते हैं। मनुष्य क्षेत्रस्थ द्वीप समुद्रों में से अपने-अपने द्वीप समुद्रों के ऊपर ज्योतिष्क देवों के जो देव समूह अवस्थित हैं, उनका अर्ध अर्ध भाग अपने-अपने द्वीप समुद्र के एक भाग में और अन्य दूसरा अर्ध भाग दूसरे एक भाग में संचार (गमन) करता है। लवण समुद्र एवं धातकीखण्ड आदि स्थानों में जितने-जितने सूर्य हैं, उनके अर्ध-अर्ध सूर्य बिम्बों के विष्कम्भ को लवण समुद्रादि के स्व स्व विष्कम्भों में से घटाकर अवशेष में स्वकीय सूर्यों के अर्धभाग का भाग देने पर एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है तथा वेदी से निकटवर्ती

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सूर्य का अंतर उपयुक्त अन्तर का अर्ध प्रमाण होता है। अर्थात् लवण समुद्र में चार सूर्य हैं, इनके अर्ध (२) सूर्यों के विष्कम्भ का प्रमाण ($\frac{४८}{६१}$×२=) $\frac{९६}{६१}$ योजन हुआ, इसे लवण समुद्र के २००००० योजन में से घटाने पर ($\frac{२००००}{१}$ - $\frac{९६}{६१}$) = $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन अवशेष बचता है। इसमें लवण समुद्र के सूर्यों (४) के अर्ध भाग (२) का भाग देने पर ($\frac{१२१९९९०४}{६१×२}$) ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ योजन लब्ध प्राप्त होता है। यही एक सूर्य से दूसरे सूर्य के अन्तर का प्रमाण है और वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर उपयुक्त अन्तर का अर्ध (४९९९९३ $\frac{३७}{६१}$ योजन) प्रमाण है। अर्थात् लवण समुद्र की अभ्यंतर वेदी से प्रथम सूर्य ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन (१९९९९८४२६ $\frac{१४}{६१}$ मील) दूर रहता है। इस सूर्य से दूसरा सूर्य ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ यो. (३९९९९६८५२ $\frac{२८}{६१}$ मील) दूर है और इस सूर्य से लवण समुद्र की बाह्य वेदी ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ यो. दूर है ॥६६-७०॥

अस्य व्यक्तं व्याख्यानं क्रियते–

लवणाब्धौ सूर्ययोरन्तरं नवनवतिसहस्र नवशत नवनवतियोजनानि योजनस्यैक षष्टिभागानां त्रयोदश-भागाः। धातकीखण्डे सूर्ययोरन्तरं षट्षष्टिसहस्रषट्शतपञ्चषष्टि योजनानि योजनस्य त्र्यशीत्यग्रशतभागानां एकषष्ट्यधिकशतभागाः। कालोदधौ सूर्ययोरन्तरं अष्टत्रिंशत्सहस्र चतुर्णवति योजनानि, योजनस्यैकाशीति युत द्वादशशतभागानां अष्टसप्तत्यग्रपञ्चशतभागाः। पुष्करार्धे सूर्ययोरन्तरं द्वाविंशतिसहस्रद्विशतैक-विंशतियोजनानि। योजनस्य षण्णवत्यग्रैक विंशतिशत भागानां षट्-पञ्चाशदधिकनवशतभागाः।

अब इन अन्तरालों का स्पष्ट व्याख्यान करते हैं–

लवण समुद्र में एक सूर्य से दूसरे सूर्य के अन्तर का प्रमाण ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ योजन है। धातकीखण्ड में एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर ६६६६५ $\frac{१६१}{१८३}$ योजन है। कालोदधि समुद्र में सूर्य से सूर्य का अन्तर ३८०९४ $\frac{५७८}{१२८१}$ योजन है और पुष्करार्ध द्वीप में सूर्य से सूर्य का अन्तराल २२२२१ $\frac{९५६}{२१९६}$ या $\frac{२३९}{५४९}$ योजन प्रमाण है।

अब मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों के अवस्थान का निर्धारण करते हैं–

मानुषोत्तरतो बाह्य भागे लक्षार्धयोजनान्।
मुक्त्वा ज्योतिष्कदेवानां प्रथमं वलयं भवेत् ॥७१॥
वलयेऽस्मिंश्चतुश्चत्वारिंशदग्रशत प्रमाः।
स्युश्चन्द्रांस्तत्समाः सूर्याः सर्वे ग्रहादयः क्रमात् ॥७२॥
ततो हि योजनानां च लक्षे लक्षे गते सति।
ज्योतिषां पुष्करार्धे च वलयं स्यात्पृथक्-पृथक् ॥७३॥
किन्तु चन्द्राश्च चत्वारो वलये वलये क्रमात्।
वर्धन्ते भानवो यावद्वलयं सप्तमं भवेत् ॥७४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पिण्डीकृतानि सर्वाणि सन्त्यष्टौ वलयान्यपि।
मानुषोत्तरशैलाद्रेर्बाह्यस्थ पुष्करार्धके ॥७५॥
ततो योजनलक्षार्धं प्रविश्य पुष्कराम्बुधौ।
तद्वेदीमूलतस्तेषां नवमं वलयं भवेत् ॥७६॥
वलयेऽस्मिन् भवन्त्यष्टाशीत्यग्रद्विशतप्रमाः।
चन्द्रास्तावन्त आदित्याः समभागे व्यवस्थिताः ॥७७॥
ततोऽत्र योजनानां च लक्षे लक्षे गते क्रमात्।
पूर्वक्षेत्रं समावेष्ट्यास्त्येकैकं वलयं पृथक् ॥७८॥
अत्रापि पूर्ववच्चन्द्राश्चत्वारो भानवस्तथा।
वर्धन्तेऽमीग्रहाद्यैश्च वलयं वलयं प्रति ॥७९॥
अनेन विधिना सन्त्यसंख्यद्वीपाब्धिषु स्फुटम्।
असंख्यवलयान्येव चन्द्रादिज्योतिषां क्रमात् ॥८०॥
योजनानां तथैकैकलक्षान्तरान्वितान्यपि।
मध्यलोकान्तपर्यन्तं चान्तिमाब्ध्यन्तमञ्जसा ॥८१॥
एषु द्वीपाब्ध्यसंख्येषु तारेशा भानवस्तथा।
वर्धन्तेऽन्योऽन्य चत्वारएकैकं वलयं प्रति ॥८२॥
अत्रस्था भास्कराः पुष्यनक्षत्रेषु प्रतिष्ठिताः।
सर्वे चन्द्राश्च तिष्ठन्त्यभिजित्सुसंख्य वर्जिताः।८३॥
स्वकीयस्य स्वकीयस्य स्वस्वेन्दुभानुसंख्यकैः।
वलयस्य विभक्तस्य यदन्तरं परस्परम् ॥८४॥
तदेवान्तरमेव स्याच्चन्द्राच्चन्द्रमसः पृथक्।
सूर्यात्सूर्यस्य चान्यस्मात्सर्वत्रैषान्तरस्थितिः ॥८५॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वत के बाह्य भाग में पर्वत से पचास हजार योजन आगे जाकर सूर्य-चन्द्र आदि ज्योतिष्क देवों का प्रथम वलय है। इस प्रथम वलय में १४४ चन्द्र एवं १४४ सूर्य हैं, अन्य ग्रहों की अवस्थिति भी इसी क्रम से जानना चाहिए। इस प्रथम वलय से एक-एक लाख योजन क्रम से आगे जाते हुए पुष्करार्ध द्वीप में ज्योतिष्क देवों का पृथक्-पृथक् एक-एक वलय है तथा प्रत्येक वलय में क्रम से चार-चार चन्द्र और चार-चार सूर्यों की अपने-अपने परिवार देवों के साथ जब तक सातवाँ वलय प्राप्त नहीं होता, तब तक अभिवृद्धि होती रहती है। इस प्रकार मानुषोत्तर के बाह्य भाग से पुष्करार्ध पर्यन्त के सर्व वलयों का एकत्रित योग आठ है। इसके आगे पुष्करार्ध द्वीप की अन्तिम वेदी से प्रारम्भ कर पुष्करवर समुद्र में पचास हजार योजन भीतर जाकर ९ वाँ वलय है। इस ९ वें वलय में २८८ चन्द्र और २८८ सूर्य समान भाग में अवस्थित हैं। यहाँ से क्रमशः एक-एक लाख योजन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आगे-आगे पुष्करार्ध द्वीप को समावेष्टित करते हुए पृथक्-पृथक् एक-एक वलय है। यहाँ भी पूर्व के ही सदृश अपने-अपने ग्रह आदि परिवार देवों के साथ प्रत्येक वलय में चार-चार चन्द्र और चार-चार सूर्यों की वृद्धि होती है। इसी विधि से असंख्यात द्वीप समुद्रों में क्रमशः चन्द्र आदि ज्योतिष्क देवों के असंख्यात वलय हैं। ये वलय मध्यलोक के अन्त में अवस्थित स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त हैं तथा इन सभी में एक-एक लाख योजन का अन्तर है। इन असंख्यात द्वीप समुद्रों में अवस्थित असंख्यात वलयों में से प्रत्येक वलय में अपने-अपने परिवार सहित चार-चार चन्द्रों और चार-चार सूर्यों की अभिवृद्धि होती है (किन्तु इस वृद्धि का सम्बन्ध अपने-अपने द्वीप समुद्र पर्यन्त ही होता है, अन्य द्वीप समुद्रों से नहीं। अन्य द्वीप समुद्रों के प्रथम वलय में तो इनकी संख्या पूर्व द्वीप समुद्र के प्रथम वलय से नियमतः दुगुनी हो जाती है। जैसे-बाह्य पुष्करार्ध द्वीप में कुल आठ वलय हैं। प्रथम वलय में १४४ चन्द्र हैं, इसके आगे प्रत्येक वलय में चार-चार की वृद्धि होते हुए १४८, १५२, १५६, १६०,१६४, १६८ और ८ वें वलय में १७२ चन्द्रों की प्राप्ति हुई किन्तु पुष्करवर समुद्र में अवस्थित ९ वें वलय में चन्द्रों की संख्या २८८ है, जो पुष्करार्ध द्वीप स्थित प्रथम वलय से दूनी है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना।) इन असंख्यात वलय में अवस्थित असंख्यात सूर्य स्व स्व परिवार सम्बन्धी पुष्य नक्षत्रों पर अवस्थित हैं और असंख्यात चन्द्र अभिजित् नक्षत्रों पर अवस्थित हैं। अपने-अपने वलय (की परिधि के प्रमाण) को स्व स्व वलय स्थित सूर्य चन्द्रों की संख्या से भाजित करने पर जो अन्तर प्राप्त होता है वही अन्तर अपने वलय में एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का होता है [यथा-मानुषोत्तर पर्वत का सूची व्यास ($\frac{१}{२}$ + २ + ४ + ८ + ८ = २२ $\frac{१}{२}$ × २ =) ४५ लाख योजन है, इसमें बाह्य पुष्करार्ध के दोनों ओर का पचास-पचास हजार मिला देने से बाह्य पुष्करार्ध के प्रथम वलय के सूची व्यास का प्रमाण (४५+१)=४६ लाख योजन और इसकी सूक्ष्म परिधि का प्रमाण १४५४६४७७ योजन हुआ, इसमें प्रथम वलय में अवस्थित १४४ चन्द्रों का भाग देने पर एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर प्रमाण (१४५४६४७७ ÷ १४४) = १०१०१७ $\frac{२९}{१४४}$ योजन प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सर्वत्र ज्ञातव्य है] अन्य सर्वत्र भी परस्पर का अन्तर निकालने की यही प्रक्रिया है अर्थात् अन्तर की अवस्थिति इसी प्रकार है ॥७१-८५॥

अत्र व्यासेन वलयेषु परिधिश्चन्द्रान्तरादीनां व्याख्यानं क्रियते-

मानुषोत्तराद्रेः पुष्करार्धस्य प्रथमे वलये परिधिः एका कोटी पञ्चचत्वारिंशल्लक्षषट्चत्वारिंशत्सहस्र-चतुःशतसप्तसप्ततियोजनानि। चतुश्चत्वारिंशदधिकशतचन्द्राः तावन्त आदित्याः स्युः। द्वयोश्चन्द्रयोः सूर्ययोश्चान्तरं एकलक्षैकसहस्रसप्तदशयोजनानि, योजनस्य चतुश्चत्वारिंशदग्रशतभागानां एकोनत्रिंशद्-भागाश्च। द्वितीये वलये परिधिः एका कोट्यैकपञ्चाशल्लक्षाष्टसप्ततिसहस्रनवशतद्वात्रिंशद्योजनानि। अष्टचत्वारिंशदधिकशतनिशाकराः। तावन्तो दिवाकराश्च। चन्द्रयोः सूर्ययोश्चान्तरं एकलक्षद्विसहस्रपञ्च-शतषष्टि योजनानि योजनस्य सप्तत्रिंशद्भागानां त्रयोभागाः। तृतीये वलये परिधिः एकाकोट्यष्टपञ्चा-

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शल्लक्षैकादशसहस्त्रत्रिशताष्टाशीति योजनानि। द्विपञ्चाशदधिकशतेन्दवः स्युः। तावन्तो दिनकराश्च। चन्द्रयोः सूर्ययोर्द्वयोश्चान्तरं एकलक्षचतुःसहस्त्रद्वाविंशतियोजनानि। योजनस्याष्टादशभागानां एकादशभागाः। चतुर्थे वलये परिधिः एककोटीचतुःषष्टि लक्षत्रिचत्वारिंशत्सहस्त्राष्टशत-त्रिचत्वारिंशद्योजनानि। षट्पञ्चाशदग्रशतचन्द्रमसः। तत्प्रमा आदित्याश्चचन्द्रयोः सूर्ययोर्द्वयोरन्तरं एकलक्षपञ्चसहस्त्र चतुःशतनवयोजनानि क्रोशैकश्च। अनया गणनयापरेष्वसंख्य वलयेषु चन्द्रयोः सूर्ययोरन्तरमानेतव्यं।

अब व्यास के द्वारा वलय में परिधि व चन्द्रमा का अन्तर आदि कहते हैं—

मानुषोत्तर पर्वत से आगे बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के प्रथम वलय की परिधि का प्रमाण १४५४६४७७ योजन है। उस वलय में चन्द्रों की संख्या १४४ और सूर्यों की संख्या भी १४४ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर १०१०१७$\frac{२९}{१४४}$योजन है। दूसरे वलय की परिधि का प्रमाण १५१७८९३२ योजन है। चन्द्र संख्या १४८ और सूर्य संख्या १४८ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०२५६० $\frac{३}{३७}$ योजन है। तीसरे वलय की परिधि का प्रमाण १५८११३८८ योजन है। चन्द्र १५२ और सूर्य १५२ हैं। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०४०२२ योजन और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अंतर १०४०२२ योजन है। चतुर्थ वलय की परिधि का प्रमाण १६४४३८४३ योजन है। इस वलय में चन्द्र संख्या १५६ और सूर्य संख्या १५६ है। एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर १०५४०९ योजन एवं एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर १०५४०९ योजन एक कोस प्रमाण है। इसी प्रकार की गणना से आगे के असंख्यात वलयों में अवस्थित एक-एक चन्द्र से दूसरे चन्द्रों के एवं एक-एक सूर्य से दूसरे सूर्यों के अन्तर का प्रमाण निकाल लेना चाहिए।

अब प्रत्येक द्वीप समुद्रों में वलयों का प्रमाण पृथक्-पृथक् कहते हैं—

पुष्करद्वीपशेषार्धेऽष्टौ सन्ति वलयानि च।
पुष्कराब्धौ क्रमेणैव द्वात्रिंशद् वलयान्यपि ॥८६॥
वलया वारुणीद्वीपे चतुःषष्टिप्रमाणकाः।
वरुणाब्धौ तथाष्टाविंशत्यग्रशतसंख्यकाः ॥८७॥
इत्येवं द्वीपसर्वेषु चासंख्येऽब्धिषु क्रमात्।
द्विगुणा द्विगुणा ज्ञेया वलयासंख्यवर्जिताः ॥८८॥

अर्थ—बाह्य पुष्करार्ध द्वीप में ८ वलय हैं। पुष्करवर समुद्र में ३२, वारुणीवर द्वीप में ६४ और वारुणीवर समुद्र में १२८ वलय हैं। इसी प्रकार असंख्यात द्वीप समुद्रों में असंख्यात वलय हैं, जिनका प्रमाण क्रमशः दुगुना-दुगुना जानना चाहिए ॥८६-८८॥

अब सूर्य चन्द्र के चार क्षेत्रों का प्रमाण, उनका विभाग एवं उनकी वीथियों का प्रमाण कहते हैं—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

प्रचारक्षेत्रमेवैकं सूर्यस्य योजनानि च।
सूर्यस्य बिम्बयुक्तं दशग्रपञ्चशतान्यपि ॥८९॥
प्रचारक्षेत्रमिन्दोश्च चन्द्रबिम्बयुतं भुवि।
योजनानां जिनोक्तं दशाग्रपञ्चशतप्रमम् ॥९०॥
तन्मध्ये योजनानां चाशीत्यग्रशतसम्मितम्।
इन्दोर्भानोस्तथा चारक्षेत्रं द्वीपादिमे पृथक् ॥९१॥
तथाब्धौ योजनानां स्यात्त्रिंशदग्रशतत्रयम्।
दिवाकरस्य चन्द्रस्य चारक्षेत्रं किलादिमे ॥८२॥
सूर्यचन्द्राविमौ चाद्यद्वीपाब्ध्योर्भ्रमतोऽन्वहम्।
नरक्षेत्रे भ्रमन्त्यन्ये स्वस्वद्वीपाब्धिगोचराः ॥९३॥
शतं चतुरशीत्यग्रं मार्गाः सूर्यस्य सन्ति च।
चारक्षेत्रेऽखिला इन्दोर्मार्गाः पञ्चदशप्रमाः ॥९४॥
एषां मध्ये व्रजेदेकं मार्गं दिनं दिनं प्रति।
दिननाथस्तथा चन्द्रः क्रमेणैषां सदागतिः ॥९५॥

अर्थ—(सूर्य-चन्द्र के गमन करने की क्षेत्र गली को चार क्षेत्र कहते हैं। दो चन्द्रों और दो सूर्यों के प्रति एक-एक चार क्षेत्र होते हैं।) सूर्य बिम्ब के विस्तार ($\frac{४८}{६१}$) प्रमाण से अधिक ५१० योजन अर्थात् ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन (२०४३१४७ $\frac{३३}{६१}$ मील) विस्तार वाला एक चार क्षेत्र सूर्य का है तथा जिनेन्द्र द्वारा चन्द्र बिम्ब के विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ यो.) से अधिक ५१० योजन अर्थात् ५१०$\frac{५६}{६१}$ योजन (२०४३६७ $\frac{८}{६१}$ मील) विस्तार वाला एक चार क्षेत्र चन्द्र का है। चन्द्र-सूर्यों के अपने-अपने चार क्षेत्रों के विस्तार में से जम्बूद्वीप में इनके चार क्षेत्र का प्रमाण मात्र १८० योजन (७२०००० मील) है। अवशेष ३३० योजन प्रमाण वाला चार क्षेत्र लवणसमुद्र में है। अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ चन्द्र-सूर्य जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन में ही विचरते हैं। शेष ३३० योजन लवण समुद्र में विचरण करते हैं। इस प्रकार मनुष्य क्षेत्र में जम्बूद्वीप सम्बन्धी चन्द्र सूर्य जम्बूद्वीप और लवण समुद्र इन दोनों में भ्रमण करते हैं किन्तु अवशेष धातकीखण्ड को आदि कर पुष्करार्ध पर्यन्त द्वीप समुद्र सम्बन्धी चन्द्र सूर्यों का भ्रमण अपने-अपने द्वीप समुद्रों में ही होता है, उसके बाहर नहीं। अर्थात् वहाँ के चन्द्र सूर्यों के चार क्षेत्र अपने-अपने द्वीप समुद्रों में ही हैं। अपने-अपने प्रमाण वाले चार क्षेत्रों में चन्द्र की १५ गलियाँ तथा सूर्य की १८४ गलियाँ हैं। इन अपनी-अपनी गलियों के मध्य अनुक्रम से निरन्तर गमन करते हुए प्रतिदिन दो-दो सूर्य और दो-दो चन्द्र संचार करते हैं। अर्थात् आमने-सामने रहते हुए दो सूर्य प्रतिदिन एक गली को पूर्ण कर लेते हैं ॥८९-९५॥

अधुना बालावबोधाय संस्कृतभाषयादित्यस्य किञ्चिद्विवरणं विधीयते—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तेषां मार्गाणां मध्ये जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे श्रावणकृष्णपक्षादिदिने कर्कटसंक्रान्ति दिवसे दक्षिणायन प्रारम्भे निषधकुलपर्वतस्योपरिप्रथममार्गेरविः प्रथमोदयं करोति। तदादित्यविमानध्वजस्तम्भाग्र स्थितां स्फुरद्रत्नमयीं महती जिनेश्वरप्रतिमां वीक्ष्य प्रत्यक्षेणायोध्या नगरस्थचक्री निर्मलसम्यक्त्वानुरागेण जिनभक्त्या च पुष्पाञ्जलिमुत्क्षिप्य नुतिपूर्वकमर्घं ददाति। अभिजित्नक्षत्रचन्द्रयोः संयोगे श्रावणे मासि कृष्णपक्षस्य प्रतिपद्दिने युगस्यादिः स्यात्। आगमोक्त दिनानयन विधिना वर्षस्य षट्षष्ट्यधिकत्रिशतदिवसाः भवन्ति तस्य दिनसमूहार्धस्य यदा जम्बूद्वीपाभ्यन्तराद्दक्षिणेन बहिर्भागेषु भास्करो गच्छति तदा तस्य दक्षिणायन संज्ञा। यदा पुनर्लवणसमुद्रात्सकाशादुत्तरेणाभ्यन्तरमार्गेषु भानुरायाति तदास्योत्तरायण संज्ञेति तत्र यदा जम्बूद्वीपाभ्यन्तरे प्रथममार्गे परिधौ कर्कट संक्रान्तिदिने दक्षिणायनप्रारम्भे दिनकरस्तिष्ठति तथा चतुर्नवतिसहस्त्र पञ्चशतपञ्चविंशतियोजनप्रमाणः उत्कर्षेणादित्यविमानस्य पूर्वापरेणातप विस्तारः प्रसर्पति। शतयोजनप्रम ऊर्ध्वातपश्च। अधस्तापोऽष्टादश शतप्रमाणो जायते। अष्टादशमुहूर्तेर्दिवसो भवति। द्वादशमुहूर्तैः रात्रिश्च ततः क्रमेणातपहानौ सत्यां मुहूर्तद्वयस्यैक षष्टि भागकृतस्यैको भागो दिवस मध्ये दिनं दिनं प्रति हीयते। यावल्लवणाब्धौ अवसानमार्गे माघमासे मकरसंक्रान्तौ उत्तरायणदिने षोडशाधिक त्रिषष्टिसहस्त्र योजनप्रमो जघन्येन सूर्यविमानस्यातपो विस्तरति। द्वादशमुहूर्तैर्दिवसो भवेत्। अष्टादशमुहूर्तैरात्रिश्च।

अब मन्द बुद्धि जनों को ज्ञान कराने के लिये सूर्य का कुछ विवरण करते हैं—

उन १८४ गलियों में से जम्बूद्वीप की अभ्यन्तर (प्रथम) वीथि (मार्ग) में प्रवेश करते हुए श्रावण मास, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को कर्क संक्रान्ति के दिन दक्षिणायण के प्रारम्भ में निषध कुलाचल पर्वत के तट से (१४६२१ $\frac{४८}{३८०}$ योजन) ऊपर आने पर सूर्य प्रथम मार्ग में प्रथम उदय करता है। (अर्थात् पंचवर्षीय युग की समाप्ति के बाद दूसरे युग के प्रारम्भिक सूर्य उदय को प्रथम उदय कहते हैं।) उस समय सूर्य विमानस्थ ध्वजस्तम्भ के अग्रभाग पर स्थित देदीप्यमान रत्नमयी जिनेन्द्र भगवान् की महान प्रतिमा को प्रत्यक्ष देखकर अयोध्या (नगरस्थ अपने ८४ खण्ड के महल के ऊपर) स्थित प्रथम चक्रवर्ती क्षायिक सम्यक्त्व के अनुराग से तथा जिनेन्द्र भक्ति से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार पूर्वक (भगवान् को) अर्घ चढ़ाता है। अभिजित् नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का संयोग होने पर श्रावण मास, कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन पंचवर्षीय युग का प्रारम्भ होता है। आगम (त्रिलोकसार गाथा ४०८-४०९) में कही हुई दिनानयन विधि के अनुसार एक वर्ष में ३६६ दिन होते हैं। एक अनयन में इस दिन समूह का अर्धभाग अर्थात् १८३ दिन होते हैं। जम्बूद्वीप की अभ्यंतर वीथी से प्रारम्भ कर जब सूर्य दक्षिण की ओर बाह्य भागों में गमन करता है, तब उसकी दक्षिणायन संज्ञा है और जब सूर्य लवणसमुद्र से उत्तर की ओर अभ्यंतर की ओर आता है तब उसकी उत्तरायण संज्ञा है, इस प्रकार जब सूर्य जम्बूद्वीप के भीतर प्रथम मार्ग की परिधि में कर्क संक्रान्ति के दिन दक्षिणायन का प्रारम्भ करता हुआ ठहरता है, तब उत्कृष्ट रूप से सूर्य, विमान के आगे (पूर्व में) और पीछे (पश्चिम में) ताप क्षेत्र ९४५२५ योजन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

(३७८१००००० मील) पर्यन्त फैलाता है। (तथा उत्तर में ४९८२० योजन और दक्षिण में ३३५१३ योजन तक फैलाता है) इसी प्रकार ऊपर की ओर आतप का विस्तार १०० योजन (४००००० मील) पर्यन्त है (क्योंकि सूर्य बिम्ब से ऊपर १०० योजन पर्यन्त ही ज्योतिर्लोक है और नीचे की ओर आतप का प्रमाण १८०० योजन (७२००००० मील) पर्यन्त है [क्योंकि सूर्य बिम्ब से चित्रा पृथ्वी ८०० योजन (३२००००० मील) नीचे है और १००० योजन चित्रा की जड़ है, अतः योग (१००० + ८००)= १८०० योजन होता है।] उस समय अर्थात् दक्षिणायन के प्रारम्भ में १८ मुहूर्त (१४ घंटा २४ मिनिट) का दिन और १२ मुहूर्त (९ घंटा ३६ मिनिट) की रात्रि होती है। प्रथम वीथी से जब सूर्य आगे बढ़ता है तब क्रम से आतप के प्रमाण में हानि होती जाती है और इसीलिये प्रत्येक दिन $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त ($१\frac{३५}{६१}$ मिनिट) की हानि होने लगती है। अर्थात् युग के प्रारम्भ में श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन सूर्य प्रथम वीथी में था, उस दिन १८ मुहूर्त का दिन और १२ मुहूर्त की रात्रि थी किन्तु दोज के दिन जब सूर्य दूसरी गली में पहुँचा तब $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त कम हो गये और दोज को ($\frac{१८}{१}$ - $\frac{२}{६१}$ =) १७ $\frac{५९}{६१}$ मुहूर्त का दिन होगा। इसी प्रकार आतप की हानि के साथ-साथ $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त हानि होते हुए जब सूर्य लवणसमुद्र की अन्तिम वीथी में पहुँचकर माघ मास में मकर संक्रान्ति के दिन उत्तरायण का प्रारम्भ करता है, तब जघन्य से सूर्य के आतप का विस्तार ६३०१६$\frac{२}{६१}$ योजन होता है और उस दिन १२ मुहूर्त का दिन तथा १८ मुहूर्त की रात्रि होती है। (यहीं से प्रतिदिन $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त की वृद्धि प्रारम्भ हो जाएगी)।

अब रवि शशि के गमन प्रकार की दृष्टान्त द्वारा कह कर एक वीथी से दूसरी वीथी के अन्तर प्रमाण आदि के जानने का साधन बतलाते हैं—

आदिमार्गाश्रितौ मन्दौ बहिः शीघ्रौ च निर्गमे।
तौ मार्गान् समकालेन सर्वान् साधयतः क्रमात्॥९६॥
आदिमार्गे गजाकारा गतिर्मध्याध्वनि स्मृताः।
अश्ववद्गतिरन्ताध्वनि सिंहाभा गतिस्तयोः॥९७॥
सूर्यचन्द्रमसोश्चान्यद्वीथी वीथ्यन्तरादिकम्।
लोकानुयोगसिद्धान्ते ज्ञेयं परिधिलक्षणम्॥९८॥

अर्थ—सूर्य एवं चन्द्र प्रथम (अभ्यन्तर) वीथी में मन्द गति से गमन करते हैं किन्तु वे जैसे जैसे बाहर (द्वितीयादि गलियों में) की ओर बढ़ते जाते हैं वैसे ही उनकी गति क्रमशः तेज होती जाती है। वे दोनों समकाल (६० मुहूर्त) में ही हीनाधिक प्रमाण वाली सर्व गलियों को पूरा कर लेते हैं। प्रथम आदि गलियों में उन दोनों की चाल हाथी सदृश, मध्यम वीथी में अश्व सदृश और अन्तिम वीथी में सिंह के सदृश है। चन्द्र और सूर्यों को वीथियों का पारस्परिक अन्तर तथा इनकी परिधियों का प्रमाण आदि करणानुयोग (त्रिलोकसार गाथा ३७७-३७८-३८५-३८६-३८७ आदि) से ज्ञात कर लेना चाहिए ॥९६-९८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब २८ नक्षत्रों के नामों का दिग्दर्शन कराते हैं–

कृतिकारोहणीनाम ततो मृगशिरस्तथा।
आर्द्रा पुनर्वसुर्नाम्ना पुष्याश्लेषा मघाह्वयाः ॥९९॥
पूर्वादि फाल्गुनी चोत्तरफाल्गुनी समाह्वयम्।
हस्ता चित्रा तथा स्वाति र्विशाखाभिधमेव च ॥१००॥
अनुराधाख्यकं ज्येष्ठा नक्षत्रं मूलसंज्ञकम्।
पूर्वाषाढाभिधं चोत्तराषाढाख्योऽभिजित्ततः ॥१०१॥
श्रवणाख्यं धनिष्ठा शतभिषा नामकं ततः।
पूर्वाभाद्रपदाख्यं चोत्तरभाद्रपदाख्यकम् ॥१०२॥
रेवतीसंज्ञनक्षत्रमश्विनी भरणीति च।
अष्टाविंशति नामानि नक्षत्राणामनुक्रमात् ॥१०३॥

अर्थ–१. कृतिका, २. रोहिणी, ३. मृगशीर्षा, ४. आर्द्रा, ५. पुनर्वसु, ६. पुष्य, ७. आश्लेषा, ८. मघा, ९. पूर्वाफाल्गुनी, १०. उत्तराफाल्गुनी, ११. हस्त, १२. चित्रा, १३. स्वाति, १४. विशाखा, १५. अनुराधा, १६. ज्येष्ठा, १७. मूल, १८. पूर्वाषाढा, १९. उत्तराषाढा, २०. अभिजित्, २१. श्रवण, २२. धनिष्ठा, २३. शतभिषा, २४. पूर्वाभाद्रपद, २५. उत्तराभाद्रपद, २६. रेवती, २७. अश्वनी और २८. भरणी नाम वाले ये २८ नक्षत्र अनुक्रम से हैं ॥९९-१०३॥

अब प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या और कृतिका आदि नक्षत्रों की परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त करने की विधि कहते हैं–

ताराः षट्पञ्चतिस्त्रस्तु ह्येकाषट्तिस्त्र ईरिताः।
षट्चतस्त्रोऽपि कथ्यन्ते द्वे द्वे पञ्च ततः परम् ॥१०४॥
एकैकाथ चतस्त्रोपि षट्तिस्त्रो नवतारकाः।
चतस्त्रस्तु चतस्त्रोपि तिस्त्रस्त्रिस्त्रस्तु पंच च ॥१०५॥
शतकमेकादशाग्रे च द्वे द्वे द्वात्रिंशदीरिताः।
पञ्च तिस्त्रोप्यमूस्तारासंख्यभानां क्रमाद्विदुः ॥१०६॥
एकादशसहस्त्राणि स्वस्वताराहतानि च।
स्मृतं परिजनस्येदं संख्यानं कृतिकादिषु ॥१०७॥

अर्थ–कृतिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या क्रमशः छह, पाँच, तीन, एक, छह, तीन, छह, चार, दो, दो, पाँच, एक, एक, चार, छह, तीन, नौ, चार, चार, तीन, तीन; पाँच, एक सौ ग्यारह, दो, दो, बत्तीस, पाँच और तीन है। एक हजार एक सौ ग्यारह को अपने-अपने ताराओं के प्रमाण से गुणित करने पर कृतिका आदि नक्षत्रों के परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥१०४-१०७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विशेषार्थ—१११११ को अपने-अपने ताराओं के प्रमाण से गुणा करने पर परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे–

नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या
कृ.	११११×६=६६६६	मघा	११११×४=४४४४	अनु.	११११×६=६६६६	धनि.	११११×५=५५५५
रो.	११११×५=५५५५	पू.फा.	११११×२=२२२२	ज्ये.	११११×३=३३३३	शत.	११११×१११=१२३३२१
मृग.	११११×३=३३३३	उ.फा.	११११×२=२२२२	मूल	११११×९=९९९९	पू.भा.	११११×२=२२२२
आर्द्रा	११११×१=११११	हस्त	११११×५=५५५५	पू.षा.	११११×४=४४४४	उ.भा.	११११×२=२२२२
पुन.	११११×६=६६६६	चित्र	११११×१=११११	उ.षा.	११११×४=४४४४	रेवती	११११×३२=३५५५२
पुष्य	११११×३=३३३३	स्वाति	११११×१=११११	अभि.	११११×३=३३३३	अश्वि.	११११×५=५५५५
आ.	११११×६=६६६६	विशा.	११११×४=४४४४	श्रव.	११११×३=३३३३	भरणी	११११×३=३३३३

नोट—इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र सम्बन्धी ताराओं का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

अब जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों के नाम एवं संख्या कहते हैं–

पुनर्वसुविशाखारोहिणीचोत्तरफाल्गुनी ।
उत्तराषाढसंज्ञं चोत्तरभाद्रपदाह्वयम् ॥१०८॥
एतानि षड् जघन्यानि नक्षत्राणि भवन्त्यपि।
आश्लेषा भरणी चार्द्रा स्वातिर्ज्येष्ठाभिधानकम् ॥१०९॥
ततः शतभिषैतानि षडुत्तमानि सन्ति च।
शेष षोडशनक्षत्राणि मध्यमानि निश्चितम् ॥११०॥

अर्थ—पुनर्वसु, विशाखा, रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये ६ नक्षत्र जघन्य संज्ञक हैं। आश्लेषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, ज्येष्ठा और शतभिषक् नाम वाले ये छह नक्षत्र उत्कृष्ट संज्ञक हैं तथा शेष अश्वनी, कृतिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नाम वाले ये पन्द्रह नक्षत्र मध्यम संज्ञक हैं ॥१०८-११०॥

अब कृतिका आदि ताराओं के आकार विशेष कहते हैं–

व्यञ्जनं शकटाकारं मृगशीर्षा हि दीपिका।
तोरणाभं सितच्छत्रं वल्मीकसन्निभं तथा ॥१११॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

रेखा गोमूत्रजा हारो युगहस्तोऽम्बुजं ततः।
द्वीपस्त्वैरिणिकाहारो वीणाशृङ्गं हि वृश्चिकः ॥११२॥
भग्नवापीनिभं सिंहो गजकुम्भस्थलोपमः।
मृदङ्गाभं पतत्पक्षी सेनेभ-गात्रसञ्चयः ॥११३॥
नौः पाषाणस्तथा चुल्ली चेत्याकारा इमे क्रमात्।
प्रोदिताः कृत्तिकादीनां नक्षत्राणां जिनेश्वरैः ॥११४॥

अर्थ—कृतिका आदि नक्षत्रों की ताराएँ क्रमशः वीजना सदृश, गाड़ी की उद्धिका सदृश, मृग के शिर सदृश, दीपक, तोरण, छत्र वल्मीक (बाँबी) गोमूत्र, हार, युग, हाथ, उत्पल (नील कमल), दीप, धोंकनी, वरहार, वीणाशृंग, वृश्चिक (बिच्छू), नष्टवापी, सिंह, कुम्भ, गज कुम्भ, मुरज (मृदंग), गिरते हुए पक्षी, सेना, हाथी के पूर्व शरीर, हाथी के उत्तर शरीर, नाव, पत्थर और चूल्हे के सदृश आकार वाली होती है ॥१११-११४॥

विशेषार्थ—कृतिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या और उन ताराओं के आकार की सारणी अगले पृष्ठ पर है –

अब ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट और जघन्य आयु का कथन करते हैं—

लक्षवर्षाधिकं पल्यमायुश्चन्द्रस्य कीर्तितम्।
सहस्रवर्षसंयुक्तं पल्यं सूर्यस्य जीवितम् ॥११५॥
शुक्रस्यायुश्च पल्यैकं शतवर्षाधिकं मतम्।
बृहस्पतेश्च पल्यैकमखण्डं जीवितम् भवेत् ॥११६॥
मङ्गलस्य बुधस्यापि शनैश्चरस्य जीवितम्।
स्यात्प्रत्येकं च पल्यार्धं तारकाणां तथोत्तमम् ॥११७॥
आयुः पल्यचतुर्थांशः सर्वजघन्यमेव तत्।
पल्यैकस्याष्टमोभागः सर्वनीचामृताशिनाम् ॥११८॥

अर्थ—चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक पल्य और एक लाख वर्ष, सूर्य की एक पल्य और एक हजार वर्ष, शुक्र की एक पल्य और १०० वर्ष तथा वृहस्पति की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण है। मंगल, बुध और शनिश्चर में प्रत्येक की उत्कृष्ट आयु अर्ध-अर्ध पल्य प्रमाण है। तारागणों की उत्कृष्ट आयु पाव ($\frac{१}{४}$) पल्य है। सूर्यादि ग्रहों की जघन्य आयु पाव ($\frac{१}{४}$) पल्य प्रमाण है। सर्व नीच देवों की आयु पल्य के आठवें भाग अर्थात् $\frac{१}{८}$ पल्य प्रमाण होती है ॥११५-११८॥

अब सूर्य-चन्द्र की पट्टदेवियों एवं परिवार देवियों की संख्या कहकर देवियों की आयु का प्रमाण बतलाते हैं—

चन्द्रप्रभा सुसीमाख्या प्रभावत्यर्चिमालिनी।
चन्द्रस्येमाश्चतस्त्रः स्युर्महादेव्यो मनःप्रियाः ॥११९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्रमांक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के प्रकार
१	कृतिका	६ तारा	बीजना सदृश
२	रोहिणी	५ तारा	गाड़ी की उद्धिका
३	मृगशीर्षा	३ तारा	मृग के शिर सदृश
४	आर्द्रा	१ तारा	दीपक सदृश
५	पुनर्वसु	६ तारा	तोरण
६	पुष्य	३ तारा	छत्र
७	आश्लेषा	६ तारा	वल्मीक (बाँबी)
८	मघा	४ तारा	गौमूत्र रेखा सदृश
९	पूर्वा फाल्गुनी	२ तारा	हार सदृश
१०	उत्तरा फाल्गुनी	२ तारा	युग सदृश
११	हस्त	५ तारा	हाथ सदृश
१२	चित्रा	१ तारा	उत्पल (नील कमल)
१३	स्वाति	१ तारा	दीप सदृश
१४	विशाखा	४ तारा	पटेरा या धौंकनी
१५	अनुराधा	६ तारा	वर (उत्कृष्ट) हार सदृश
१६	ज्येष्ठा	३ तारा	वीणाशृङ्ग सदृश
१७	मूल	९ तारा	वृश्चिक (बिच्छु) सदृश
१८	पूर्वाषाढ़ा	४ तारा	नष्ट वापी सदृश
१९	उत्तराषाढ़ा	४ तारा	सिंह कुम्भ सदृश
२०	अभिजित्	३ तारा	गज कुम्भ सदृश
२१	श्रवण	३ तारा	मुरज (मृदङ्ग) सदृश
२२	धनिष्ठा	५ तारा	गिरते हुए पक्षी सदृश
२३	शतभिषा	१११ तारा	सैन्य (सेना)
२४	पूर्वाभाद्रपद	२ तारा	हाथी के पूर्व शरीर सदृश
२५	उत्तराभाद्रपद	२ तारा	हाथी के उत्तर शरीर सदृश
२६	रेवती	३२ तारा	नाव सदृश
२७	अश्विनी	५ तारा	पत्थर सदृश
२८	भरणी	३ तारा	चूल्हे सदृश

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देवी इन्द्रप्रभा सूर्यप्रभाघनकराह्वया।
तथार्चिमालिनी भानोश्चतस्त्रो बल्लभा इमाः ॥१२०॥
आसामष्टमहादेवीनां प्रत्येकं पृथक् पृथक्।
देव्यो द्वि द्वि सहस्राणि स्युः परिवारसंज्ञिकाः ॥१२१॥
स्वकीयानां स्वकीयानां देवानामायुरस्ति यत्।
तस्यार्धं स्वस्वदेवीनां ज्योतिष्काणां च जीवितम् ॥१२२॥

अर्थ—चन्द्रप्रभा, सुसीमा, प्रभावती और अर्चिमालनी ये चारों मन को प्रिय लगने वालीं चन्द्रमा की महादेवियाँ हैं। इन्द्रप्रभा, सूर्यप्रभा, घनकरा (प्रभंकरा) और अर्चिमालनी ये चार महादेवियाँ सूर्य की हैं। इन आठों महादेवियों में से प्रत्येक महादेवी की पृथक्-पृथक् दो-दो हजार परिवार देवियाँ हैं। पाँचों ज्योतिष देवों के समुदाय में अपने-अपने देवों की आयु का जो प्रमाण है, उनकी देवियों की आयु का प्रमाण उनसे (अपने-अपने देवों से) आधा-आधा है ॥११९-१२२॥

अब ज्योतिष्क देवों के अवधि क्षेत्र और भवनत्रिक देवों के गमन क्षेत्र का कथन करते हैं—

संख्यातीतसहस्राणि योजनानां परोऽवधिः।
ज्योतिष्काणां जघन्यश्च तिर्यक् संख्यातयोजनः ॥१२३॥
कियन्मात्रोऽवधिस्तेषामधोलोकेऽपि जायते।
भावना व्यन्तरा ज्योतिष्का गच्छन्ति स्वयं क्वचित् ॥१२४॥
तृतीयक्षितिपर्यन्तमधोलोके स्वकार्यतः।
सौधर्मैशानकल्पान्तमूर्ध्वलोके निजेच्छया ॥१२५॥
तेऽपि सर्वे सुरैर्नीता भावनाद्यास्त्रयोऽमराः।
षोडशस्वर्गपर्यन्तं प्रीत्या यान्ति सुखाप्तये ॥१२६॥

अर्थ—ज्योतिष्क देवों का उत्कृष्ट अवधि क्षेत्र असंख्यात योजन प्रमाण है। तिर्यग् रूप से जघन्य क्षेत्र संख्यात योजन प्रमाण है और इन देवों का अधोलोक में भी कुछ मात्रा तक अवधि क्षेत्र है। भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देव अपने कार्य वशात् अधोलोक में तीसरी पृथ्वी पर्यन्त जाते हैं। ऊर्ध्वलोक में स्व इच्छा से तो सौधर्म-ऐशान स्वर्ग तक ही जाते हैं किन्तु सुख प्राप्ति के लिए मित्र आदि अन्य महर्द्धिक देवों द्वारा प्रीति पूर्वक सोलह स्वर्ग पर्यन्त ले जाये जाते हैं ॥१२३-१२६॥

अब ज्योतिष्क देवों के शरीर का उत्सेध, निकृष्ट देवों की देवांगनाओं का प्रमाण और भवनत्रय में जन्म लेने वाले जीवों के आचरण का विवेचन करते हैं—

सप्तचापतनूत्सेधः सर्वज्योतिःसुधाभुजाम्।
सर्वनिकृष्टदेवानां स्युर्द्वात्रिंशत्प्रमाङ्गनाः ॥१२७॥
उन्मार्गचारिणो येऽत्र विराधितसुदर्शनाः।
अकामनिर्जरायुक्ता बाला बालतपोऽन्विताः ॥१२८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

शिथिलाधर्मचारित्रे मिथ्यासंयमधारिणः।
पञ्चाग्निसाधने निष्ठाः सनिदानाश्च तापसाः ॥१२९॥
अज्ञानक्लेशिनः शैवलिङ्गिनो ये नरादयः।
भावनादि त्रयाणां ते यान्ति नीचगति त्रयम् ॥१३०॥
ये नीचदेव संशक्ता नीचा नीचगुरुं श्रिताः।
नीचधर्मरता नीचपाखण्डिभाक्तिकाः शठाः ॥१३१॥
नीचसंयमदुर्वेषा नीचशास्त्रतपोन्विताः।
तेऽहो सर्वत्र नीचाः स्युर्देवत्वेऽन्यत्र वा सदा ॥१३२॥
मत्वेति जैनसन्मार्गं स्वर्मोक्षदं सुखार्थिभिः।
विमुच्य श्रेयसे जातु न ग्राह्यं दुःपथं खलम् ॥१३३॥

अर्थ—सर्व ज्योतिष्क देवों (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु, नक्षत्र और तारागणों) के शरीर की ऊँचाई सात धनुष प्रमाण है। सर्व निकृष्ट अर्थात् पुण्य हीन देवों में से प्रत्येक के ३२-३२ ही देवांगनाएँ होतीं हैं। जो जीव यहाँ उन्मार्ग का आचरण करते हैं, सम्यग्दर्शन के विराधक हैं, अकाम निर्जरा से युक्त हैं, अज्ञानी हैं, बाल अर्थात् अज्ञान तप को तपने वाले हैं, धर्माचरण में शिथिल हैं, खोटे संयम के धारी हैं, पञ्चाग्नि आदि तपों में श्रद्धा रखते हैं, निदान सहित तप तपते हैं, अज्ञान तप से शरीर को कष्ट देते हैं तथा शिवलिंग आदि के उपासक हैं, वे मनुष्य आदि मरकर भवनत्रय में जन्म लेते हैं एवं अन्य भी तीन नीच गतियों में जन्म लेते हैं। जो कुदेवों में संशक्त हैं, खोटे गुरुओं का आश्रय ग्रहण करते हैं, खोटे धर्मों में संलग्न रहते हैं, नीच और पाखण्डी गुरुओं के भक्त हैं, मूर्ख हैं, खोटे संयम को धारण कर नाना प्रकार के खोटे वेष बनाते हैं, खोटे शास्त्र और खोटे तप से युक्त हैं, खेद है कि वे सब नीच देवों (भवनत्रिक आदि) में उत्पन्न होते हैं तथा अन्यत्र भी नीच गतियों में ही निरन्तर उत्पन्न होते हैं। ऐसा मान कर सुखार्थी जीवों को स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाले जैनधर्म स्वरूप समीचीन मार्ग को छोड़कर दुःख देने वाले खोटे मार्ग का आश्रय कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए ॥१२७-१३३॥

करणानुयोग शास्त्रों के अध्ययन की प्रेरणा—

एतत्पुण्यनिधानकं जिनमुखोद्भूतं सुधर्माकरम्,
धर्मध्यान निबन्धनं ह्यघहरं लोकानुयोगश्रुतम्।
ज्योतिष्कामरभूतिवर्णनकरं भव्यात्मनां बोधकम्
सारं ज्ञानशिवार्थिनोप्यनुदिनं सिद्ध्यै पठन्त्वादरात् ॥१३४॥

अर्थ—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के मुखारविन्द से उद्भूत, पुण्य का निधान, समीचीन धर्म का आकर, धर्मध्यान का निबन्धक, पाप का नाशक, भव्य जीवों को बोध देने वाले, सारभूत और ज्योतिष्क देवों की विभूति आदि के वर्णन से युक्त इस करणानुयोग शास्त्र को केवलज्ञान एवं मोक्ष के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थी भव्यजन आत्मसिद्धि के लिये प्रतिदिन आदरपूर्वक पढ़ें। अर्थात् प्रतिदिन इसका स्वाध्याय करना चाहिए ॥१३४॥

अधिकारान्त मंगलाचरण

ज्योतिर्भावन भौमनाकभवनेष्वेव त्रिलोके च ये,
श्रीमच्चैत्यगृहा नृदेवमहिता नित्येतराः पुण्यदाः।
श्रीतीर्थेश्वर मूर्तयोऽति सुभगा याः श्री जिनाद्याश्च ये,
तान् सर्वान् परमेष्ठिनः सुविधिना वन्देऽर्चयेऽर्चाश्च ताः ॥१३५॥

इति श्रीसिद्धान्तसारदीपकमहाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते ज्योतिर्लोकवर्णनो नाम चतुर्दशोऽधिकारः।

अर्थ—भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी और कल्पवासी देवों के भवनों में तथा तीन लोक में मनुष्य और देवों द्वारा पूजित, पुण्य प्रदान करने वाले अकृत्रिम और कृत्रिम जिन चैत्यालयों की, अत्यन्त सुभग तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की तथा साक्षात् जिनेन्द्र देव आदि पंच परमेष्ठियों की और उन सब प्रतिमाओं की मैं विधिपूर्वक पूजन करता हूँ, वन्दना करता हूँ और अर्चना करता हूँ ॥१३५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में ज्योतिर्लोक का प्ररूपण करने वाला चतुर्दश अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑❑❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्चदश अधिकार

ऊर्ध्वलोक वर्णन

मंगलाचरण

त्रिसहस्रोनपञ्चाशीति लक्षश्रीजिनालयान्।
त्रयोविंशतिसंयुक्तान् वन्दे वन्द्यान्नरामरैः ॥१॥

अर्थ—मनुष्यों और देवों के द्वारा वन्दनीक चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस जिनालयों को मैं (सकलकीर्त्याचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

प्रतिज्ञा

अथोर्ध्वलोकभागस्थान् स्वर्गग्रैवेयकादिकान्।
इन्द्रादिनाकिनां भूतिस्थितियुक्त्यादिकान् ब्रुवे ॥२॥

अर्थ—अब ऊर्ध्वलोक में स्थित सौधर्मादि स्वर्ग और ग्रैवेयक आदि की स्थिति आदि को तथा इन्द्रादिक देवों की विभूति एवं स्थिति आदि को कहता हूँ ॥२॥

अब सोलह स्वर्गों के नाम और उनका अवस्थान कहते हैं—

सौधर्मैशानकल्पौ द्वौ दक्षिणोत्तरयोः स्थितौ।
सनत्कुमारमाहेन्द्रौ ब्रह्मब्रह्मोत्तराह्वयौ ॥३॥
स्वर्गौ लान्तवकापिष्टौ दक्षिणोत्तरदिक्श्रितौ।
द्वौ च शुक्रमहाशुक्रौ युग्मरूपव्यवस्थितौ ॥४॥
द्वौ शतारसहस्त्रारावानतप्राणताभिधौ।
आरणाच्युतनामानौ चैते स्वर्गाश्च षोडश ॥५॥

अर्थ—सौधर्म और ऐशान कल्प, क्रमशः दक्षिण और उत्तर में अवस्थित हैं, सनत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर तथा लान्तव और कापिष्ट ये स्वर्ग भी दक्षिण-उत्तर दिशाओं के आश्रित अवस्थित हैं। शुक्र और महाशुक्र ये युग्म रूप से अवस्थित हैं। शतार-सहस्रार, आनत-प्राणत तथा आरण और अच्युत ये भी एक के बाद एक युग्म रूप से अवस्थित हैं, इस प्रकार ये सोलह स्वर्ग ऊर्ध्वलोक में अवस्थित हैं ॥३-५॥

अब इन्द्रों का प्रमाण दर्शाते हैं—

चतुर्णामाद्यनाकानां चत्वारो वासवा पृथक्।
चतुः स्वर्मध्ययुग्मानां चत्वारः स्वर्गनायकाः ॥६॥
चतुस्तदग्रनाकानामिन्द्राश्चत्वार ऊर्जिताः।
इतीन्द्रसंख्यया कल्पाः कथ्यन्ते द्वादशागमे ॥७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—आदि के चार स्वर्गों के पृथक्-पृथक् चार इन्द्र हैं। अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में से प्रत्येक में एक-एक इन्द्र हैं। मध्य के चार युगलों (आठ स्वर्गों) के चार इन्द्र हैं। अर्थात् ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और सहस्रार स्वर्गों में से प्रत्येक में एक-एक इन्द्र है। ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र और शतार स्वर्गों में इन्द्र नहीं हैं। शेष ऊपर के आनत, प्राणत, आरण और अच्युत में से प्रत्येक में एक-एक इन्द्र है। इस प्रकार आगम में बारह इन्द्र और बारह ही कल्प कहे गये हैं ॥६-७॥

अब इन्द्रों के नाम और उनकी दक्षिणेन्द्र संज्ञा आदि का विवेचन करते हैं—

सौधर्मेन्द्र यः शक्रः सनत्कुमारदेवराट्।
ब्रह्मेन्द्रो लान्तवेन्द्रश्चानतेन्द्र आरणाधिपः ॥८॥
षडेते दक्षिणेन्द्राः स्युर्नूनमेकावतारिणः।
पूर्वार्जितमहापुण्यजिनभक्तिभराङ्किताः ॥९॥
ईशानेन्द्रो हि माहेन्द्रः शुक्रेन्द्रः शुक्रनाकभाक्।
शतारेन्द्रस्ततः प्राणतेन्द्रोऽच्युतेन्द्र उत्तमः ॥१०॥
एते षडुत्तरेन्द्राः स्युर्जिनपूजापरायणाः।
सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः सर्वामरनतक्रमाः ॥११॥

अर्थ—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्म, लान्तव, आनत और आरण नाम के ये छह इन्द्र दक्षिणेन्द्र हैं। ये छहों एक भवातारी, पूर्वोपार्जित महापुण्य से युक्त और जिनेन्द्र भगवान् की अपूर्व भक्ति के रस से सहित होते हैं। सर्व देवों से नमस्कृत, सम्यग्दर्शन से शुद्ध और जिनेन्द्र की पूजा में तल्लीन रहने वाले ईशान, माहेन्द्र, शुक्र स्वर्ग का शुक्र, शतार, प्राणत और अच्युत नाम के ये छह इन्द्र उत्तरेन्द्र हैं ॥८-११॥

अब कल्प-कल्पातीत विमानों का और सिद्ध शिला का अवस्थान बतलाते हैं—

उपर्युपरि सन्त्येते स्वर्गाः षोडशसम्मिताः।
दक्षिणोत्तरदिग्भागस्था युग्मरूपिणः शुभाः ॥१२॥
स्वर्गाणामुपरि स्युश्चाद्याधोग्रैवेयकास्त्रयः।
तेषामुपरिसन्त्येव मध्यग्रैवेयकास्त्रयः ॥१३॥
एषामुपरि तिष्ठन्ति चोर्ध्वग्रैवेयकास्त्रयः।
अमीषामुपरि स्याच्च नवानुदिशनामकम् ॥१४॥
तस्य सन्ति चतुर्दिक्षु चत्वारश्च विमानकाः।
विदिक्षु तेऽपितावन्तो मध्ये ह्येकं विमानकम् ॥१५॥
तस्योपरि च पञ्चानुत्तराख्यं पटलं भवेत्।
तच्चतुर्दिक्षु चत्वारि विमानानि भवन्ति वै ॥१६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मध्ये सर्वार्थसिद्ध्याख्यं स्याद्विमानं च्युतोपमम्।
ततो मुक्तिशिलादिव्या गत्वा द्वादशयोजनान् ॥१७॥

अर्थ—दक्षिण और उत्तर दिशाओं में षोडश स्वर्ग युग्म रूप से ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं, अर्थात् एक युगल के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा इत्यादि। सोलह स्वर्गों के ऊपर तीन अधो ग्रैवेयकों की (एक के ऊपर एक) अवस्थिति है। इनके ऊपर तीन मध्यम ग्रैवेयक और उनके ऊपर तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक स्थित हैं। इन ग्रैवेयकों के ऊपर चार दिशाओं में चार, चार विदिशाओं में चार और एक मध्य में इस प्रकार नव अनुदिशों की अवस्थिति है। नव अनुदिशों के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं, जो चार दिशाओं में चार हैं और मध्य में उपमा रहित सर्वार्थसिद्धि नामक विमान अवस्थित है। सर्वार्थसिद्धि विमान से बारह योजन ऊपर जाकर दिव्य रूप वाली सिद्धशिला अवस्थित है ॥१२-१७॥

अब मेरु तल से कल्प और कल्पातीत विमानों के अवस्थान का प्रमाण कहते हैं—

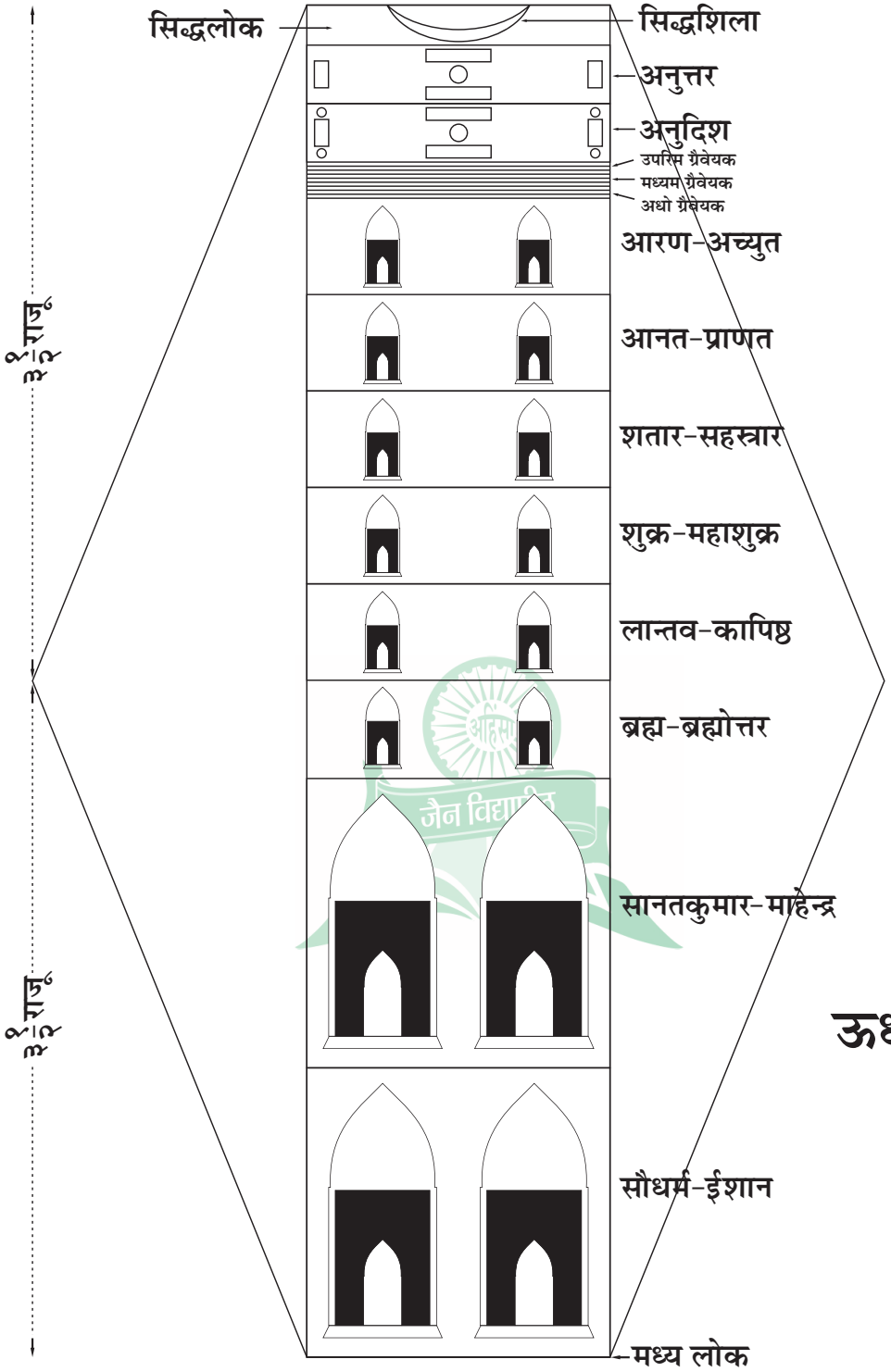
मेरोस्तलाच्च सार्धैका रज्जुपर्यन्तमादिमौ।
स्यातां स्वर्गौ ततोऽन्यौ द्वौ सार्ध रज्ज्वन्तमञ्जसा ॥१८॥
अर्धार्धारज्जुपर्यन्तं शेषषट्स्वर्गयुग्मकाः।
प्रत्येकं स्युः पृथग्भूतास्ततो ग्रैवेयकादयः ॥१९॥
सर्वार्थसिद्धिमोक्षान्ता एक रज्ज्वन्तमाश्रिताः।
इत्यूर्द्ध्वं लोककल्पाद्याः स्युः सप्तरज्जुमध्यगाः ॥२०॥

अर्थ—मेरुतल से डेढ़ राजू में सौधर्मैशान स्वर्ग है, इसके ऊपर डेढ़ राजू में सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्ग हैं, इसके ऊपर-ऊपर प्रत्येक अर्ध-अर्ध राजू की ऊँचाई में क्रम से अन्य छह युगल अवस्थित हैं। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित हैं। इनके ऊपर एक राजू में नौ ग्रैवेयक, नव अनुदिश, पाँच अनुत्तर और सिद्धशिला अवस्थित है। इस प्रकार मेरु तल से ऊर्ध्वलोक के सात राजू क्षेत्र में स्वर्गादिक हैं ॥१८-२०॥ यथा- [ऊर्ध्वलोक का चित्र अगले पृष्ठ में है]

अब पटलों का प्रमाण कहते हैं—

आद्ये स्वर्युगले चैक त्रिंशत्स्युः पटलान्यपि।
द्वितीये तानि सप्तैव चत्वारि तृतीये ततः ॥२१॥
चतुर्थे युगले द्वे स्तः पटले पञ्चमे भवेत्।
पटलैकं युगे षष्ठे ह्येकं सत्पटलं मतम् ॥२२॥
सप्तमे युगले त्रीण्यष्टमे त्रिपटलान्यपि।
त्रीण्येव पटलानि स्युरधोग्रैवेयकत्रये ॥२३॥
सन्ति त्रिपटलान्येव मध्यग्रैवेयकत्रये।
ततस्त्रिपटलानि स्युरूर्द्ध्वग्रैवेयकत्रिके ॥२४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY



नवानुदिशसंज्ञं स्यात्पटलैकं ततः परम्।
पञ्चानुत्तरनामैकं पटलं चेति तान्यपि ॥२५॥
पिण्डीकृतानि सर्वाणि त्रिषष्टि पटलानि वै।
स्युरुपर्युपरिस्थानि कल्पकल्पातिगानि च ॥२६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—सौधर्म नामक प्रथम युगल में ३१ पटल हैं। दूसरे सानत्कुमार युगल में सात, तीसरे ब्रह्म युगल में चार, चौथे लान्तव युगल में दो, पाँचवें शुक्र युगल में एक, छठे शतार युगल में एक, सातवें आनत युगल में तीन, आठवें आरण युगल में तीन, अधो ग्रैवेयक में तीन, मध्यम ग्रैवेयक में तीन, ऊर्ध्व ग्रैवेयक में तीन, नव अनुदिशों में एक और पाँच अनुत्तरों में एक पटल है। इस प्रकार सौधर्म स्वर्ग से ऊपर-ऊपर कल्प और कल्पातीत सर्व स्वर्गों के पटलों की संख्या एकत्रित करने पर (३१+७+४+२+१+१+३+३+३+३+३+१+१=) ६३ होती है। अर्थात् कुल ६३ पटल हैं ॥२१-२६॥

अब सौधर्मादि स्वर्गों के विमानों का प्रमाण कहते हैं—

सौधर्मे स्युर्विमानानि लक्षा द्वात्रिंशदेव च।
ऐशाने सद्विमाना लक्षा अष्टाविंशति प्रमाः ॥२७॥
सनत्कुमारकल्पे द्वादशलक्षविमानकाः।
विमानाः सन्ति माहेन्द्रे चाष्टलक्षप्रमाणकाः ॥२८॥
ब्रह्मकल्पे द्विलक्षेमा षण्णवत्या सहस्रकैः।
ब्रह्मोत्तरे च ते लक्षैकं सहस्रचतुर्युतम् ॥२९॥
लान्तवे सद्विमानानि द्विचत्वारिंशता समम्।
पञ्चविंशति संख्यानि सहस्राणि भवन्ति च ॥३०॥
कापिष्टे स्युर्विमानानि ह्यष्टपञ्चाशता सह।
नवसंख्यशतैर्युक्ताश्चतुर्विंशसहस्रकाः ॥३१॥
शुक्रेविंशतियुक्तानि सहस्राणि तु विंशतिः।
विमानानि महाशुक्रेऽशीत्यानवशतैर्युताः ॥३२॥
एकोनविंशसंख्यानसहस्राः स्युः शतारके।
एकोनविंशसंयुक्तत्रिसहस्रा विमानकाः ॥३३॥
सहस्त्रारे तथैकोनविंशोनत्रिसहस्रकाः।
आनतप्राणताभिख्यकल्पद्वयोर्विमानकाः ॥३४॥
चतुःशतानि चत्वारिंशद् युतान्यारणाच्युते।
विमानाः षष्टि संयुक्त शतद्वयप्रमाणकाः ॥३५॥
ततः सन्ति विमानानि ह्यधोग्रैवेयकत्रिके।
एकादशोत्तरं चैक शतं ततो विमानकाः ॥३६॥
शतैकं सप्तसंयुक्तं मध्यग्रैवेयकत्रिके।
एकानवतिसंख्याना ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिके ॥३७॥
ततो नवविमानानि नवानुदिशसंज्ञके।
पञ्चदिव्यविमानानि पञ्चानुत्तर नामके ॥३८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—उपर्युक्त १२ श्लोकों का समस्त अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है।

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या
१	सौधर्म	३२ लाख (३२०००००)	११	शतार	३०१९ } (६ हजार)
२	ऐशान	२८ लाख (२८०००००)	१२	सहस्रार	२९८१ }
३	सानत्कुमार	१२ लाख (१२०००००)	१३	आनत प्राणत	४४० } (७००)
४	माहेन्द्र	८ लाख (८०००००)	१४	आरण अच्युत	२६० }
५	ब्रह्म	२९६००० } (४ लाख)	१५	३ अधस्तन ग्रैवेयक	१११
६	ब्रह्मोत्तर	१०४०००० }	१६	३ मध्यम ग्रैवेयक	१०७
७	लान्तव	२५०४२ } (५० हजार)	१७	३ उपरिम ग्रैवेयक	९१
८	कापिष्ठ	२४९५८ }	१८	अनुदिश	९
९	शुक्र	२००२० } (४० हजार)	१९	अनुत्तर	५
१०	महाशुक्र	१९९८० }		योगफल	८४९७०२३

अब सोलह स्वर्गों के इन्द्रक विमानों के नाम कहते हैं—

आद्यस्वर्गयुगे चाद्यमुडुवाख्यं विमलाभिधम्।
चन्द्रं वल्गु च वीराख्यमरुणं नन्दनाह्वयम् ॥३९॥
नलिनं काञ्चनं रोहिच्चञ्चाख्यं मरुदाख्यकम्।
ऋद्धिशं ह्यथवैडूर्यं ततो रुचकनामकम् ॥४०॥
रुचिराभिधमङ्काख्यं स्फाटिकं तपनीयकम्।
मेघमभ्रं तु हारिद्रं पद्माभिधानकं ततः ॥४१॥
लोहिताख्यं ततो वज्रं नन्द्यावर्तं प्रभाकरम्।
पिष्टकं च गजाभासं मित्राख्यं प्रभसंज्ञकम् ॥४२॥
इत्युक्तशुभनामान एकत्रिंशत्प्रमेन्द्रकाः।
मध्यस्थाः पटलानां स्युः सौधर्मैशान कल्पयोः॥४३॥
अञ्जनं वनमालाख्यं नागं च गरुडाह्वयम्।
लाङ्गलं बलभद्राख्यं चक्रं सप्तेन्द्रका अमी ॥४४॥
सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पयोः श्रेणिमध्यगाः।
अरिष्टं देवसौमाख्यं ब्रह्मब्रह्मोत्तराख्यकम् ॥४५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ब्रह्मब्रह्मोत्तरे सन्ति चत्वार इन्द्रका इमे।
ब्रह्मादिहृदयाभिख्यं लान्तवं चेन्द्रकाविमौ ॥४६॥
द्वौ स्तो लान्तवकापिष्ठे शुक्राख्यैकोऽस्ति चेन्द्रकः।
शुक्रद्वये शताराख्येन्द्रकः शतारकद्वये ॥४७॥
आनतं प्राणतं पुष्पमिमे स्युरिन्द्रकास्त्रयः।
उपर्युपरिभागेष्वानतप्राणतयोर्द्वयोः ॥४८॥
सातकं चारणाभिख्यमच्युताख्यमिमे त्रयः।
इन्द्रकाः क्रमतः सन्त्यारणाच्युत्तद्विकल्पयोः ॥४९॥

अर्थ—सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल में १. ऋतु, २. विमल, ३. चन्द्र, ४. वल्गु, ५. वीर, ६. अरुण, ७. नन्दन, ८. नलिन, ९. काञ्चन, १०. रोहित, ११. चञ्च, १२. मरुत्, १३. ऋद्धीश, १४. वैडूर्य, १५. रुचक, १६. रुचिर, १७. अंक, १८. स्फटिक, १९. तपनीय, २०. मेघ, २१. अभ्र, २२. हारिद्र, २३. पद्म, २४. लोहित, २५. वज्र, २६. नन्द्यावर्त, २७. प्रभाकर, २८. पृष्ठक, २९. गज, ३०. मित्र और ३१. प्रभ ये शुभ नाम वाले ३१ इन्द्रक विमान पटलों के मध्य में अवस्थित हैं। १. अञ्जन, २. वनमाल, ३. नाग, ४. गरुड़, ५. लांगल, ६. बलभद्र और ७. चक्र ये सात इन्द्रक विमान सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प में स्थित श्रेणीबद्ध विमानों के मध्य में अवस्थित हैं। अरिष्ट, देवसौम, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर नाम के ये चार इन्द्रक ब्रह्म युगल में, ब्रह्महृदय और लान्तव ये दो इन्द्रक लान्तव-कापिष्ट युगल में, शुक्र नामक इन्द्रक शुक्र-महाशुक्र युगल में, शतार नामक इन्द्रक शतार-सहस्रार युगल में आनत, प्राणत और पुष्पक ये तीन इन्द्रक आनत प्राणत स्वर्गों के उपरिम भागों में तथा शातक, आरण और अच्युत ये तीन इन्द्रक आरण-अच्युत इन दो कल्पों में अवस्थित हैं ॥३९-४९॥

सुदर्शनममोघाख्यं सुप्रबुद्धं यशोधरम्।
सुभद्रं सुविशालं तु सुमनस्काभिधानकम् ॥५०॥
सौमनस्काह्वयं प्रीतिङ्करमेते नवेन्द्रकाः।
नवग्रैवेयकेष्वेव सन्त्युपर्युपरि क्रमात् ॥५१॥
प्राच्यामर्चिविमानं दक्षिणदिश्यर्चिमालिनी।
वैरोचनमपाच्यां चोत्तराशायां प्रभासकम् ॥५२॥
आग्नेयदिशि सौमाख्यं नैऋत्यां सौम्यरूपकम्।
वायव्यामङ्कनामैशानकोणे स्फाटिकाभिधम् ॥५३॥
एषां मध्येऽस्ति चादित्यमालिन्याख्य विमानकम्।
विमानानि नवैतानि स्युर्नवानुदिशाभिधे ॥५४॥
विजयं पूर्वदिग्भागे वैजयन्तं च दक्षिणे।
जयन्तं पश्चिमाशायामुत्तरेऽस्त्यपराजितम् ॥५५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अमीषां मध्यभागे स्यात्सर्वार्थसिद्धिनामकम्।
एते पञ्चविमानाः स्युः पञ्चानुत्तरसंज्ञके ॥५६॥

अर्थ—नव ग्रैवेयकों में क्रमशः ऊपर-ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिंकर नाम के ये नव इन्द्रक विमान हैं। नव अनुदिशों की पूर्व दिशा में अर्चि विमान, दक्षिण में अर्चिमालिनी, पश्चिम में वैरोचन, उत्तर में प्रभास, आग्नेय दिशा में सौम, नैऋत्य में सौम्य रूप, वायव्य में अंक और ईशान कोण में स्फटिक नामक विमान हैं, इन आठों विमानों के मध्य में आदित्य मालिनी नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार नव अनुदिशों में नव विमान हैं। पञ्चानुत्तर की पूर्व दिशा में विजय, दक्षिण में वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर दिशा में अपराजित नामक विमान हैं। इन सबके मध्य में सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार पञ्चानुत्तर में पाँच विमान हैं ॥५०-५६॥

अब ऋतु इन्द्रक की अवस्थिति एवं इन्द्रों के स्वामित्व की सीमा का विवेचन करते हैं—

सुदर्शनमहामेरोश्चूलिकोद्ध्वनभस्तले ।
रोममात्रान्तरं मुक्त्वा तिष्ठेदृत्वाख्य इन्द्रकः ॥५७॥
स्वस्वान्त्यपटलेष्वन्त्य स्वस्वेन्द्रकस्य यच्च यत्।
ध्वजाग्रं तत्र तत्र स्थितेन्द्रस्य स्वामिता भवेत् ॥५८॥

अर्थ—सुदर्शन मेरु की चूलिका के ऊपर आकाश में बाल के अग्रभाग प्रमाण अन्तर छोड़कर ऋतु नाम का प्रथम इन्द्रक विमान है। अपने-अपने अन्तिम पटल के अन्तिम इन्द्रक के ध्वजादण्ड पर्यन्त वहाँ स्थित अपने-अपने इन्द्रों का स्वामित्व है। जैसे—सौधर्म इन्द्र का स्वामित्व प्रभा नामक अन्तिम इन्द्रक के ध्वजदण्ड पर्यन्त है। इसी प्रकार आगे भी जानना ॥५७-५८॥

अब इन्द्रक विमानों का प्रमाण कहते हैं—

नरक्षेत्रप्रमाणं स्यादृत्वाख्यं प्रथमेन्द्रकम्।
सर्वार्थसिद्धिनामान्त्यं जम्बूद्वीपसमानकम् ॥५९॥
शेषाणामिन्द्रकाणां स्यादेकोनेन्द्रकसंख्यया।
विभक्तैर्योजनैः शेषैः क्रमह्रासो हि विस्तरः ॥६०॥

अर्थ—प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान का विस्तार मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) के बराबर और सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम इन्द्रक का प्रमाण जम्बूद्वीप के बराबर है। उन दोनों के प्रमाण को परस्पर घटाकर शेष में एक कम इन्द्रक प्रमाण का भाग देने पर हानि-वृद्धि चय का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे—ऋतु नामक प्रथम इन्द्रक का प्रमाण ४५००००० योजन और सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक का प्रमाण १००००० योजन है। इन दोनों को परस्पर में घटा कर एक कम इन्द्रक का भाग देने से $\left(\frac{४५००००० - १०००००}{६३ - १} = \right)$ ७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ योजन हानि चय का प्रमाण है ॥५९-६०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

६३ *इन्द्रक विमानों के विस्तार का प्रमाण निम्न प्रकार है—*

क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	विमानों का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	विमानों का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	विमानों का विस्तार
१	ऋतु	४५००००० यो.	२२	हारिद्र	३००९६७७ $\frac{१३}{३१}$ यो.	४३	ब्रह्महृदय	१५१९३५४ $\frac{२६}{३१}$ यो.
२	चन्द्र	४४२९०३२ $\frac{८}{३१}$ यो.	२३	पद्म	२९३८७०९ $\frac{२१}{३१}$ यो.	४४	लान्तव	१४४८३८७ $\frac{३}{३१}$ यो.
३	विमल	४३५८०६४ $\frac{१६}{३१}$ यो.	२४	लोहित	२८६७७४१ $\frac{२९}{३१}$ यो.	४५	शुक्र	१३७७४१९ $\frac{११}{३१}$ यो.
४	वल्गु	४२८७०९६ $\frac{२४}{३१}$ यो.	२५	वज्र	२७९६७७४ $\frac{६}{३१}$ यो.	४६	शतार	१३०६४५१ $\frac{१९}{३१}$ यो.
५	वीर	४२१६१२९ $\frac{१}{३१}$ यो.	२६	नन्द्या.	२७२५८०६ $\frac{१४}{३१}$ यो.	४७	आनत	१२३५४८३ $\frac{२७}{३१}$ यो.
६	अरुण	४१४५१६१ $\frac{९}{३१}$ यो.	२७	प्रभाकर	२६५४८३८ $\frac{२२}{३१}$ यो.	४८	प्राणत	११६४५१६ $\frac{४}{३१}$ यो.
७	नन्दन	४०७४१९३ $\frac{१७}{३१}$ यो.	२८	पृष्ठक	२५८३८७० $\frac{३०}{३१}$ यो.	४९	पुष्पक	१०९३५४८ $\frac{१२}{३१}$ यो.
८	नलिन	४००३२२५ $\frac{२५}{३१}$ यो.	२९	गज	२५१२९०३ $\frac{७}{३१}$ यो.	५०	शातक	१०२२५८० $\frac{२०}{३१}$ यो.
९	काञ्चन	३९३२२५८ $\frac{२}{३१}$ यो.	३०	मित्र	२४४१९३५ $\frac{१५}{३१}$ यो.	५१	आरण	९५१६१२ $\frac{२८}{३१}$ यो.
१०	रोहित	३८६१२९० $\frac{१०}{३१}$ यो.	३१	प्रभा	२३७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ यो.	५२	अच्युत	८८०६४५ $\frac{५}{३१}$ यो.
११	चञ्च	३७९०३२२ $\frac{१८}{३१}$ यो.	३२	अञ्जन	२३००००० यो.	५३	सुदर्शन	८०९६७७ $\frac{१३}{३१}$ यो.
१२	मरुत्	३७१९३५४ $\frac{२६}{३१}$ यो.	३३	वनमाल	२२२९०३२ $\frac{८}{३१}$ यो.	५४	अमोघ	७३८७०९ $\frac{२१}{३१}$ यो.
१३	ऋद्धीश	३६४८३८७ $\frac{३}{३१}$ यो.	३४	नाग	२१५८०६४ $\frac{१६}{३१}$ यो.	५५	सुप्रबुद्ध	६६७७४१ $\frac{२९}{३१}$ यो.
१४	वैडूर्य	३५७७४१९ $\frac{११}{३१}$ यो.	३५	गरुड़	२०८७०९६ $\frac{२४}{३१}$ यो.	५६	यशोधर	५९६७७४ $\frac{६}{३१}$ यो.
१५	रुचक	३५०६४५१ $\frac{१९}{३१}$ यो.	३६	लाङ्गल	२०१६१२९ $\frac{१}{३१}$ यो.	५७	सुभद्र	५२५८०६ $\frac{१४}{३१}$ यो.
१६	रुचिर	३४३५४८३ $\frac{२७}{३१}$ यो.	३७	बलभद्र	१९४५१६१ $\frac{९}{३१}$ यो.	५८	सुविशाल	४५४८३८ $\frac{२२}{३१}$ यो.
१७	अंक	३३६४५१६ $\frac{४}{३१}$ यो.	३८	चक्र	१८७४१९३ $\frac{१७}{३१}$ यो.	५९	सुमनस्	३८३८७० $\frac{३०}{३१}$ यो.
१८	स्फटिक	३२९३५४८ $\frac{१२}{३१}$ यो.	३९	अरिष्ट	१८०३२२५ $\frac{२५}{३१}$ यो.	६०	सौमनस्	३१२९०३ $\frac{७}{३१}$ यो.
१९	तपनीय	३२२२५८० $\frac{२०}{३१}$ यो.	४०	सुरस	१७३२२५८ $\frac{२}{३१}$ यो.	६१	प्रीतिंकर	२४१९३५ $\frac{१५}{३१}$ यो.
२०	मेघ	३१५१६१२ $\frac{२८}{३१}$ यो.	४१	ब्रह्म	१६६१२९० $\frac{१०}{३१}$ यो.	६२	आदित्य	१७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ यो.
२१	अभ्र	३०८०६४५ $\frac{५}{३१}$ यो.	४२	ब्रह्मोत्तर	१५९०३२२ $\frac{१८}{३१}$ यो.	६३	सर्वार्थसिद्धि	१००००० यो.

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब श्रेणीबद्ध विमानों के अवस्थान का स्वरूप कहते हैं–

आद्येन्द्रकस्य विद्यन्ते चतुर्दिक्षु विमानकाः।
श्रेणीबद्धा द्विषष्टिस्तु महान्तोऽनुक्रमात् पृथक् ॥६१॥
आद्येन्द्रकाच्चतुर्दिक्षु सर्वोर्ध्वपटलेष्वपि।
श्रेणीबद्धाः प्रहीयन्ते चतुश्चतुप्रमाः क्रमात् ॥६२॥
यावच्चानुदिशाभिख्ये पटले दिक्चतुष्टये।
श्रेणीबद्धा हि तिष्ठन्ति प्रान्त्याश्चत्वारइन्द्रकाः ॥६३॥

अर्थ–प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में अनुक्रम से पृथक्-पृथक् बासठ-बासठ श्रेणीबद्ध विमान अवस्थित हैं। इसके ऊपर द्वितीयादि पटलों के इन्द्रकों की चारों दिशाओं में क्रम से प्रथम इन्द्रक के श्रेणीबद्धों के प्रमाण से चार-चार श्रेणीबद्ध तब तक हीन-हीन होते जाते हैं, जब तक अन्तिम पटल की प्राप्ति नहीं हो जाती। इसीलिये अनुदिश (और अनुत्तर) इन्द्रक की चारों दिशाओं में (प्रत्येक दिशा में एक-एक) चार ही श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥६१-६३॥

प्रत्येक स्वर्ग के श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण निम्न प्रकार है–

$\frac{३१-१}{२} \times ३ = ४५; (१८६ - ४५) \times ३१ = ४३७१$ सौधर्म स्वर्ग के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।

$\frac{३१-१}{२} \times १ = १५; (६२ - १५) \times ३१ = १४५७$ ऐशान स्वर्ग के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।

$\frac{७-१}{२} \times ३ = ९; (९३ - ९) \times ७ = ५८८$ सानत्कुमार स्वर्ग के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।

$\frac{७-१}{२} \times १ = ३; (३१ - ३) \times ७ = १९६$ माहेन्द्र ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{४-१}{२} \times ४ = ६; (९६ - ६) \times ४ = ३६०$ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{२-१}{२} \times ४ = २; (८० - २) \times २ = १५६$ लान्तव कापिष्ठ ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२} \times ४ = ०; (७२ - ०) \times १ = ७२$ शुक्र-महाशुक्र ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२} \times ४ = ०; (६८ - ०) \times १ = ६८$ शतार सहस्रार ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{६-१}{२} \times ४ = १०; (६४ - १०) \times ६ = ३२४$ आनतादि ४ ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{३-१}{२} \times ४ = ४; (४० - ४) \times ३ = १०८$ अधो ग्रैवेयक ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{३-१}{२} \times ४ = ४; (२८ - ४) \times ३ = ७२$ मध्य ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{३-१}{२} \times ४ = ४; (१६ - ४) \times ३ = ३६$ उपरिम ,, ,, ,, ,, ,, ,,

$\frac{१-१}{२} \times ४ = ०; (४ - ०) \times १ = ४$ अनुदिशों ,, ,, ,, ,, ,, ,,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब प्रकीर्णक विमानों का स्वरूप और अवस्थान कहते हैं—

श्रेणीबद्धान्तरेषु स्युश्चतुर्विदिक्षु सर्वतः।
इन्द्रकाः श्रेणिसम्बन्धक्रमहीना इतोऽमुतः ॥६४॥
प्रकीर्णक विमानाश्च पुष्पप्रकीर्णका इव।
पञ्चानुत्तरसंज्ञे तथाधोग्रैवेयकत्रये ॥६५॥
प्रकीर्णक विमानानि न सन्त्यन्येषु सन्ति च।
एकोनषष्टिसंख्येषु पटलेषु प्रकीर्णकाः ॥६६॥

अर्थ—अहो! श्रेणीबद्ध के अन्तरालों की चारों विदिशाओं में सब ओर इन्द्रक और श्रेणीबद्ध के सदृश क्रम से रहित पुष्पों के सदृश यत्र-तत्र स्थित विमानों को प्रकीर्णक विमान कहते हैं। पाँच अनुत्तर (के एक पटल) में और अधो ग्रैवेयक (के सुदर्शन, अमोघ और सुप्रबुद्ध इन तीन पटलों में प्रकीर्णक विमान नहीं होते। शेष [६३-(३+१)]=५९ पटलों में प्रकीर्णक विमान होते हैं ॥६४-६६॥

पुनरमीषां इन्द्रकश्रेणीबद्ध प्रकीर्णक विमानानां पृथक्-पृथक् संख्या निगद्यते—

संख्यासंख्यविष्कम्भाश्च सौधर्मेन्द्रका एकत्रिंशत्। श्रेणीबद्धाः एक सप्तत्यग्रत्रिचत्वारिंशच्छतानि। प्रकीर्णकाः एकत्रिंशल्लक्ष पञ्चनवतिसहस्र पञ्चशताष्टानवति प्रमाः स्युः। ऐशानस्वर्गे इन्द्रकाः शून्यं। श्रेणीबद्धाः सप्तपञ्चाशदधिक चतुर्दशशतानि। प्रकीर्णकाः सप्तविंशतिलक्षाष्टानवतिसहस्रपञ्चशत-त्रिचत्वारिंशत् प्रमाणाः सन्ति। सनत्कुमारे इन्द्रकाः सप्त। श्रेणीबद्धाः अष्टाशीत्यग्रपञ्चशतानि। प्रकीर्णकाः एकादशलक्षनवनवति सहस्रचतुःशतपञ्चसंख्याः भवन्ति। माहेन्द्रे इन्द्रकाः शून्यं (नास्ति)। श्रेणीबद्धाः षण्णवत्यग्रशतप्रमाश्च। प्रकीर्णकाः सप्तलक्षनवनवति सहस्राष्टशतचतुः प्रमाणाः सन्ति। ब्रह्मस्वर्गे इन्द्रकाश्चत्वारः श्रेणीबद्धाः सप्तत्यग्रे द्वे शते। प्रकीर्णकाः द्विलक्षपञ्चनवति सहस्रसप्तशत षड्विंशतिसंख्याः स्युः ब्रह्मोत्तरे श्रेणीबद्धाः नवतिरेव। प्रकीर्णकाः एकलक्षत्रिसहस्रनवशतदश प्रमिताः भवेयुः। लान्तवे इन्द्रकौ द्वौ। श्रेणीबद्धाः सप्तदशाग्रं शतं। प्रकीर्णकाः चतुर्विंशति सहस्रनवशत त्रयोविंशति संख्याः स्युः। कापिष्टे श्रेणीबद्धाः एकोनचत्वारिंशत्। प्रकीर्णकाः चतुर्विंशति सहस्रनवशतैकोनविंशति प्रमाः सन्ति। शुक्रे इन्द्रक एकोस्ति। श्रेणीबद्धाः चतुःपञ्चाशत् प्रकीर्णकाः एकोनविंशति-सहस्रनवशतपञ्चषष्टि संख्याः सन्ति। महाशुक्रे श्रेणीबद्धा अष्टादश। प्रकीर्णकाः एकोनविंशति-सहस्रनवशतद्विषष्टि प्रमाणाः स्युः। शतारस्वर्गे इन्द्रकः एकः। श्रेणीबद्धाः एकपञ्चाशत्। प्रकीर्णकाः द्विसहस्रनवशतषट्षष्टिप्रमिताः भवन्ति। सहस्रारे श्रेणीबद्धाः सप्तदश। प्रकीर्णकाः द्विसहस्रनवशत-पञ्चषष्टि-सम्मिताः स्युः। आनतप्राणतयोः इन्द्रकाः त्रयः। श्रेणीबद्धाः अशीत्यधिकशतं। प्रकीर्णकाः सप्तपञ्चादग्रे द्वे शते। आरणाच्युतयोः इन्द्रकास्त्रयः। श्रेणीबद्धाः चतुश्चत्वारिंशद्युतं शतं। प्रकीर्णकाः त्रयोदशाग्रशतं। अधोग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः। श्रेणीबद्धाः अष्टोत्तरं शतं। प्रकीर्णकाः शून्यं। मध्यग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः। श्रेणीबद्धाः द्वासप्ततिः। प्रकीर्णकाः द्वात्रिंशत्। ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु इन्द्रकास्त्रयः। श्रेणीबद्धाः

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षट्त्रिंशत्। प्रकीर्णकाः द्विपञ्चाशत्। नवानुदिशे एकेन्द्रकः। श्रेणीबद्धाश्चत्वारः। प्रकीर्णकाश्चत्वारः। पञ्चानुत्तरेन्द्रक एकः। श्रेणीबद्धाश्चत्वारः।

अर्थ—प्रत्येक स्वर्ग के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं। **उपर्युक्त संस्कृत गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है—**

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	इन्द्रक सं.	श्रेणीबद्धों की सं.	प्रकीर्णकों की सं.
१	सौधर्म	३२००००० –	३१ +	४३७१ =	३१९५५९८
२	ऐशान	२८००००० –	० +	१४५७ =	२७९८५४३
३	सानत्कुमार	१२००००० –	७ +	५८८ =	११९९४०५
४	माहेन्द्र	८००००० –	० +	१९६ =	७९८०४
५	ब्रह्म	२९६००० –	४ +	२७० =	२९५७२६
६	ब्रह्मोत्तर	१०४००० –	० +	९० =	१०३९१०
७	लान्तव	२५०४२ –	२ +	११७ =	२४९२३
८	कापिष्ठ	२४९५८ –	० +	३९ =	२४९१९
९	शुक्र	२००२० –	१ +	५४ =	१९९६५
१०	महाशुक्र	१९९८० –	० +	१८ =	१९९६२
११	शतार	३०१९ –	१ +	५१ =	२९६६
१२	सहस्रार	२९८१ –	० +	१७ =	२९६५
१३	आनत प्राणत	४४० –	३ +	१८० =	२५७
१४	आरण अच्युत	२६० –	३ +	१४४ =	११३
१५	अधोग्रैवेयक	१११ –	३ +	१०८ =	०
१६	मध्यम ग्रैवेयक	१०७ –	३ +	७२ =	३२
१७	उपरिम ग्रैवेयक	९१ –	३ +	३६ =	५२
१८	अनुदिश	९ –	१ +	४ =	४
१९	अनुत्तर	५ –	१ +	४ =	०

अब इन्द्रक श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों के प्रमाण का कथन करते हैं—

संख्ययोजनविस्तारा इन्द्रकाः सकला मताः।
श्रेणीबद्धा असंख्यातकोटीयोजन विस्तराः ॥६७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

केचित्प्रकीर्णकासंख्य कोटीयोजन विस्तृताः।
केचिदसंख्यकोटीनां योजनै र्विस्तरान्विताः ॥६८॥
अच्युतान्तस्थ सर्वेषां विमानानां हि पञ्चमः।
भागः संख्येय कोटिप्रमाणयोजनविस्तृतः ॥६९॥
ततः शेषा हि चत्वारो भागाः सर्वेषु सन्ति च।
विमानानामसंख्यातकोटीयोजनविस्तराः ॥७०॥
संख्यातयोजनव्यासा अधोग्रैवेयक त्रये।
सन्तीन्द्रक विमानास्त्रयः श्रेणीमध्यभागगाः ॥७१॥
अष्टादशविमानाः स्युर्मध्यग्रैवेयक त्रिके।
संख्ययोजनविष्कम्भाः प्रकीर्णकेन्द्रकोभयोः ॥७२॥
संख्येययोजनव्यासाः ऊर्ध्वग्रैवेयक त्रये।
स्युः सप्तदशसंख्याना विमानारत्नशालिनः ॥७३॥
नवानुदिशसंज्ञे च पञ्चानुत्तरनामनि।
संख्ययोजनविस्तार एकैक इन्द्रकः पृथक् ॥७४॥
एतेभ्यो ये परे सन्ति श्रेणीबद्ध प्रकीर्णकाः।
ते सर्वे स्युरसंख्यातकोटीयोजन विस्तृताः ॥७५॥

अर्थ—समस्त इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले और श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन कोटि विस्तार वाले हैं। प्रकीर्णक विमानों में से कुछ प्रकीर्णक संख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले और कुछ प्रकीर्णक असंख्यात कोटि योजन विस्तार वाले हैं। सौधर्म स्वर्ग से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त के कल्पों में अपनी-अपनी विमान राशि के पाँचवें भाग प्रमाण विमान संख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले हैं, इनसे अवशेष विमान असंख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले हैं। अथवा अपनी-अपनी राशि के $\frac{४}{५}$ वें भाग प्रमाण विमान असंख्यात करोड़ योजन विस्तार वाले हैं। जैसे-सौधर्म कल्प की कुल विमान राशि ३२००००० - ६४०००० संख्यात योजन व्यास वाले=२५६०००० असंख्यात योजन व्यास वाले हैं। अथवा $\frac{३२०००००\times ४}{५}$ =२५६०००० विमान असंख्यात योजन व्यास वाले हैं। तीनों अधो-ग्रैवेयकों में श्रेणीबद्ध विमानों के मध्य अवस्थित रहने वाले तीन इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। तीनों मध्यम ग्रैवेयकों में इन्द्रक और प्रकीर्णक दोनों मिलाकर १८ विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। तीनों ऊर्ध्व ग्रैवेयकों में रत्नमयी १७ विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। नव अनुदिशों और पञ्चानुत्तरों में जो एक-एक इन्द्रक हैं, वे ही संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। संख्यात योजन व्यास वाले प्रकीर्णकों से रहित अन्य प्रकीर्णक और सर्व श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात कोटि योजन विस्तार वाले हैं ॥६७-७५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब इसी अर्थ को विशेष रूप से पृथक्-पृथक् दर्शाते हैं—

सौधर्मे विमाना षड्लक्षचत्वारिंशत् सहस्राः संख्येय योजनविस्ताराः। पञ्चविंशतिलक्षषष्टिसहस्राः असंख्येय कोटीयोजनव्यासाश्च। ईशानकल्पे विमानाः पञ्चलक्षषष्टिसहस्राः संख्यात योजनविष्कम्भाः। द्वाविंशतिलक्षचत्वारिंशत्सहस्राः असंख्यात कोटियोजनविष्कम्भाः। सनत्कुमारे विमानाः द्विलक्ष-चत्वारिंशत्सहस्राः संख्यात योजन विस्तृताः। नवलक्षषष्टिसहस्राः असंख्यातयोजनकोटिविस्तृताश्च। माहेन्द्रे विमानाः एकलक्षषष्टिसहस्राः संख्यातयोजनविस्ताराः। षड्लक्षचत्वारिंशत्सहस्राः असंख्यातकोटि-योजनविस्ताराः। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्विमानाः अशीतिसहस्राः संख्ययोजनव्यासाः। त्रिलक्षविंशतिसहस्राः असंख्यकोटीयोजनव्यासाः। लान्तवकापिष्टयोर्दशसहस्रविमानाः संख्यातयोजनविष्कम्भाः। चत्वारिंशत्सहस्रविमानाः असंख्यातकोटियोजनविष्कम्भाः। शुक्रमहाशुक्रयोः अष्टसहस्रविमानाः संख्येय-योजनविस्ताराः। द्वात्रिंशत्सहस्रविमानाः असंख्येयकोटीयोजनविस्ताराः। शतारसहस्रारयोः द्वादशशत-विमानाः संख्ययोजनव्यासाः। अष्टचत्वारिंशच्छतविमानाः असंख्ययोजनकोटिव्यासाः। आनतप्राणतयोः अष्टाशीतिविमानाः संख्यातयोजनविष्कम्भाः। त्रिशतद्विपञ्चाशद्विमानाः असंख्यातकोटीयोजनविष्कम्भाः। आरणाच्युतयोः द्विपञ्चाशद्विमानाः संख्यातयोजनव्यासाः। अष्टाग्रद्विशतविमानाः असंख्यकोटी-योजनव्यासाः। अधोग्रैवेयकत्रिकेविमानास्त्रयः संख्येययोजनविस्ताराः। अष्टोत्तरशतं असंख्येययोजन-कोटिविस्ताराः। मध्यग्रैवेयकत्रये अष्टादशविमानाः संख्यातयोजनविस्ताराः नवाशीतिविमानाः असंख्यात-योजनकोटिविस्ताराः। ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकेसप्तदशविमानाः संख्ययोजनविष्कम्भाः। चतुःसप्ततिविमानाः असंख्यकोटीयोजनविष्कम्भाः। नवानुदिशपटले विमानैकः संख्ययोजनविस्तारः। अष्टौविमानाः असंख्ययोजनकोटीविस्ताराः। पञ्चानुत्तरे एको विमानः संख्यातयोजनविष्कम्भः। चत्वारो विमानाः असंख्यातकोटियोजनविष्कम्भाः।

उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

स्थान संख्या	क्रमांक	स्वर्ग पटल	इन्द्रक + संख्यात. वाले प्रकीर्णक = संख्यात कोटि योजन वाले विमानों का कुल प्रमाण	श्रेणीबद्ध + असंख्यात. वाले प्रकीर्णक = असंख्यात कोटि योजन वाले विमानों का कुल प्रमाण
१	१	सौधर्म	३१ + ६३९९६९ = ६४0000	४३७१ + २५५५६२९ = २५६0000
	२	ऐशान	५६0000 प्रकीर्णक	(१४५७ + २२३८५४३) = २२४0000
२	३	सानत्कुमार	७ + २३९९९३ = २४0000	(५८८ + ९५९४१२) = ९६0000
	४	माहेन्द्र	१६0000 प्रकीर्णक	(१९६ + ६३९८0४) = ६४0000
३	५	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	४ + ७९९९६ = ८0000	(३६0 + ३१९६४0) = ३२0000
४	६	लान्तव-कापिष्ठ	२ + ९९९८ = १0000	(१५६ + ३९८४४) = ४0000
५	७	शुक्र-महाशुक्र	१ + ७९९९ = ८000	(७२ + ३१९२८) = ३२000
६	८	शतार-सहस्रार	१ + ११९९ = १२00	(६८ + ४७३२) = ४८00
७	९	आनत-प्राणत	३ + ८५ = ८८	(१८0 + १७२) = ३५२
	१0	आरण-अच्युत	३ + ४९ = ५२	(१४४ + ६४) = २0८
८	११	३ अधोग्रैवेयक	३ + 0 = ३	(१0८ + 0) = १0८
९	१२	३ मध्यम ग्रैवेयक	३ + १५ = १८	(७२ + १७) = ८९
१0	१३	३ उपरिम ग्रैवेयक	३ + १४ = १७	(३६ + ३८) = ७४
११	१४	नव अनुदिश	१ + 0 = १	(४ + ४) = ८
	१५	पंच अनुत्तर	१ + 0 = १	(४ + 0) = ४

अब विमानों के आधार-स्थान का निरूपण करते हैं–

सौधर्मैशानयो: षष्टिलक्षसंख्याविमानका:।
जलाधारेण तिष्ठन्ति शाश्वता नभसि स्वयम् ॥७६॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्विमाना दिवौकसाम्।
सन्ति-विंशतिलक्षा: खे वाताधारेण केवलम् ॥७७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ब्रह्मादिकसहस्त्रारान्ताष्टानां स्युर्विमानकाः।
षण्णवतिसहस्त्राग्र चतुर्लक्षप्रमाणकाः ॥७८॥
जलवातद्वयाधारेणैव व्योम्नि मनोहराः।
शेषानतादिकल्पानां चतुर्णां च विमानकाः ॥७९॥
ग्रैवेयकादिपञ्चानुत्तरान्तानां भवन्ति खे।
निराधारास्त्रयो विंशाग्रसहस्त्रप्रमाः स्वयम् ॥८०॥

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प के (३२ लाख + २८ लाख)=६० लाख विमान आकाश में स्वयमेव जल के आधार अवस्थित हैं। सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गस्थ देवों के (१२ लाख + ८ लाख)=२० लाख विमान आकाश में मात्र वायु के आधार अवस्थित हैं। ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्त्रार स्वर्गपर्यन्त अर्थात् आठ स्वर्गों के अति मनोज्ञ (४००००+५००००+४००००+६०००)=४९६००० विमान आकाश में जल-वायु (उभयाधार) के आधार अवस्थित हैं। शेष आनतादि चार कल्पों के, नव ग्रैवेयकों के, नव अनुदिशों के और पाँच अनुत्तर विमानों के (७०० + १११ + १०७ + ९१ + ९ + ५)=१०२३ विमान निराधार हैं। अर्थात् शुद्ध आकाश के आधार ही अवस्थित हैं ॥७६-८०॥

अब स्वर्गस्थ विमानों के वर्ण का विवेचन करते हैं—

कृष्णनीलास्तथा रक्ताः पीताः शुक्ला इति द्वयोः।
सौधर्मैशानयोः पञ्चवर्णा विमानतद्गृहाः ॥८१॥
नीला रक्तास्तथा पीताः शुक्ला इमे विमानकाः।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोश्चतुर्वर्णभूषिताः ॥८२॥
रक्ता पीताः सिता एते त्रिवर्णाश्च विमानकाः।
ब्रह्मादिकचतुर्णांस्युर्दिव्याः प्रासादपङ्क्तयः ॥८३॥
शुक्रादीनां चतुर्णां स्युः पीताः शुक्ला विमानकाः।
शेषानतादि कल्पेषु सर्वग्रैवेयकादिषु ॥८४॥
केवलं शुक्ल वर्णा विमानप्रासादपङ्क्तयः।
स्फुरद् रत्नांशु संघातैरुद्योतितदिशाम्बराः ॥८५॥

अर्थ—सौधर्मैशान इन दो स्वर्गों के विमान एवं उनमें स्थित गृह काले, नीले, लाल, पीले और श्वेत अर्थात् पञ्च वर्ण वाले हैं। सनत्कुमार माहेन्द्र कल्प के विमान कृष्ण के बिना चार वर्ण के अर्थात् नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण के हैं। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लांतव और कापिष्ट स्वर्ग के विमान एवं दिव्य प्रासाद पंक्तियाँ लाल, पीले और श्वेत इस प्रकार तीन वर्ण वाले हैं। शुक्र-महाशुक्र, शतार और सहस्त्रार इन चार स्वर्गों के विमान पीत और शुक्ल वर्ण के हैं। इसके आगे शेष आनत आदि कल्पों में, सर्व ग्रैवेयकों में, नव अनुदिशों में और पाँच अनुत्तरों में देदीप्यमान रत्नों की किरणों के समूह से नभमण्डलस्थ दिशाओं को प्रकाशित करने वाली विमान एवं प्रासाद पंक्तियाँ मात्र शुक्ल वर्ण की

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

हैं ॥८१-८५॥

अब प्रथम इन्द्रक के एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का अवस्थान कहते हैं–

सर्व - श्रेणिविमानार्धं स्वयम्भूरमणोपरि।
द्वीपाब्धीनां ततोऽन्येषामर्धार्धमुपरिस्थितम् ॥८६॥

अर्थ–सर्व श्रेणीबद्ध (ऋतु इन्द्रक की एक दिशा गत ६२ श्रेणीबद्ध) विमानों का अर्ध भाग (३१) स्वयम्भूरमण समुद्र के ऊपर अवस्थित है तथा शेष अर्ध (३१) भाग का अर्ध-अर्ध भाग स्वयम्भूरमण समुद्र से अर्वाचीन द्वीप समुद्रों के ऊपर अवस्थित है ॥८६॥

अस्यविस्तारमाह–

एकत्रिंशछ्रेणीबद्धविमानानि स्वयम्भूरमणाम्बुधेरुपरि तिष्ठन्ति। षोडशविमानानि स्वयम्भूद्वीपस्योपरि सन्ति। अष्टौविमानास्ततोऽभ्यन्तरस्थवारिधेरुपरिभवन्ति। चत्वारो विमानास्तदन्तः स्थित द्वीपस्योपरि स्युः। द्वे विमाने तदभ्यन्तरभागस्थाम्बुधेरुपरि तिष्ठतः। विमानैकमसंख्यद्वीपवार्धीनामुपरि तिष्ठति। ऋजुविमानं नरक्षेत्रस्योपरि तिष्ठेत्।

अर्थ–ऋतु इन्द्रक विमान की एक दिशा में ६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं, इनके आधे (३१) श्रेणीबद्ध विमान स्वयम्भूरमण समुद्र के उपरिम भाग में अवस्थित हैं। १६ श्रेणीबद्ध विमान स्वयम्भूरमण द्वीप के ऊपर स्थित हैं। ८ श्रेणीबद्ध स्वयम्भूरमण द्वीप के अभ्यन्तर भाग में स्थित अहीन्द्रवर समुद्र के ऊपर अवस्थित हैं। ४ श्रेणीबद्ध उस समुद्र के अभ्यन्तर भाग में स्थित अहीन्द्रवर द्वीप के ऊपर हैं। दो श्रेणीबद्ध अहीन्द्रवर द्वीप के अभ्यन्तर भाग में स्थित देववर समुद्र के ऊपर हैं और अवशेष एक श्रेणीबद्ध विमान [देववर द्वीप से लेकर बाह्य पुष्करार्ध द्वीप पर्यन्त] असंख्यात द्वीप-समुद्रों के ऊपर अवस्थित है तथा प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान मनुष्य क्षेत्र अर्थात् जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकीखण्ड, कालोदधि समुद्र और मानुषोत्तर के पूर्व अर्ध पुष्करवर द्वीप के ऊपर अवस्थित है। यथा–

स्वयं. समुद्र के ऊपर	स्वयं. द्वीप के ऊपर	अहीन्द्रवर समुद्र के ऊपर	अहीन्द्रवर द्वीप के ऊपर	देववर समुद्र के ऊपर	असंख्यात द्वीप + समुद्र	नर क्षेत्र-अढ़ाई द्वीप के ऊपर
३१ श्रेणीबद्ध	१६ श्रेणीबद्ध	८ श्रेणीबद्ध	४ श्रेणीबद्ध	२ श्रेणीबद्ध	१ श्रेणीबद्ध	ऋतु इन्द्रक

अब दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानों का विभाग दर्शाते हैं–

स्वामी च दक्षिणाशायाः पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः।
श्रेणीबद्ध विमानेषु ह्याग्निनैऋत्यकोणयोः ॥८७॥
प्रकीर्णकविमानेषु सौधर्मेन्द्रो महान् भवेत्।
सर्वेषु पटलेष्वेवं सौधर्मैशानकल्पयोः ॥८८॥
पतिरस्त्युत्तरश्रेण्या वायव्यैशानयोर्दिशोः।
श्रेणीबद्धप्रकीर्णेषु चैशानेन्द्रोऽमरावृतः ॥८९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इत्येवं स्याद्विमानानां स्वामित्वं च पृथक्-पृथक्।
सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पनायकयोर्द्वयोः ॥९०॥
ब्रह्मेन्द्राद्याश्चत्वारश्चतुर्युग्मेषु नायकाः।
चतुःश्रेणिविदिक् सर्वविमानानां भवन्ति च ॥९१॥
आनतेन्द्रादयः शेषाश्चतुः कल्पेषु नायकाः।
त्र्येकश्रेणिविदिग् द्वि द्वि विमानानां च पूर्ववत्॥९२॥

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प के सर्व पटलों सर्व इन्द्रक (३१), पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा, आग्नेय एवं वायव्य विदिशा सम्बन्धी सर्व (४३७१) श्रेणीबद्ध विमानों एवं सर्व प्रकीर्णक विमानों में सौधर्मेन्द्र का ही स्वामित्व है अर्थात् इनमें सौधर्म इन्द्र की आज्ञा का प्रवर्तन होता है। उत्तर दिशा सम्बन्धी और वायव्य एवं ईशान कोण सम्बन्धी श्रेणीबद्धों एवं प्रकीर्णक विमानों में ईशान इन्द्र का स्वामित्व है। इसी प्रकार सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पस्थ विमानों में सनत्कुमार-माहेन्द्र इन्द्रों का पृथक्-पृथक् स्वामित्व है। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ट, शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार इन चार युगल सम्बन्धी इन्द्रक, चारों दिशा विदिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धों और प्रकीर्णक विमानों के स्वामी ब्रह्म, लान्तव, शुक्र और शतार नाम के चार इन्द्र हैं। आनत आदि दो कल्पों में पूर्व, दक्षिण और पश्चिम इन तीन दिशाओं के आग्नेय और वायव्य इन दो विदिशाओं के श्रेणीबद्धों एवं प्रकीर्णक विमानों का स्वामी प्राणत इन्द्र है तथा उत्तर दिशागत, वायव्य ईशान कोण गत श्रेणीबद्धों एवं सर्व प्रकीर्णक विमानों का स्वामी आनत नाम का इन्द्र है। अर्थात् स्वामित्व की जो व्यवस्था प्रथम युगल में है, उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिए ॥८७-९२॥

अब इन्द्र स्थित श्रेणीबद्ध विमानों का कथन करते हैं—

वसतश्चादिकल्पेशावन्तिमे पटले निजे।
अष्टादशे विमाने हि दक्षिणोत्तरयोर्दिशोः ॥९३॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रौ तिष्ठतः पटलेऽन्तिमे।
विमाने षोडशे श्रेण्योर्दक्षिणोत्तर भागयोः॥९४॥
ब्रह्मेन्द्रो दक्षिणाशायां चरमे पटले वसेत्।
मुदा चतुर्दशे दिव्ये श्रेणीबद्ध विमानके ॥९५॥
तिष्ठेद्दक्षिणदिग्भागे द्वितीये पटलेऽनिशम्।
लान्तवेन्द्रो विमाने द्वादशमे स्त्रीसुरावृतः ॥९६॥
शुक्रेन्द्रो दशमे रम्ये विमाने वसति स्वयम्।
दक्षिणश्रेणिभागस्थ पटलस्यामरैः समम् ॥९७॥
शतारेन्द्रो वसेत्सार्धं देव्याद्यैः पटले निजे।
दक्षिणश्रेणि सम्बन्ध विमाने प्रवरेऽष्टमे ॥९८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आनतेन्द्रादयः शेषाश्चत्वारः पटलेन्तिमे।
दक्षिणोत्तरदिक् श्रेण्योः सन्ति षष्ठे विमानके ॥९९॥
अच्युतस्वर्गपर्यन्तमिन्द्राः सन्ति पृथक्-पृथक्।
अहमिन्द्रस्ततोऽप्यूर्ध्वे सर्वेग्रैवेयकादिषु ॥१००॥

अर्थ—प्रथम युगल के प्रभ नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशा में स्थित १८ वें श्रेणीबद्ध विमान में सौधर्म इन्द्र रहता है और इसी पटल की उत्तर दिशागत १८ वें श्रेणीबद्ध विमान में ईशान इन्द्र निवास करता है। द्वितीय युगल के चक्र नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशागत १६ वें श्रेणीबद्ध में सनत्कुमार इन्द्र और इसी पटल की उत्तर दिशा गत १६ वें श्रेणीबद्ध में माहेन्द्र इन्द्र निवास करता है। तृतीय युगल के ब्रह्मोत्तर नामक अन्तिम पटल की दक्षिण दिशागत १४ वें श्रेणीबद्ध विमान में ब्रह्मोत्तर नाम इन्द्र का अवस्थान है। चतुर्थ युगल के लान्तव नामक द्वितीय (अन्तिम) पटल की दक्षिण दिशागत १२ वें श्रेणीबद्ध विमान में लान्तव इन्द्र अपनी देवांगनाओं और अन्य देवों से वेष्टित लान्तव इन्द्र निरन्तर निवास करता है। पंचम युगल के शुक्र नामक पटल की दक्षिण दिशागत १० वें श्रेणीबद्ध विमान में अन्य देव गणों के साथ शुक्र इन्द्र निवास करता है। षष्ठ युगल के शतार पटल की दक्षिण दिशागत ८ वें श्रेणीबद्ध विमान में अनेक देव देवियों के साथ शतार इन्द्र निवास करता है। सप्तम और अष्टम युगल के आनत पटल की दक्षिण दिशागत ६ वें श्रेणीबद्ध में आनत इन्द्र और उत्तर दिशागत ६ वें श्रेणीबद्ध में प्राणत इन्द्र रहता है तथा आरण पटल की दक्षिण दिशागत ६ वें श्रेणीबद्ध में आरण इन्द्र और इसी पटल की उत्तर दिशागत ६ वें श्रेणीबद्ध विमान में अच्युत इन्द्र निवास करता है। अच्युत स्वर्ग पर्यन्त ही पृथक्-पृथक् इन्द्र हैं। इन कल्पों के ऊपर ग्रैवेयक आदि सर्व विमानों में सभी अहमिन्द्र हैं ॥९३-१००॥

अब सौधर्मादि देवों के मुकुट चिह्नों का निरूपण करते हैं—

अधुना मौलिचिह्नानि प्रवक्ष्यामि पृथक्-पृथक्।
सौधर्ममुख्यकल्पस्थेन्द्रादिसर्वसुधाभुजाम् ॥१०१॥
सौधर्मे मुकुटे चिह्नं वराहोऽस्ति दिवौकसाम्।
ऐशाने मकरो मौलि चिह्नं च विस्फुरत्प्रभम् ॥१०२॥
सनत्कुमारनाके स्यान्महिषो मौलिलाञ्छनम्।
माहेन्द्रेऽस्ति शक्रादीनां मत्स्यचिह्नं च शेखरे ॥१०३॥
ब्रह्मस्वर्गेऽमरेशादीनां कच्छपोऽस्ति लाञ्छनम्।
ब्रह्मोत्तरे भवेच्चिह्नं मुकुटे दर्दुरो महान् ॥१०४॥
लान्तवे तुरगचिह्नं कापिष्टे च गजः शुभः।
शुक्रेऽस्ति चन्द्रमा नागो महाशुक्रेऽस्ति लाञ्छनम् ॥१०५॥
शतारे लाञ्छनं खड्गी स्यादिन्द्राद्यमृताशिनाम्।
सहस्त्रारे भवेच्छागो मौलि चिह्नं दिवौकसाम् ॥१०६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आनतप्राणतस्वर्गयोश्चिह्नं वृषभोस्ति च।
आरणाच्युतयोश्चिह्नं कल्पवृक्षः सुधाभुजाम् ॥१०७॥
अहमिन्द्रसमस्तानां मौलि चिह्नानि जातु न।
वक्ष्येऽथात्रामरेशानां वाहनानि पृथक्-पृथक् ॥१०८॥

अर्थ—अब मैं (आचार्य) सौधर्मादि कल्पस्थित सर्व देवों के मुकुट स्थित चिह्नों को पृथक्-पृथक् कहूँगा। सौधर्म स्वर्गस्थ देवों के मुकुटों में वराह का चिह्न तथा ऐशान स्वर्गस्थ देवों के मुकुटों में मगर का चिह्न है। सनत्कुमार स्वर्ग के देवों के मुकुटों में महिष का चिह्न और माहेन्द्र स्वर्ग स्थित इन्द्रादि देवों के मुकुटों में मत्स्य का लाञ्छन है। ब्रह्म स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में कछुए (कच्छप) का तथा ब्रह्मोत्तर स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में मेंढक का चिह्न है। लान्तव स्वर्ग स्थित देवों के घोड़े का, कापिष्ट स्वर्ग में हाथी का, शुक्र स्वर्ग में चन्द्रमा का और महाशुक्र स्थित देवों के मुकुटों का चिह्न सर्प है। शतार स्वर्ग स्थित इन्द्रादि सर्व देवों के मुकुटों में खड्गी का और सहस्रार स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में बकरी का चिह्न है। आनत-प्राणत स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में बैल का तथा आरण-अच्युत स्वर्ग स्थित देवों के मुकुटों में कल्पवृक्ष का चिह्न है। कल्पातीत स्वर्गों में स्थित सर्व अहमिन्द्रों के मुकुटों में कोई भी चिह्न नहीं हैं। अब मैं (आचार्य) सौधर्म आदि इन्द्रों के वाहनों का कथन करूँगा ॥१०१-१०८॥

अब इन्द्रों के वाहनों का निरूपण करते हैं—

सौधर्मे देवराजस्य गजेन्द्रो वाहनं महत्।
ईशाने तुरगः स्यात्सनत्कुमारे मृगाधिपः ॥१०९॥
माहेन्द्रे वृषभो ब्रह्मस्वर्गे सारसवाहनम्।
ब्रह्मोत्तरे पिकः प्रोक्तो लान्तवे हंसवाहनम् ।११०॥
कापिष्टे कोक एवास्ति शुक्रे गरुडवाहनम्।
महाशुक्रे च देवानां मकरो वाहनं भवेत् ॥१११॥
शतारे च मयूरः स्यात्सहस्त्रारेऽम्बुजं भवेत्।
आनतादिचतुष्केषु विमानं पुष्पकाह्वयम् ॥११२॥

अर्थ—सौधर्म स्वर्ग में इन्द्र का वाहन गजेन्द्र है, ईशान स्वर्ग में घोड़ा, सनत्कुमार स्वर्ग में सिंह, माहेन्द्र में बैल, ब्रह्म स्वर्ग में सारस, ब्रह्मोत्तर में कोयल, लान्तव में हंस, कापिष्ट में चक्रवाल, शुक्र में गरुड़, महाशुक्र में मगर, शतार में मयूर, सहस्रार में कमल और आनतादि चार स्वर्गों में कल्पवृक्ष का वाहन है ॥१०९-११२॥

अब दक्षिणेन्द्र-उत्तरेन्द्र के प्रमुख विमानों की चारों दिशाओं में स्थित विमानों के नामों का निरूपण करते हैं—

स्वस्वेन्द्रविमानस्य स्वस्वकल्पाह्वयस्य च।
स्युश्चत्वारि विमानानि पूर्वादि दिक् चतुष्टये ॥११३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आद्यं वैडूर्य साराख्यं रौप्यसाराभिधं ततः।
अशोकसारसंज्ञं च मिश्रसारमिमान्यपि॥ ॥११४॥
पूर्वाद्यासु चतुर्दिक्षु चत्वारः स्युर्विमानकाः।
सर्वेषां दक्षिणेन्द्राणां विमानानामनुक्रमात् ॥११५॥
रुचकं मन्दराभिख्यमशोकं सप्तपर्णकम्।
चत्वारोऽमी विमानाः स्युः प्राच्यादि दिक् चतुष्टये ॥११६॥
ईशानेन्द्रादि सर्वोत्तरेन्द्राणां क्रमतः परे।
विमानानामयं ज्ञेयः क्रमोऽच्युतान्तमञ्जसा ॥११७॥

अर्थ—अपने-अपने कल्प का नाम ही अपने-अपने इन्द्र स्थित विमान का नाम है। इन्द्र स्थित विमान की पूर्व-दक्षिण आदि चारों दिशाओं में क्रम से वैडूर्य सार, रौप्य सार (रजत), अशोक सार और मिश्र सार (मृषत्कसार) नाम वाले चार विमान अवस्थित हैं। सर्व दक्षिणेन्द्रों के विमानों की पूर्वादि चारों दिशाओं में अनुक्रम से उपर्युक्त नाम वाले चार-चार विमान हैं। ईशान इन्द्र आदि सर्व उत्तरेन्द्रों के विमानों की पूर्वादि चारों दिशाओं में अनुक्रम से रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तपर्ण नाम के चार-चार विमान हैं। दक्षिणेन्द्रों-उत्तरेन्द्रों के विमानों की यह व्यवस्था क्रमशः अच्युत कल्प पर्यन्त जानना चाहिए ॥११३-११७॥

अब विमानों के तल बाहुल्य (मोटाई) का निरूपण करते हैं—

षट् युग्मशेषकल्पेषु ग्रैवेयकत्रिक त्रिषु।
शेषेषु च विमानानां तलबाहुल्यमुच्यते ॥११८॥
योजनान्येकविंशाग्रशतान्येकादशक्रमात् ।
ततो नवनवत्या हीनान्युपर्युपरिस्फुटम् ॥११९॥

अर्थ—सौधर्मादि छह कल्पों में, अवशेष आनतादि चार कल्पों में, अधो आदि तीन-तीन ग्रैवेयकों में तथा अन्य शेष अनुदिशों आदि में स्थित विमानों का तल बाहुल्य कहते हैं। सौधर्म स्वर्ग स्थित विमानों का तल बाहुल्य ११२१ योजन प्रमाण है, इसके बाद ऊपर-ऊपर क्रमशः ९९-९९ योजन हीन होता गया है ॥११८-११९॥

अस्य विशेषव्याख्यानमाह-

सौधर्मैशानयोर्विमानानां तलबाहुल्यं योजनानामेकविंशत्यधिकैकादशशतानि। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोश्च द्वाविंशाग्रदशशतानि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोस्त्रयो विंशाग्रनवशतानि। लान्तवकापिष्टयोश्चतुर्विंशत्यधिकाष्ट-योजनशतानि। शुक्रमहाशुक्रयोः पञ्चविंशत्यग्रसप्तशतानि। शतारसहस्रारयोः षड्विंशतियुतषट्शतानि। आनतप्राणतारणाच्युतानां विमानानामधस्तलबाहुल्यं सप्तविंशत्यग्रपञ्चशतयोजनानि। अधोग्रैवेयक त्रिषु विमानानां तलपिण्डबाहुल्यं योजनानामष्टाविंशत्यधिकचतुः शतानि। मध्यग्रैवेयक त्रिषु एकोनत्रिंशदधिकत्रिशतानि च। ऊर्ध्वग्रैवेयक त्रिषु त्रिंशदग्रे द्वे शते। नवानुदिशपञ्चानुत्तरयोर्विमानानां

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तलस्थूलता एक त्रिंशदग्रशतयोजनानि।

अर्थ—उसी बाहुल्य का विशेष कथन करते हैं–सौधर्मैशान स्वर्ग स्थित विमानों के तल भागों की मोटाई ११२१ योजन, सानत्कुमार–माहेन्द्र स्थित विमानों के तल की मोटाई १०२२ योजन ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर की ९२३ योजन, लान्तव–कापिष्ट की ८२४ योजन, शुक्र–महाशुक्र की ७२५ योजन, शतार–सहस्रार की ६२६ योजन, आनत–प्राणत–आरण और अच्युत स्वर्गों की ५२७ योजन, तीन अधोग्रैवेयक स्थित विमानों की तल मोटाई ४२८ योजन, तीन मध्य ग्रैवेयकों की ३२९ योजन, तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकों के विमानों की तल मोटाई २३० योजन तथा नव अनुदिशों एवं पञ्चोत्तर स्वर्ग स्थित विमानों के तल भागों की मोटाई १३१ योजन प्रमाण है।

अब सौधर्मादि इन्द्रों के नगरों के विस्तार का कथन करते हैं–

सौधर्मादि चतुःस्वर्गे चतुर्युग्मेष्वतोऽग्रतः।
शेषेषु चतुरस्त्राणां पुराणं वच्मि विस्तरम् ॥१२०॥
अशीतिश्चतुरग्रा स्यात्सहस्त्राणामथोनता।
चत्वार्यष्टौ सहस्त्राणि योजनानामनुक्रमात् ॥१२१॥
द्वे सहस्त्रे ततोऽप्यूने शेषेषु च दशोनता।
अमीषां सुखबोधाय व्याख्यानं पुनरुच्यते ॥१२२॥

अर्थ—सौधर्मादि चार स्वर्गों में, इनसे आगे के चार युगलों में और इसके आगे शेष आनतादि स्वर्गों में स्थित इन्द्रों के समचतुरस्त्र नगरों का विस्तार कहता हूँ। सौधर्मादि कल्पों में नगरों का विस्तार क्रमशः ८४ हजार योजन, चार हीन अर्थात् ८० हजार योजन, आठ हजार योजन हीन अर्थात् ७२ हजार योजन, दो हजार हीन अर्थात् ७० हजार योजन, शेष चार स्वर्गों में दस–दस हजार हीन अर्थात् ६० हजार योजन, ५० हजार योजन, ४० हजार योजन और ३० हजार योजन है। शेष स्वर्गों में नगरों का विस्तार २०–२० हजार योजन प्रमाण है। सुगमतापूर्वक समझने के लिए अब इसी विषय का व्याख्यान पुनः किया जाता है ॥१२०–१२२॥

सौधर्मे नगराणां समचतुरस्त्राणां विष्कम्भः योजनानां चतुरशीति सहस्त्राणि। ऐशाने चाशीतिसहस्त्राणि। सनत्कुमारे द्वासप्ततिसहस्त्राणि। माहेन्द्रे सप्तति सहस्त्राणि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः पुराणां विस्तारः योजनानां षष्टिसहस्त्राणि। लान्तवकापिष्टयोश्च पञ्चाशत्सहस्त्राणि। शुक्रमहाशुक्रयोश्चत्वारिंशत्सहस्त्राणि। शतार–सहस्त्रारयोस्त्रिंशत्सहस्त्राणि। आनतप्राणतारणाच्युतेषु समचतुरस्त्रपुराणां व्यासः विंशति सहस्त्र योजनानि।

अर्थ—सौधर्म स्वर्ग स्थित चतुरस्त्र नगरों का विष्कम्भ ८४ हजार योजन, ऐशान स्वर्ग में ८० हजार योजन, सनत्कुमार स्वर्ग में ७२ हजार योजन और माहेन्द्र स्वर्ग में ७० हजार योजन है। ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर युगल में स्थित नगरों का विस्तार ६० हजार योजन, लान्तव–कापिष्ट युगल में ५० हजार योजन, शुक्र–महाशुक्र युगल में ४० हजार योजन और शतार–सहस्त्रार युगल में ३० हजार योजन है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आनत-प्राणत-आरण और अच्युत स्वर्गों के चतुरस्र नगरों का व्यास २०-२० हजार योजन है।

अब उक्त नगरों के प्राकारों की ऊँचाई का प्रमाण कहते हैं—

त्रिंशतान्याद्ययुग्मे तत्प्राकाराणां समुच्छ्रयः।
योजनानां त्रियुग्मेषु पञ्चाशत् पृथगूनता।१२३॥
ततस्त्रिंशद्विहीनानि योजनानि च पंचमे।
षष्ठे युग्मे च शेषेषु हीनानि विंशतिः पृथक् ॥१२४॥

अर्थ—प्रथम युगल में प्राकारों की ऊँचाई ३०० योजन है, आगे के तीन युगलों में पृथक्-पृथक् ५०-५० योजन हीन है, पाँचवें युगल में ३० योजन हीन, छठे युगल में और शेष आनतादि स्वर्गों में पृथक्-पृथक् २०-२० योजन हीन है ॥१२३-१२४॥

अब इसी ऊँचाई को विस्तार पूर्वक कहते हैं—

अस्य विस्तरमाह—

सौधर्मैशानयोः नगरस्थ प्राकाराणामुत्सेधः त्रिंशतयोजनानि। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्धद्विशत-योजनानि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्योजनां द्वे शते। लान्तवकापिष्टयोश्च सार्धशतं। शुक्रमहाशुक्रयोः विंशाग्रं शतं। शतारसहस्त्रारयोः प्राकारोदयः शतयोजनानि। आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु नगराणां प्राकारोत्सेधः अशीतियोजनानि।

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प में स्थित नगरों के प्राकारों की ऊँचाई ३०० योजन, सानत्कुमार माहेन्द्र कल्प स्थित प्राकारों की २५० योजन, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में २०० योजन, लान्तव-कापिष्ट में १५० योजन, शुक्र-महाशुक्र में १२० योजन, शतार-सहस्त्रार के प्राकारों की १०० योजन और आनतप्राणत-आरण और अच्युत स्वर्गों में स्थित नगरों के प्राकारों की ऊँचाई ८०-८० योजन प्रमाण है।

अब उन्हीं प्राकारों के गाध (नींव) और व्यास का प्रमाण कहते हैं—

षट्सु युग्मेषु शेषेषु सप्तस्थानेष्वितिक्रमात्।
प्राकाराणां पृथग्व्यासोऽवगाहश्चाभिधीयते ॥१२५॥
योजनानां च पञ्चाशत्ततोऽर्धार्धं पृथक् त्रिषु।
ततः क्रमेण चत्वारि त्रीणि सार्धे द्वि योजने ॥१२६।
चतुस्त्रिद्वयसंगुण्यं शतषष्ट्यधिकं शतम्।
विंशत्या त्रिषु तद्धीन गोपुराणां समुन्नतिः ॥१२७॥
योजनानां शतं व्यासस्ततो दशोनता पृथक्।
विंशोनं पञ्चमे स्थाने दशोनं च पृथक् द्वये ॥१२८॥

अर्थ—छह युगलों के छह स्थान और अवशेष आनतादि स्वर्गों का एक स्थान इस प्रकार ७ स्थानों में उपर्युक्त प्राकारों के पृथक्-पृथक् व्यास और अवगाह का प्रमाण कहते हैं। प्रथम युगल में प्राकारों की नींव और व्यास का प्रमाण ५० योजन प्रमाण है, उसके आगे तीन स्थानों में क्रमशः इसका आधा-आधा है। पाँचवें स्थान का ४ योजन, छठे स्थान का ३ योजन और सातवें स्थान का प्रमाण

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

२ $\frac{१}{२}$ योजन है। सातों स्थानों के प्राकारों की चारों दिशाओं में उनकी ऊँचाई का प्रमाण क्रमशः ४०० योजन, ३०० योजन, २०० योजन, १६० योजन, १४० योजन, १२० योजन और १०० योजन है। इन्हीं सातों स्थानों के गोपुरों का विस्तार क्रमशः १०० योजन, ९० योजन, ८० योजन, ७० योजन, ५० योजन, ४० योजन और ३० योजन प्रमाण है ॥१२५-१२८॥

अमीषां विशेषव्याख्यानमाह–

सौधर्मैशानयोः प्राकाराणां विष्कम्भोवगाहश्च पञ्चाशद्योजनानि। प्राकारस्थ गोपुराणा-मुत्सेधश्चतुःशतयोजनानि विष्कम्भः शतयोजनानि। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः प्राकाराणां व्यासोऽवगाहश्च-पञ्च-विंशतियोजनानि। तद्गोपुराणामुदयः त्रिशतयोजनानि। विस्तारः नवतियोजनानि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः प्राकाराणां विस्तृतिः अवगाहश्च सार्धद्वादशयोजनानि। तत्प्रतोलीनां उत्सेधः द्विशतयोजनानि। विस्तृतिरशीतियोजनानि। लान्तवकापिष्टयोः प्राकाराणां विस्तारावगाहौ क्रोशाग्रषट् योजनानि। तद्गोपुराणामुदयः षष्ट्यग्रशतयोजनानि। विस्तारः सप्ततियोजनानि। शुक्रमहाशुक्रयोः प्राकाराणां व्यासोऽवगाहत्वं च चत्वारियोजनानि। तदुगोपुराणा-मुच्छायः चत्वारिंशदधिकशतयोजनानि। व्यासः पंचाशद्योजनानि। शतारसहस्त्रारयोः प्राकाराणां विष्कम्भावगाहौ त्रीणियोजनानि। तद्गोपुराणामुदयः विंशत्यग्रशतयोजनानि। विष्कम्भः चत्वारिंशद्योजनानि। आनतप्राणतारणा-च्युतेषु प्राकाराणां विस्तारः गाहत्त्वं च सार्धयोजन द्वे प्राकारस्थप्रतोलीनामुत्सेधः शतयोजनानि। व्यासः त्रिंशद्योजनानि।

अर्थ–अब इसी को विशेषता से कहते हैं–उपर्युक्त गद्य का अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है। आकारों एवं गोपुरों का प्रमाण योजनों और मीलों में दर्शाया गया है।

प्राकारों (कोट) का विवरण								गोपुर द्वारों का प्रमाणादि			
क्रमांक	सात स्थान	ऊँचाई		बाहुल्य		गाध (नींव) की गहराई		उत्सेध		व्यास	
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	सौधर्मैशान	३०० यो.	२४००	५०	४००	५०	४००	४००	३२००	१००	८००
२	सा. मा.	२५० यो.	२०००	२५	२००	२५	२००	३००	२४००	९०	७२०
३	ब्रह्म-ब्रह्मो.	२०० यो.	१६००	१२$\frac{१}{२}$	१००	१२$\frac{१}{२}$	१००	२००	१६००	८०	६४०
४	लां. का.	१५० यो.	१२००	६ $\frac{१}{४}$	५०	६ $\frac{१}{४}$	५०	१६०	१२८०	७०	५६०
५	शुक्र-महा.	१२० यो.	९६०	४	३२	४	३२	१४०	११२०	५०	४००
६	शतार-सह.	१०० यो.	८००	३	२४	३	२४	१२०	९६०	४०	३२०
७	आनतादि	८० यो.	६४०	२ $\frac{१}{२}$	२०	२$\frac{१}{२}$	२०	१००	८००	३०	२४०

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब सौधर्मादि बारह स्थानों में गृहों की ऊँचाई, लम्बाई एवं चौड़ाई का प्रतिपादन करते हैं–

षट्सु युग्मेषु शेषेषु ग्रैवेयकत्रिक त्रिषु।
नवानुदिशिपञ्चानुत्तरे पृथग्गृहोदयः ॥१२९॥
योजनां शतान्येव षट् ततः शतपञ्चकम्।
शतार्धं तदूणं शेषाणामन्ते पंचविंशतिः ॥१३०॥
हर्म्याणामुदयस्यास्यायामोऽस्ति पञ्चमांशकः।
विष्कम्भो दशमो भागः सर्वत्रैवं व्यवस्थितिः ॥१३१॥

अर्थ–सौधर्मादि छह युगलों में अवशेष आनतादि स्वर्गों में, अधो, मध्य एवं उपरिम इन नव अनुदिशों में एवं पंचानुत्तरों में अर्थात् (६ + १ + ३ + १ + १ =) १२ स्थानों में गृहों की पृथक्-पृथक् ऊँचाई कहते हैं। प्रथम युगल में गृहों की ऊँचाई ६०० योजन और दूसरे युगल में ५०० योजन है। इसके आगे ११ वें स्थान तक ५०-५० कम होते हुए क्रमशः ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १०० और ५० योजन है। अन्तिम स्थान के गृहों की ऊँचाई २५ योजन है। प्रत्येक स्थानों के गृहों की लम्बाई अपनी-अपनी ऊँचाई का पाँचवाँ ($\frac{६००}{५}$=१२०) भाग है और प्रत्येक स्थानों के गृहों की चौड़ाई अपनी-अपनी ऊँचाई का १० वाँ ($\frac{६००}{१०}$ =६०) भाग प्रमाण है। जैसे–लम्बाई क्रमशः १२० योजन, १००, ९०, ८०, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, १० और ५ योजन प्रमाण है। इसी प्रकार चौड़ाई क्रमशः ६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३०, २५, २०, १५, १०, ५ और २$\frac{१}{२}$ योजन प्रमाण है।

एतेषां उत्सेधायामविष्कम्भाः पृथक्-पृथक् व्यासेन प्रोच्यन्ते–

सौधर्मैशानयोः प्रासादानामुत्सेधः षट्शतयोजनानि। आयामः विंशत्यग्र शतयोजनानि, विष्कम्भः षष्टियोजनानि। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः गृहाणामुदयः पञ्चशतयोजनानि, दीर्घता शतयोजनानि, व्यासः पश्चाशद्योजनानि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः सौधानामुन्नतिः सार्धचतुःशतयोजनानि, आयामः नवति योजनानि, विस्तृतिः पञ्चचत्वारिंशद्योजनानि। लान्तवकापिष्टयोः प्रासादानामुत्सेधः चतुःशतयोजनानि, आयामः अशीतियोजनानि, विस्तारः चत्वारिंशद्योजनानि। शुक्रमहाशुक्रयोः गृहाणामुन्नतिः सार्धत्रिशतयोजनानि, दीर्घता सप्तति योजनानि, विष्कम्भः पञ्चत्रिंशद्योजनानि। शतारसहस्त्रारयोः प्रासादानामुदयः त्रिशतयोजनानि, आयामः षष्टि योजनानि, व्यासः त्रिंशद्योजनानि आनतप्राणतारणाच्युतेषु हर्म्याणामुत्सेधः सार्धद्विशतयोजनानि, आयामः पञ्चाशद्योजनानि, विस्तारः पञ्चविंशतियोजनानि। अधोग्रैवेयक त्रिषु प्रासादानामुदयः द्विशतयोजनानि, दीर्घता चत्वारिंशत्द्योजनानि, विष्कम्भः विंशति योजनानि। मध्यग्रैवेयक त्रिषु गृहाणामुत्सेधः सार्धशतयोजनानि, दीर्घता त्रिंशद्योजनानि, व्यासः पञ्चदशयोजनानि। ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु सौधानामुच्छयः शतयोजनानि, आयामः विंशतियोजनानि, विस्तारः दशयोजनानि। नवानुदिशे प्रासादानामुत्सेधः पञ्चाशद्योजनानि, आयामः दशयोजनानि, व्यासः पञ्चयोजनानि पञ्चानुत्तरे प्रासादानामुत्सेधः पञ्चविंशतियोजनानि। आयामः पञ्चयोजनानि, व्यासः सार्धे द्वे योजने।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गद्य का अर्थ–

क्रमांक	स्थान	देवों के गृहों का					
		उत्सेध		लम्बाई		चौड़ाई	
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	सौधर्मैशान	६००	४८००	१२०	९६०	६०	४८०
२	सानत्कु.–माहेन्द्र	५००	४०००	१००	८००	५०	४००
३	ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०
४	लान्तव–कापिष्ठ	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०
५	शुक्र–महाशुक्र	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०
६	शतार–सहस्त्रार	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०
७	आनतादि चार	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००
८	अधोग्रैवेयक	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०
९	मध्यम ग्रैवेयक	१५०	१२००	३०	२४०	१५	१२०
१०	उपरिम ग्रैवेयक	१००	८००	२०	१६०	१०	८०
११	अनुदिश	५०	४००	१०	८०	५	४०
१२	अनुत्तर	२५	२००	५	४०	$२\frac{१}{२}$	२०

अब इन्द्र के नगर सम्बन्धी प्राकारों की संख्या और उनके पारस्परिक अन्तर का प्रमाण कहते हैं–

इन्द्रक्रीडानिवासस्य प्राकारात्प्रथमाद्बहिः।
आदिशालसमव्यासोत्सेधाश्चत्वार ऊर्जिताः ॥१३२॥
महान्तोऽन्ये च विद्यन्ते प्राकारा अन्तरान्तरे।
प्राकारस्यादिमस्यैव योजनानां किलान्तरम् ॥१३३॥
त्रयोदशैव लक्षाणि द्वितीयस्यास्य चान्तरम्।
त्रिषष्टिरेव लक्षाणि तृतीयस्य तथान्तरम् ॥१३४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

चतु:षष्टिस्तु लक्षाणि तुर्यशालस्य चान्तरम्।
लक्षाणि योजनानां चतुरशीतिप्रमाणि वै ॥१३५॥

अर्थ—इन्द्र के क्रीड़ा निवास (अर्थात् नगर) के प्रथम प्राकार से बाहर समुन्नत (व्यास के समान उन्नत) एवं महान् एक दूसरे के अन्तराल से, चार प्राकार और हैं। जिनका व्यास एवं उत्सेध प्रथम प्राकार के सदृश है। प्रथम कोट (प्राकार) से दूसरे कोट का अन्तर १३ लाख योजन (१०४००००० मील) है। दूसरे कोट से तीसरे कोट का अन्तर ६३ लाख योजन (५०४००००० मील) है। तीसरे कोट से चौथे कोट का अन्तर ६४ लाख योजन (५१२००००० मील) है और चौथे कोट से पाँचवें कोट का अन्तराल ८४ लाख योजन (६७२००००० मील) प्रमाण है ॥१३२-१३५॥

अब कोटों के अन्तरालों में स्थित देवों के भेद कहते हैं—

आद्यप्राकारभूमध्ये सैन्यनाथा वसन्ति च।
शालान्तरे द्वितीयस्याङ्गरक्षकसुधाभुज: ॥१३६॥
तृतीयशालभूभागे निर्जरा: परिषत्स्थिता:।
अन्तरे तुर्यशालस्य सामानिका वसन्ति च ॥१३७॥

अर्थ—प्रथम कोट के मध्य में सेनापति और दूसरे कोट के मध्य में अंगरक्षक देव रहते हैं। तीसरे कोट के मध्य में परिषद् देव तथा चौथे कोट के अन्तराल में सामानिक देव निवास करते हैं ॥१३६-१३७॥

अब सामानिक, तनुरक्षक और अनीक देवों का प्रमाण कहते हैं—

चतुर्णामाद्य नाकानामशीतिश्चतुरुत्तरा।
सहस्त्राणामशीतिश्च द्विसप्ततिस्तुसप्तति: ॥१३८॥
चतुर्णामूर्ध्वयुग्मानां सहस्त्राण्ययुतं विना।
शेषाणां स्यु: सहस्त्राविंशति: सामान्यकामरा: ॥१३९॥
तेभ्यश्चतुर्गुणा: सन्ति ह्यङ्गरक्षकनाकिन:।
वृषभाद्या: पृथक् सप्तसप्तानीका: क्रमादिमे ॥१४०॥
वृषभा: प्रवरा अश्वा रथा गजा: पदातय:।
गन्धर्वा देवनर्तक्य: सप्तानीका अमी पृथक् ॥१४१॥
सप्तानामादिमं सैन्यं स्वस्वसामानिकै: समम्।
स्यु: शेषा: षड्वरानीका द्विगुणा द्विगुणा: पृथक् ॥१४२॥

अर्थ—आदि चार अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में सामानिक देवों का प्रमाण क्रमश: ८४०००, ८००००, ७२००० और ७०००० है। इनके ऊपर के चार युगलों में दस-दस हजार हीन हैं। अर्थात् तृतीय युगल में ६००००, चतुर्थ युगल में ५०००० पंचम युगल में ४०००० और

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षष्ठ युगल में ३०००० सामानिक देव हैं तथा शेष आनतादि चार कल्पों के एक स्थान २०००० सामानिक देव हैं। प्रत्येक स्थान में अंगरक्षक देवों का प्रमाण सामानिक देवों के प्रमाण से चौगुना है। जैसे-सौधर्म स्वर्ग में ८४०००×४=३३६००० अंगरक्षक, ऐशान में ८००००×४=३२०००० अंगरक्षक इत्यादि। प्रथम आदि स्वर्गों में वृषभ को आदि लेकर क्रमशः पृथक्-पृथक् सात-सात अनीक सेनाएँ होती हैं। श्रेष्ठ एवं अनुपम वृषभ, अश्व, रथ, हाथी, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी, ये पृथक्-पृथक् सात अनीक सेनाएँ नव स्थानों में होती हैं। इन सातों सेनाओं में से जो वृषभ नाम की सात प्रकार की आद्य सेना है, उसमें वृषभों का प्रमाण अपने-अपने सामानिक देवों के प्रमाण सदृश है तथा अवशेष छह अनीकों में वृषभों का प्रमाण पृथक्-पृथक् क्रमशः दूना-दूना होता गया है ॥१३८-१४२॥

अब दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के अनीक नायकों के नाम कहते हैं-

दामाख्यो हरिदामाख्यो मातलिनामकस्ततः।
ऐरावताह्वयो वायुनामारिष्टयशोभिधः ॥१४३॥
नीलाञ्जनामरी चैते सप्तसेनमहत्तराः।
षण्णां स्युर्दक्षिणेन्द्राणां सप्तसैन्याग्रिमाः पृथक् ॥१४४॥
महादामाभिधः स्वेच्छगामी च रथमन्थनः।
पुष्पदन्तो महावीर्यो गीतप्रीतिर्महामतिः ॥१४५॥
इमे महत्तराः सप्त सन्ति स्वसैनिकाग्रिमाः।
क्रमेण सप्त सैन्यानामुत्तरेन्द्रा खिलात्मनाम् ॥१४६॥

अर्थ-छह दक्षिणेन्द्रों के सात अनीक सेनाओं के आगे-आगे चलने वाले पृथक्-पृथक् दाम, हरिदाम, मातलि, ऐरावत, वायु, अरिष्टयशा और नीलाञ्जना नाम छह दक्षिणेन्द्रों के ये सात-सात प्रधान हैं। इसी प्रकार छह उत्तरेन्द्र अपनी-अपनी सेनाओं के आगे-आगे चलने वाले क्रमशः महादाम, स्वेच्छगामी (अमितगति), रथमन्थन, पुष्पदन्त, महावीर्य, गीतप्रीति और महापति नाम के ये सात-सात प्रधान छहों उत्तरेन्द्रों के पृथक्-पृथक् हैं ॥१४३-१४६॥

अब नवों स्थानों में तीनों परिषदों का पृथक्-पृथक् प्रमाण कहते हैं-

क्रमात् परिषदा संख्येयं द्वादश चतुर्दश।
षोडशैव सहस्राणि नवानां प्रथमे पदे ॥१४७॥
ततो द्वि द्वि सहस्रोनं यावत् षष्ठं पदं ततः।
अर्धार्धक्रमतो हीनं स्याद्यावन्नवमं पदम् ॥१४८॥

अर्थ-सौधर्म स्वर्ग आदि के नव स्थानों में से प्रथम स्थान में अभ्यन्तर परिषद् में देवों की संख्या १२००० मध्य परिषद् में १४००० और बाह्य परिषद् में १६००० है। इसके आगे छह पदों तक इस प्रमाण में क्रमशः दो-दो हजार की हानि होती गई है तथा इसके आगे नवम पद पर्यन्त यह संख्या क्रमशः अर्ध-अर्ध प्रमाण हीन होती गई है ॥१४७-१४८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अथामीषां सुखबोधाय विशेषव्याख्यानमाह–

सौधर्मेन्द्रस्य सामान्यकामराः चतुरशीतिसहस्राणि। अङ्गरक्षाः त्रिलक्षषड्त्रिंशत्सहस्राणि। वृषभानां प्रथमे अनीके वृषभाश्चतुरशीति सहस्राणि। द्वितीये च एकलक्षाष्टषष्टिसहस्राणि। तृतीये त्रिलक्षषट्–त्रिंशत्सहस्राणि। चतुर्थे षड्लक्षद्वासप्ततिसहस्राणि। पञ्चमे त्रयोदशलक्ष चतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि। षष्ठे षड्विंशतिलक्षाष्टाशीतिसहस्राणि। सप्तमे अनीके वृषभा त्रिपञ्चाशल्लक्षषट्सप्ततिसहस्राणि। सप्तानीकस्थाः पिण्डीकृताः सर्वे वृषभाः एकाकोटीषड्लक्षाष्टषष्टिसहस्राणि भवन्ति। शेषाः अश्वाद्याः सप्त सप्तभेदाः। षडनीकाः वृषभानीक समानाः विज्ञेयाः। अमीषां वृषभादि सप्तानीकानां एकत्रीकृताः समस्तवृषभादि नर्तक्यन्ताः सप्तकोटिषट्चत्वारिंशल्लक्षषट् सप्ततिसहस्राणि स्युः। आदिपरिषदि देवा द्वादशसहस्राणि। मध्यपरिषदि, सुराः चतुर्दशसहस्राणि। बाह्यपरिषदिगीर्वार्णाः षोडशसहस्राणि। ऐशानेन्द्रस्य सामान्यकाः अशीतिसहस्राणि। अङ्गरक्षाः त्रिलक्षविंशतिसहस्राणि। वृषभाणां प्रथमानीके वृषभाः अशीतिसहस्राणि ततः पूर्ववत् शेषषडनीकेषु द्विगुणा द्विगुणा वृषभाः विज्ञेयाः। सप्तनीकानां सर्वे पिण्डीकृताः वृषभाः एकाकोट्येकलक्षषष्टि सहस्राणि। शेषाः अश्वादयः षट्वृषभगणनासमानाः स्युः। एते सर्वे सप्तानीकानां पिण्डीकृताः वृषभादयः नर्तक्यन्ताः सप्तकोट्येकादशलक्षविंशतिसहस्राणि भवेयुः। आदिपरिषदि देवाः दशसहस्राणि। मध्यपरिषदि द्वादश–सहस्राणि। बाह्य परिषदि सुराः चतुर्दशसहस्राणि। सनत्कुमारेन्द्रस्य सामानिकाः द्विसप्ततिसहस्राणि अङ्गरक्षाः द्विलक्षाष्टाशीतिसहस्राणि। प्रथमे वृषभानीके वृषभाः द्वासप्ततिसहस्राणि ततः शेषषट्सैन्येषु द्विगुणा द्विगुणा वृषभाः सन्ति। सप्तानीकस्थाः सर्वे पिण्डीकृताः वृषभाः एकनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्ति। शेषाः अश्वादयः षट् वृषभसमाः मन्तव्याः। अमी सप्तानीकानां पिण्डीकृताः सर्वे वृषभादयः षट्कोटि चत्वारिंशल्लक्षाष्टसहस्राणि भवन्ति। आदि परिषदिगीर्वाणाः अष्टसहस्राणि। मध्यपरिषदि देवाः दशसहस्राणि। बाह्यपरिषदि त्रिदशाः द्वादशसहस्राणि। माहेन्द्रस्य सामानिकाः सप्ततिसहस्राणि। अङ्गरक्षाः द्विलक्षाशीति–सहस्राणि। प्रथमे वृषभानीके वृषभाः सप्ततिसहस्राणि। ततो द्विगुण द्विगुण वृद्ध्या सप्तानीकानां विश्वे पिण्डीकृताः वृषभाः अष्टाशीतिलक्षनवतिसहस्राणि भवन्ति। अश्वादयः प्रत्येकं तावन्त एव विज्ञेयाः। सप्तानीकानां सर्वे पिण्डीकृताः वृषभादयः षट्कोटिद्वाविंशतिलक्षत्रिंशत्सहस्राणि विद्यन्ते। आदिपरिषदि निर्जराः षट्सहस्राणि, मध्यपरिषदि देवाः अष्टसहस्राणि, बाह्यपरिषदि सुराः दशसहस्राणि। ब्रह्मेन्द्रस्य सामानिकाः षष्टिसहस्राणि, अङ्गरक्षा द्विलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। आद्ये वृषभानीके वृषभाः षष्टिसहस्राणि। ततो द्विगुण द्विगुण वर्द्धिताः सर्वे सप्तानीकस्थाः पिण्डीकृताः वृषभाः षट्सप्ततिलक्षविंशति सहस्राणि स्युः। अश्वादयः शेषाः पृथग्भूता वृषभतुल्याज्ञातव्याः। सप्तानीकानामेकत्रीकृताः सर्वे वृषभादयः पञ्चकोटि त्रयस्त्रिंशल्लक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। आदिपरिषदिदेवाः चत्वारि सहस्राणि, मध्यपरिषदिगीर्वाणाः षट्सहस्राणि, बाह्यपरिषदि सुरा अष्टसहस्राणि। लान्तवेन्द्रस्य सामानिकाः पञ्चाशत्सहस्राणि। अङ्गरक्षाः द्वे लक्षे। वृषभाणां प्रथमानीके वृषभाः पञ्चाशत्सहस्राणि, ततो द्विगुण द्विगुण वृद्ध्या वर्धिताः वृषभाः

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकत्रीकृताः त्रिषष्टिलक्षपञ्चाशत्सहस्राणि स्युः। अश्वादयोऽपि समस्तास्तत्समा विज्ञेयाः। सप्तानीकानां सर्वे पिण्डीकृताः वृषभादयः चतुःकोटिचतुश्चत्वारिंशल्लक्षपञ्चाशत् सहस्राणि भवन्ति। आदि परिषदि देवाः द्वे सहस्रे, मध्यपरिषदि सुराः चत्वारिंशत्सहस्राणि, बाह्यपरिषदिगीर्वाणाः षट्सहस्राणि। शुक्रेन्द्रस्य सामानिकाः चत्वारिंशत्सहस्राणि। अङ्गरक्षाः एकलक्षषष्टिसहस्राणि। वृषभाणां प्रथमानीके वृषभाः चत्वारिंशत्सहस्राणि। ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धया क्रमेण वर्धिताः। सप्तानीकवृषभाः पिण्डिताः पञ्चाशल्लक्षाशीति सहस्राणि भवेयुः। तावन्तः पृथक्-पृथक् अश्वादयो (वृषभादयः इति पाठः) ज्ञातव्याः। सर्वे सप्तानीकानां पिण्डीकृताः वृषभादयः त्रिकोटिपञ्चपञ्चाशल्लक्षषष्टिसहस्राणि भवन्ति। आदि परिषदिदेवाः सहस्रं, मध्यपरिषदि सुराः द्वे सहस्रे, बाह्यपरिषदिगीर्वाणाः चत्वारि सहस्राणि। शतारेन्द्रस्य सामानिकास्त्रिंशशत् सहस्राणि अङ्गरक्षाः एकलक्षविंशतिसहस्राणि। वृषभाणां प्रथमानीके वृषभाः त्रिंशत्सहस्राणि। ततो द्विगुण द्विगुण वृद्धिक्रमेण वर्द्धमानाः। विश्वे वृषभाः अष्टत्रिंशल्लक्ष-दशसहस्राणि भवन्ति। अश्वादयः षट्संख्यया वृषभसमानाः ज्ञातव्याः। सप्तानीकानां विश्वे वृषभादयः पिण्डीकृताः द्विकोटिषट्षष्टिलक्षसप्तति सहस्राणि भवन्ति। आदि परिषदिदेवाः पञ्चशतानि, मध्यपरिषदि-सुराः सहस्रैकं च, बाह्यपरिषदि अमराः द्वे सहस्रे। आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्राणां प्रत्येकं सामानिकाः विंशतिसहस्राणि। अङ्गरक्षा अशीतिसहस्राणि। वृषभाणां प्रथमे अनीके वृषभाः विंशतिसहस्राणि। द्वितीये चत्वारिंशत्सहस्राणि। इत्यादि द्विगुण द्विगुण वृद्ध्या वर्धिताः विश्वे सप्तानीकस्थाः वृषभाः एकत्रीकृताः पञ्चविंशतिलक्षचत्वारिंशत्सहस्राणि। शेषाः अश्वादयः (वृषभादयः अपि पाठः) षडनीकाः पृथक् भूताः वृषभसमानाः वेदितव्याः। वृषभादिसप्तानीकानां सर्वे पिण्डीकृता। वृषभादिनर्तक्यन्ताः एकाकोटिसप्तसप्ततिलक्षाशीतिसहस्राणि, आदिपरिषदिदेवाः सार्धद्विशते, मध्यपरिषदित्रिदशाः पञ्चशतानि, बाह्यपरिषदि अमराः सहस्रैकम्।

अर्थ—सौधर्म आदि नव स्थानों के सामानिक देव, अंग रक्षक, अनीक और अभ्यन्तर आदि परिषदों के देवों का प्रमाण विस्तार रूप से कहते हैं—सौधर्म स्वर्ग में सामानिक देवों का प्रमाण ८४०००, अंगरक्षकों का तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००), वृषभों की प्रथम अनीक में बैलों का प्रमाण ८४०००, दूसरी कक्ष में १६८०००, तीसरी कक्ष में ३३६०००, चतुर्थ कक्ष में ६७२०००, पाँचवीं कक्ष में १३४४०००, छठी कक्ष में २६८८००० और सातवीं कक्ष में ५३७६००० बैलों का प्रमाण है। इन सातों कक्षाओं के समस्त बैलों को एकत्रित करने से १०६६८००० प्रमाण (मात्र बैलों का) होता है। शेष अश्व, गज आदि अनीकों के भी सात-सात भेद हैं, जिनकी अनीकों का प्रमाण वृषभ अनीकों के सदृश ही जानना चाहिए। इन वृषभ आदि सातों अनीकों में वृषभ से लेकर नर्तकी पर्यन्त का सर्व प्रमाण एकत्रित करने पर ७४६७६००० होता है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना चाहिए। उपर्युक्त सम्पूर्ण गद्य का अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित किया गया है। अन्तर केवल इतना है विस्तार भय से तालिका में सातों कक्षाओं का पृथक्-पृथक् प्रमाण नहीं दिया गया, प्रत्येक स्थान की केवल प्रथम कक्ष

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नव स्थानों में – सामानिक – तनुरक्षक – सातों अनीक एवं तीनों परिषदों का प्रमाण

क्रमांक	नव स्थान	सामानिक देवों का प्रमाण	तनुरक्षक देवों का प्रमाण	अनीक सेनाओं का प्रमाण			परिषदों का प्रमाण		
				वृषभों की प्रथम कक्ष में	एक अनीक की सम्पूर्ण संख्या	सातों अनीकों की सम्पूर्ण संख्या	अभ्यन्तर परिषद्	मध्य परि.	बाह्य परि.
					(प्रथम कक्ष की संख्या है १२७ गुणी है।)				
१	सौधर्म	८४०००	३३६००० [३ ला. ३६ ह.]	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००	१२०००	१४०००	१६०००
२	ईशान	८००००	३२०००० [३ ला. २० ह.]	८००००	१०१६००००	७११२००००	१००००	१२०००	१४०००
३	सानत्कुमार	७२०००	२८८००० [२ ला. ८८ ह.]	७२०००	९१४४०००	६४००८०००	८०००	१००००	१२०००
४	माहेन्द्र	७००००	२८०००० [२ ला. ८० ह.]	७००००	८८९००००	६२२३००००	६०००	८०००	१००००
५	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	६००००	२४०००० [२ ला. ४० ह.]	६००००	७६२००००	५३३४००००	४०००	६०००	८०००
६	लान्तव-कापिष्ठ	५००००	२००००० [दो लाख]	५००००	६३५००००	४४४५००००	२०००	४०००	६०००
७	शुक्र-महाशुक्र	४००००	१६०००० [१ ला. ६० ह.]	४००००	५०८००००	३५५६००००	१०००	२०००	४०००
८	शतार-सहस्रार	३००००	१२०००० [१ ला. २० ह.]	३००००	३८१००००	२६६७००००	५००	१०००	२०००
९	आनतादि चार	२००००	८०००० [८० हजार]	२००००	२५४००००	१७७८००००	२५०	५००	१०००

का प्रमाण दिया गया है। इसी प्रमाण को दूना-दूना करके अन्य कक्षाओं का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिए।

अब वनों का नाम, प्रमाण, चैत्यवृक्षों के स्वरूप एवं उनमें स्थित जिन बिम्बों का अवस्थान कहते हैं–

तत इन्द्रपुराद्बाह्ये चतुर्दिक्षु विमुच्य च।
लक्षार्धं योजनानां स्युश्चत्वारिंशद्वनान्यपि ॥१४९॥
अशोकं सप्तपर्णाख्यं चम्पकाह्वयमाम्रकम्।
इति नामाङ्कितान्येव शाश्वतानि वनान्यपि ॥१५०॥
योजनानां सहस्त्रेणायतानि विस्तृतानि च।
सहस्त्रार्धेन रम्याणि भवन्ति सफलानि वै ॥१५१॥
अमीषां मध्यभागेषु चत्वारश्चैत्यपादपाः।
जम्बूद्रुमसमानाः स्युरशोकाद्या मनोहराः।१५२॥
एषां मूले चतुर्दिक्षु जिनेन्द्रप्रतिमाः शुभाः।
देवार्च्या बद्धपर्यङ्काः सन्ति भास्वरमूर्तयः ॥१५३॥
एषु वनेषु सर्वेषु सन्त्यावासा मनोहराः।
वाहनादिक देवानां योषिद्वृन्दसमाश्रिताः ॥१५४॥

अर्थ–इन्द्रों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में पचास-पचास हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के शाश्वत चार वन हैं। उत्तम फलों से युक्त इन प्रत्येक रमणीक वनों की लम्बाई एक हजार योजन और चौड़ाई पाँच सौ योजन प्रमाण है। इन चारों वनों के मध्य भाग में जम्बूवृक्ष सदृश प्रमाण वाले, अत्यन्त मनोहर अशोक आदि चार चैत्य वृक्ष हैं। इन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के मूल में चारों दिशाओं में, देव समूहों से पूज्य, पद्मासन एवं देदीप्यमान शरीर की कान्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान् की एक-एक प्रतिमाएँ हैं। इन चारों वनों में देवांगनाओं के समूह से युक्त वाहन आदि जाति के देवों के मनोहारी आवास हैं ॥१४९-१५४॥

अब लोकपालों के नगरों का स्वरूप एवं प्रमाण कहकर लोकपालों के नामों का उल्लेख करते हैं–

ततो मुक्त्वा चतुर्दिक्षु बहूनि योजनानि च।
चतुर्णां लोकपालानां प्रासादाः सन्ति शाश्वताः ॥१५५॥
पञ्चविंशसहस्त्राग्रलक्षयोजन विस्तृताः।
इन्द्रस्याथ यमस्यैव वरुणाख्यकुबेरयोः ॥१५६॥

अर्थ–चारों दिशाओं में उन वन खण्डों को बहुत दूर छोड़कर अर्थात् वनों से बहुत योजन आगे जाकर इन्द्र (सोम), यम, वरुण और कुबेर इन चारों लोकपालों के शाश्वत प्रासाद हैं, जिनका विस्तार १२५०००० (साढ़े बारह लाख) योजन प्रमाण है ॥१५५-१५६॥

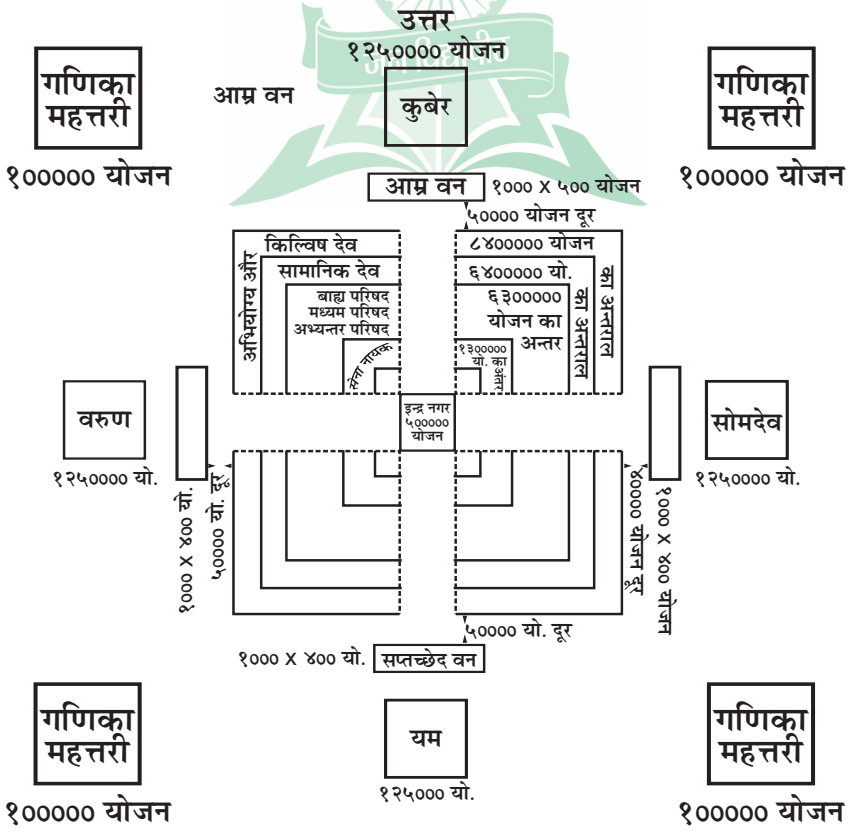
FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब गणिका महत्तरियों के नाम एवं उनके आवासों के प्रमाण आदि कहते हैं–

आग्नेयादिविदिक्षुस्युरावासाः काञ्चनोद्भवाः।
गणिकामहत्तरीणां विस्तारायामसंयुताः ॥१५७॥
लक्षैकं योजनैर्दीप्रा देवीनिकर संश्रिताः।
कामाख्या प्रथमादेवी कामिनी पद्मगन्धिनी ॥१५८॥
अलम्बुषेति नामान्यासं चतुर्मुख्य योषिताम्।
एष एव क्रमोज्ञेयः सर्वेन्द्राणां पुरादिषु ॥१५९॥

अर्थ–जहाँ लोकपाल देवों के नगर हैं, वहीं आग्नेय आदि चारों विदिशाओं में गणिका महत्तरियों के स्वर्णमय आवास (नगर) हैं, जो एक-एक लाख योजन लम्बे, एक-एक लाख योजन चौड़े, देदीप्यमान एवं देवियों के समूहों से युक्त हैं। इन चारों-चारों विदिशाओं में स्थित चार प्रधान गणिका महत्तरियों के नाम कामा, कामिनी, पद्मगन्धिनी एवं अलम्बुषा है। सर्व इन्द्रों के नगरों आदि का क्रम इसी प्रकार जानना चाहिए ॥१५७-१५९॥

इन्द्र नगर के चारों ओर स्थित पाँच प्राकारों, अशोक आदि चार वनों, सोम आदि चार लोकपालों एवं गणिका महत्तरियों के नगरों की अवस्थिति का चित्रण निम्न प्रकार है–



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब प्रत्येक स्थानों के इन्द्रों की वल्लभाओं का प्रमाण एवं उनके प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण कहते हैं–

षड् युग्मेष्वानताद्येषु सप्तस्थानेष्विति क्रमात्।
एकैकस्य सुरेन्द्रस्य देवी संख्योच्यते पृथक् ॥१६०॥
स्युर्द्वात्रिंशत्सहस्राणि ततोऽष्टौ द्वे सहस्रके।
सहस्रार्धं तदर्धार्धं त्रिषष्टि वल्लभास्त्रियः ॥१६१॥
विद्यन्ते पूर्वदिग्भागे देवेन्द्रस्तम्भसद्मनः।
वल्लभानां मनोज्ञाः सत्प्रासादा मणिमूर्तयः ॥१६२॥
तत्प्रासादोदयः पूर्वो योजनैः शतपञ्चभिः।
तद्धीनश्च शतार्धेन व्यासायामौ हि पूर्ववत् ॥१६३॥

अर्थ–सौधर्मादि छह एवं आनतादि का एक, इस प्रकार सातों स्थानों में स्थित एक-एक इन्द्र की वल्लभा देवांगनाओं का पृथक्-पृथक् प्रमाण क्रमशः कहते हैं। प्रत्येक स्थान की संख्या क्रमशः ३२०००, ८०००, २०००, ५००, २५०, १२५ और ६३ है। प्रत्येक इन्द्रों के स्तम्भ मन्दिरों (प्रासादों) की पूर्व दिशा में वल्लभ देवांगनाओं के अति मनोज्ञ मणिमय प्रासाद हैं। इनमें प्रथम स्थान के प्रासाद की ऊँचाई ५०० योजन है, इसके आगे क्रमशः पचास-पचास योजन हीन होती गई है। इन प्रासादों का व्यास और आयाम भी पूर्ववत् जानना चाहिए ॥१६०-१६३॥

अब प्रत्येक इन्द्रों की वल्लभाओं के और उनके प्रासादों की ऊँचाई आदि के प्रमाणों का पृथक्-पृथक् व्याख्यान करते हैं–

आसां विशेषव्याख्यानमुच्यते–

सौधर्मशानेन्द्रयोः प्रत्येकं वल्लभा देव्यः द्वात्रिंशत्सहस्राणि। वल्लभानां प्रासादानामुदयः। पञ्चशतयोजनानि। आयामः शतयोजनानि। विष्कम्भः पञ्चाशत् योजनानि। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पृथग् वल्लभाङ्गनाः अष्टसहस्राणि। तत्प्रासादानामुत्सेधः सार्धचतुःशतयोजनानि, दीर्घता नवतियोजनानि, व्यासः पञ्चचत्वारिंशद्योजनानि। ब्रह्मेन्द्रस्य वल्लभा देव्यः द्वे सहस्रे तासां भवनानामुन्नतिः चतुःशतयोजनानि, आयामः अशीतियोजनानि, विस्तारः चत्वारिंशद्योजनानि। लान्तवेन्द्रस्य वल्लभाङ्गनाः पञ्चशतानि, आसां प्रासादानामुदयः सार्धत्रिशतयोजनानि। आयामः सप्तति योजनानि। विस्तारः पञ्चत्रिंशद्योजनानि। शुक्रेन्द्रस्य वल्लभा योषितः सार्धे द्वे शते। तत्प्रासादानामुच्छ्रायः त्रिशतयोजनानि, दीर्घता षष्टियोजनानि, विस्तृतिस्त्रिंशद्योजनानि। शतारेन्द्रस्य वल्लभाङ्गनाः पञ्चविंशत्यग्रं शतं, तासां भवनानामुत्सेधः सार्धद्विशतयोजनानि। आयामः पञ्चाशद्योजनानि, विष्कम्भः पञ्चविंशतियोजनानि। आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्राणां प्रत्येकं वल्लभा देव्यः त्रिषष्टिरेव वल्लभा प्रासादानामुदयः योजनानां द्वे शते। आयामः चत्वारिंशद्योजनानि, विस्तारः विंशतियोजनानि।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नलिखित तालिका में निहित है। विशेष इतना है कि प्रत्येक स्थानों में जो प्रमाण दर्शाया जा रहा है, वह प्रमाण सौधर्मादि प्रत्येक इन्द्रों का पृथक्-पृथक् समझना चाहिए।

क्रमांक	इन्द्र	वल्लभाओं का प्रमाण	देवांगनाओं के गृहों का					
			उत्सेध		लम्बाई		चौड़ाई	
			योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	सौधर्मैशान	३२०००	५००	४०००	१००	८००	५०	४००
२	सानत्कु.-माहेन्द्र	८०००	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०
३	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	२०००	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०
४	लान्तव-कापिष्ठ	५००	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०
५	शुक्र-महाशुक्र	२५०	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०
६	शतार-सहस्रार	१२५	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००
७	आनतादि ४ इन्द्रों की	६३	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०

अब प्रत्येक इन्द्र की आठ-आठ महादेवांगनाओं के नाम कहकर उनकी विक्रियागत देवांगनाओं का और परिवार देवांगनाओं का प्रमाण दिखाते हैं—

सप्तस्थानेषु सर्वेषामिन्द्राणां दिव्यमूर्तयः।
प्रत्येकं स्युर्महादेव्योऽष्टौ विश्वाक्षसुखप्रदाः ॥१६४॥
शची पद्मा शिवा श्यामा कालिंदी सुलसार्जुना।
भानेति दक्षिणेन्द्राणां देवीनामानि सर्वतः ॥१६५॥
श्रीमती संज्ञिका रामा सुसीमा विजयावती।
जयसेना सुषेणाख्या सुमित्राथ वसुन्धरा ॥१६६॥
सर्वत्रैवोत्तरेन्द्राणां देवीनामान्यमून्यपि।
एकैका च महादेवी विक्रियर्धि प्रभावतः ॥१६७॥
विना मूलशरीरं चाद्ये युग्मे विकरोत्यपि।
स्वसमानि सहस्राणि विक्रियाङ्गानि षोडश ॥१६८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तेभ्य ऊर्ध्वेषु षट्स्थानेष्वैकैकावासवाङ्गना।
द्विगुण द्विगुणान्याशु कुर्याद् रूपाणि योषिताम् ॥१६९॥
एकैकस्या महादेव्याः परिवारवरस्त्रियः।
स्युः षोडशसहस्राणि प्रीता प्रथम युग्मके ॥१७०॥
ततः स्थानेषु शेषेषु परिवारसुराङ्गनाः।
अर्धार्धाः स्युः क्रमादेकैक शच्या विनयाङ्किताः ॥१७१॥

अर्थ—सातों स्थानों में प्रत्येक इन्द्रों के दिव्य मूर्ति को धारण करने वाली एवं समस्त इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाली आठ-आठ महादेवियाँ हैं। समस्त दक्षिणेन्द्रों की आठ-आठ महादेवियों के नाम शची, पद्मा, शिवा, श्यामा, कालिंदी, सुलसा, अर्जुना और भान हैं तथा सर्व उत्तरेन्द्रों की महादेवियों के नाम श्रीमती, रामा, सुसीमा, विजयावती, जयसेना, सुषेणा, सुमित्रा और वसुन्धरा हैं। प्रथम युगल में पृथक्-पृथक् एक-एक महादेवी विक्रिया ऋद्धि के प्रभाव से मूल शरीर के बिना अपने समान सोलह-सोलह हजार विक्रिया शरीर को धारण करने वालीं हैं। प्रथम युगल से ऊपर छह स्थानों में प्रत्येक इन्द्र की एक-एक महादेवी दूनी-दूनी विक्रिया धारण करती हैं। प्रथम युगल में एक-एक महादेवी की सोलह-सोलह हजार परिवार देवियाँ हैं तथा शेष छह स्थानों में क्रम से एक-एक महादेवी की विनय से युक्त परिवार देवांगनाओं का प्रमाण क्रमशः अर्ध-अर्ध होता गया है ॥१६४-१७१॥

आसां विस्तारमाह—

सौधर्मैशानेन्द्राष्टमहादेवीनां पृथग्विक्रियाङ्गानि षोडश सहस्राणि। परिवारदेव्यः षोडशसहस्राणि। सनत्कुमारमाहेन्द्रमहादेवीनां विक्रियाशरीराणि द्वात्रिंशत्सहस्राणि। परिवारदेव्योऽष्टसहस्राणि। ब्रह्मेन्द्राष्टमहादेवीनां प्रत्येकं विक्रियारूपाणि चतुःषष्टिसहस्राणि परिवारदेव्यः चतुःसहस्राणि। लान्तवेन्द्र-महादेवीनां विक्रियाशरीराणि एकलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि। परिवारदेव्यः द्वे सहस्रे। शुक्रेन्द्रस्य शचीनां विक्रियाङ्गानि द्विलक्ष षट् पञ्चाशत्सहस्राणि, परिवारदेव्यः सहस्रैकं। शतारेन्द्राणीनां विक्रिया स्त्रीरूपाणि पञ्चलक्षद्वादशसहस्राणि, परिवारसुराङ्गनाः पञ्चशतानि। आनतप्राणतारणाच्युतेन्द्रैकैकमहादेवीनां विक्रियादेवीशरीराणि पृथग्भूतानि स्वशरीरसमानानि दशलक्षचतुर्विंशतिसहस्राणि, परिवारदेव्यः सार्धे द्वे शते।

अर्थ—प्रत्येक स्थानों में स्थित विक्रिया धारी एवं परिवार देवांगनाओं का पृथक्-पृथक् प्रमाण कहते हैं—

उपर्युक्त गद्य का सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है। विशेष इतना है कि एक-एक महादेवियों की परिवार आदि देवांगनाओं का एकत्रित प्रमाण भी दर्शा दिया है।

तालिका अगले पृष्ठ पर देखें।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

क्रमांक	इन्द्र	अग्रदेवियों का प्रमाण	वैक्रियिक शरीर		परिवार देवांगनाएँ	
			एक महा देवी का	आठों महा देवी का	एक महा देवी का	आठों महा देवी का
१	सौधर्मैशान	८, ८	मूल शरीर रहित १६०००	१२८०००	१६०००	१२८०००
२	सानत्कुमार-माहेन्द्र	८, ८	मूल शरीर रहित ३२०००	२५६०००	८०००	६४०००
३	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	८	मूल शरीर रहित ६४०००	५१२०००	४०००	३२०००
४	लान्तव-कापिष्ठ	८	मूल शरीर रहित १२८०००	१०२४०००	२०००	१६०००
५	शुक्र-महाशुक्र	८	मूल शरीर रहित २५६०००	२०४८०००	१०००	८०००
६	शतार-सहस्त्रार	८	मूल शरीर रहित ५१२०००	४०९६०००	५००	४०००
७	आनतादि ४ इन्द्रों की	८	मूल शरीर रहित १०२४०००	८१९२०००	२५०	२०००

अब समस्त महादेवियों के प्रासादों की ऊँचाई आदि का प्रमाण कहते हैं–

महादेवीसमस्तप्रासादानामुदयोधिकः ।
विंशत्यायोजनानां स्याद्वल्लभाभवनोदयात् ॥१७२॥
प्रासादानां तथायामः स्वोत्सेधात् पञ्चमांशकः ।
पूर्ववद्दशमो भागो विष्कम्भः सर्वतो भवेत् ॥१७३॥

अर्थ–समस्त महादेवियों के प्रासादों की ऊँचाई वल्लभा देवांगनाओं के प्रासादों की ऊँचाई से बीस-बीस योजन अधिक है, आयाम अपनी-अपनी ऊँचाई का पाँचवाँ भाग और विष्कम्भ पूर्व के सदृश अपनी-अपनी ऊँचाई के दसवें भाग प्रमाण है ॥१७२-१७३॥

विशेष विवरण–

स्थान	प्रासादों की ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई
१	५२० योजन	१०४ योजन	५२ योजन
२	४७० योजन	९८ योजन	४७ योजन
३	४२० योजन	८४ योजन	४२ योजन
४	३७० योजन	७४ योजन	३७ योजन
५	३२० योजन	६४ योजन	३२ योजन
६	२७० योजन	५४ योजन	२७ योजन
७	२२० योजन	४४ योजन	२२ योजन

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब इन्द्र के आस्थान मण्डप का अवस्थान एवं प्रमाण कहते हैं–

मध्येऽमरावतीसंज्ञे पुरस्यैशानसद्दिशि।
इन्द्रस्तम्भगृहस्यास्ति सभास्थानसुमण्डपः ॥१७४॥
सुधर्मसंज्ञकस्तुङ्गः पञ्चसप्ततियोजनैः।
शतैकयोजनायामः पञ्चाशद्विस्तरान्वितः ॥१७५॥

अर्थ–अमरावती नामक नगर के मध्य में इन्द्रस्तम्भ प्रासाद की ईशान दिशा में सभा स्थान नामक सुन्दर मण्डप है, जिसका नाम सुधर्म सभा है। इस सुधर्म सभा की ऊँचाई ७५ योजन (६०० मील), लम्बाई १०० योजन (८०० मील) और चौड़ाई ५० योजन (४०० मील) प्रमाण है ॥१७४-१७५॥

अब आस्थान मण्डप के द्वार, उनका प्रमाण एवं इन्द्र के सिंहासन का अवस्थान कहते हैं–

पूर्वोत्तरदिशोर्दक्षिणाशायां तस्य सन्ति च।
द्व्यष्टयोजनतुङ्गानि विस्तृतान्यष्टयोजनैः ॥१७६॥
रत्नद्वाराणि देव्योघैर्दुर्गमाणि सुरोत्करैः।
तन्मध्ये स्वर्गनाथस्य दिव्यं स्याद्धरिविष्टरम् ॥१७७॥

अर्थ–आस्थान मण्डप की पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में १६ योजन ऊँचे और ८ योजन चौड़ाई के प्रमाण को लिए हुए, एक-एक दरवाजा है। ये द्वार रत्नों से निर्मित और देव देवियों के समूह से अलङ्घनीय है। मण्डप के मध्य भाग में इन्द्र का एक दिव्य सिंहासन है ॥१७६-१७७॥

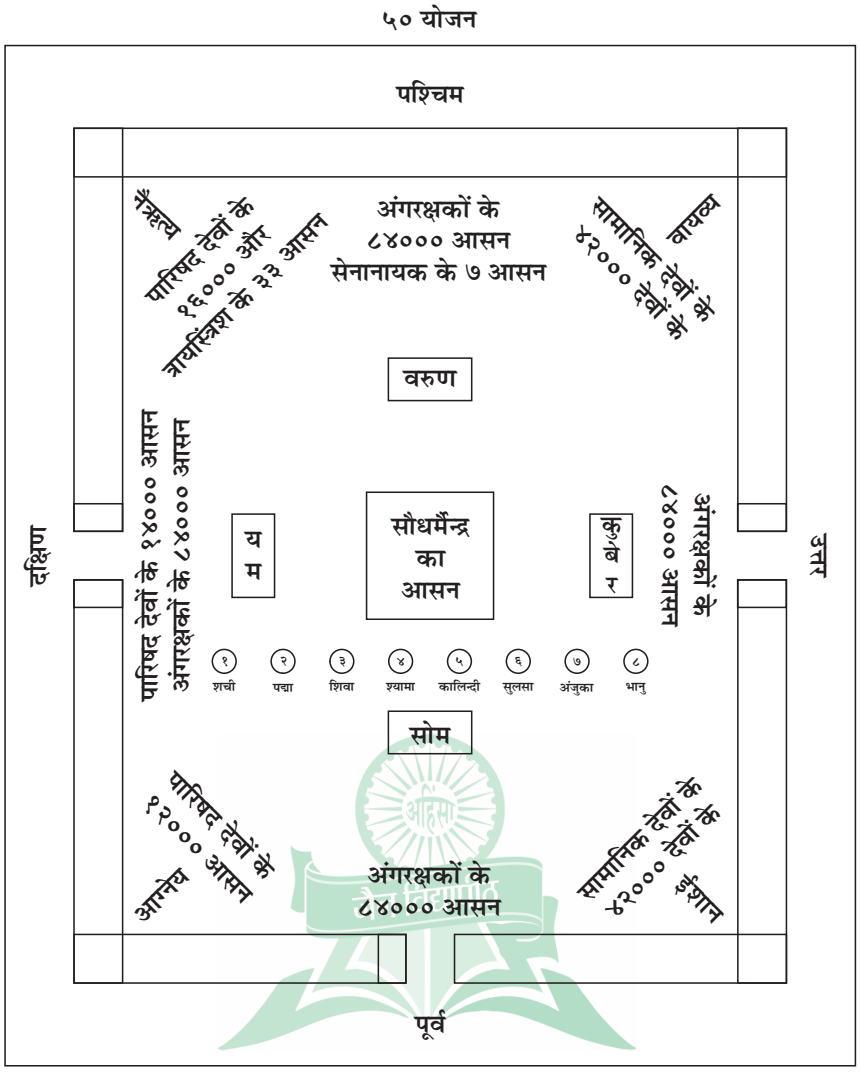
अब महादेवियों के, लोकपालों के और अन्य देवों के सिंहासनों का अवस्थान कहते हैं–

तस्य सिंहासनस्यात्र तिष्ठन्ति सन्मुखानि च।
अष्टानां तन्महादेवीनां महान्त्यासनान्यपि ॥१७८॥
पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति लोकपालासनानि च।
अन्येषां देवसङ्घनां यथार्हमासनान्यपि ॥१७९॥

अर्थ–उस सिंहासन के सम्मुख (आगे) अष्ट महादेवांगनाओं के महान् आसन अवस्थित हैं। महादेवियों के आसनों से बाहर पूर्वादि दिशाओं में चारों लोकपालों के आसन हैं तथा दक्षिण आदि दिशाओं में अन्य देवों के योग्य आसन हैं। अर्थात् इन्द्र के सिंहासन की आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य में अभ्यन्तर आदि परिषदों के, नैऋत्य में त्रायस्त्रिंश देवों के, पश्चिम में सेना नायकों के, वायव्य एवं ईशान में सामानिक देवों के तथा पूर्वादि चारों दिशाओं में अंगरक्षक देवों के आसन हैं ॥१७८-१७९॥ इनका चित्रण निम्न प्रकार है–

(चित्र अगले पेज पर देखें)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY



अब आस्थान मण्डप के अग्र स्थित मानस्तम्भ का स्वरूप प्रमाण एवं उस पर स्थित करण्डों का अवस्थान आदि कहते हैं–

तस्याग्रे रत्नपीठस्थो मानस्तम्भोऽस्ति मानहृत्।
षड्त्रिंशद्योजनोत्तुङ्गो योजनव्यास ऊर्जित: ॥१८०॥
वज्रकाय: स्फुरत्कान्तिर्महाध्वजविभूषित:।
मस्तके जिनबिम्बाढ्य: स्वांशूद्द्योतित दिग्मुख: ॥१८१॥
क्रौशैकक्रमविस्तीर्ण कोटिद्वादशराजित:।
अधोभागे विहायास्य क्रोशोन योजनानि षट् ॥१८२॥
ऊर्ध्वभागे परित्यज्य क्रोशाग्रयोजनानि षट्।
तिष्ठन्ति मणिमञ्जूषा रत्नरज्जु विलम्बिता: ।१८३॥
क्रोशायाम युता: क्रोशचतुर्थभागविस्तृता:।
सुभूषणा जिनेन्द्राणां विद्यन्ते तासु सञ्चिता: ॥१८४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भरतैरावतोत्पन्नानां सुरत्नमयाः परे।
निरौपम्या क्रमायाताः सौधर्मैशानकल्पयोः ॥१८५॥
पूर्वापरविदेहोत्थार्हतां विभूषणा इति।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सन्ति रत्नशालिनः।१८६॥

अर्थ—उस सभामण्डप के आगे रत्नमयी पीठ पर मान को हरण करने वाला, ३६ योजन (२८८ मील) ऊँचा, एक योजन (८ मील) चौड़ा, वज्रमयी देदीप्यमान कान्ति वाली महाध्वजा से विभूषित, शिखर (मस्तक) पर जिनबिम्बों से युक्त एवं अपनी किरणों से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक मानस्तम्भ है। इसमें क्रमशः एक-एक कोश विस्तार वालीं सूर्य सदृश प्रकाशमान बारह धाराएँ हैं। इन ३६ योजन ऊँचाई वाले मानस्तम्भों के अधोभाग में पौने छह योजन और उपरिम भाग में सवा छह योजन छोड़कर शेष मध्य भाग में रत्नमयी रस्सियों के सहारे लटकते हुए मणिमय करण्ड (पिटारे) हैं। इन पिटारों की लम्बाई एक कोश एवं चौड़ाई पाव कोश प्रमाण है। इन करण्डों में जिनेन्द्र देवों (तीर्थंकरों) के पहनने योग्य अनेक प्रकार के आभरण आदि संचित रहते हैं। भरत क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों के उत्तम रत्नमयी एवं उपमा रहित आभूषण सौधर्म स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर, ऐरावत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के ऐशान स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर, पूर्व विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के सानत्कुमार स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर एवं पश्चिम विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के रत्नमयी आभूषण माहेन्द्र स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर स्थित मञ्जूषाओं में अवस्थित रहते हैं ॥१८०-१८६॥

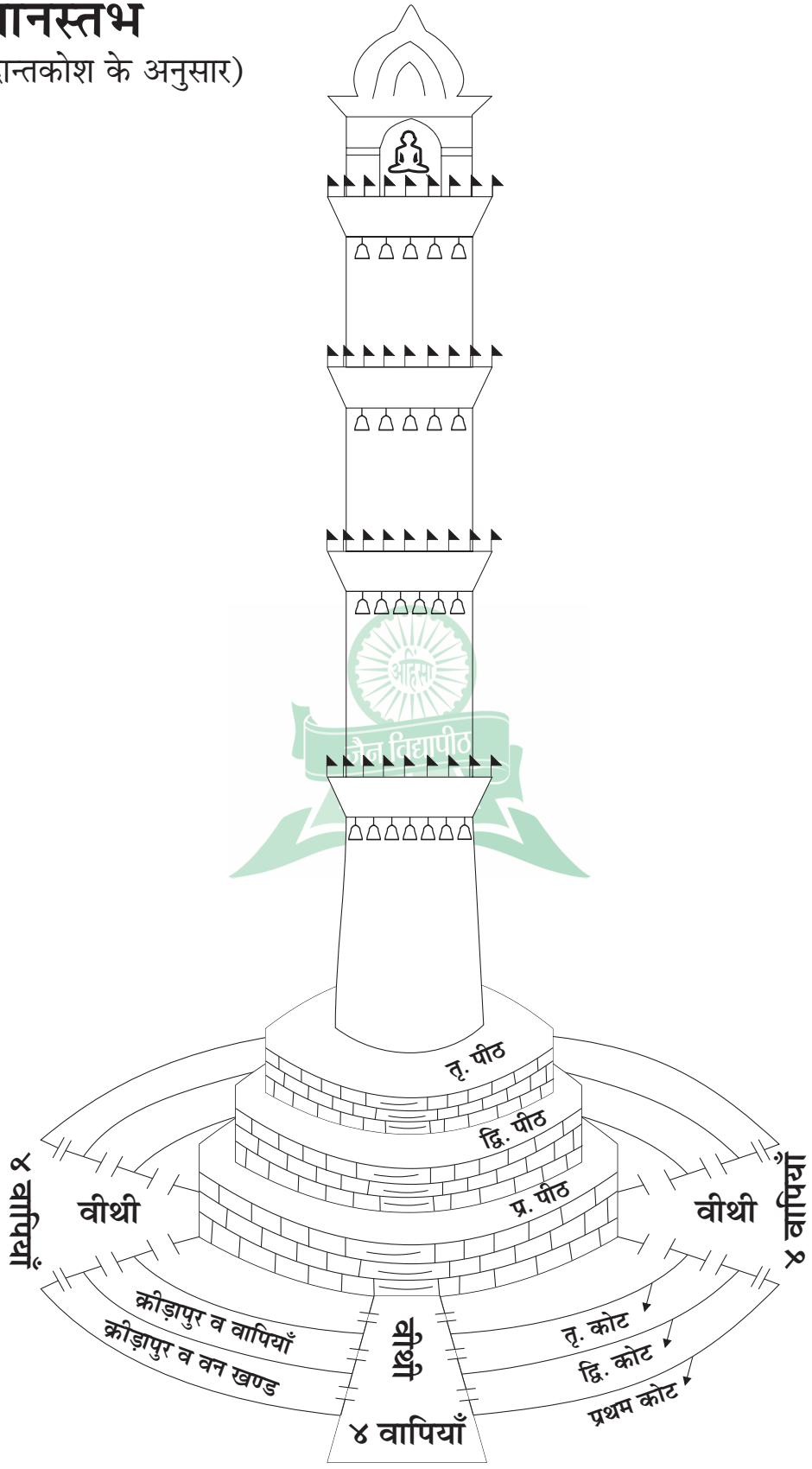
जिसका चित्रण निम्न प्रकार है-

(चित्र अगले पेज पर देखें)

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

मानस्तंभ

(जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार)



FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब इन्द्रों की उत्पत्ति गृह का अवस्थान एवं प्रमाण आदि कहते हैं–

तस्य पार्श्वेऽस्ति शक्रस्योपपादगृहमूर्जितम्।
अष्टयोजनविस्तारायामोन्नति युतं परम् ॥१८७॥
तस्मिन्गृहान्तरे रत्नशिलायुग्मं च विद्यते।
शिलासम्पुटयोर्गर्भे रत्नशय्यातिकोमला ॥१८८॥
कृतपुण्यस्य शक्रस्य तस्यां जन्मसुखाब्धिगम्।
सुखेन जायतेऽङ्गं सम्पूर्णमन्तर्मुहूर्ततः ॥१८९॥

अर्थ–मानस्तम्भ के पार्श्वभाग में ८ योजन चौड़ा, ८ योजन लम्बा, ८ योजन ऊँचा एवं अति श्रेष्ठ इन्द्र का उपपाद गृह है। उस उपपाद गृह के भीतर रत्नों की दो शिलाएँ हैं तथा उन शिलाओं के मध्य में अत्यन्त कोमल रत्न शय्याएँ हैं। उन शय्याओं पर पूर्वभव में किया है पुण्य जिन्होंने, ऐसे इन्द्रों की उत्पत्ति सुखपूर्वक होती है तथा उनका सुख समुद्र सदृश सम्पूर्ण शरीर अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण हो जाता है ॥१८७-१८९॥

अब कल्पवासी देवांगनाओं के उत्पत्ति स्थान कहते हैं–

षड्लक्षसद्विमानानि सौधर्मे सन्ति केवलम्।
स्वर्गदेवीसमुत्पादस्थानानि शाश्वतानि च ॥१९०॥
ईशाने स्युश्चतुर्लक्ष विमानाः सुरयोषिताम्।
लभन्ते केवलं येषु जन्म देव्यो न चामराः ॥१९१॥
एभ्य स्ताः स्वस्वसम्बंधिनीर्देवीश्च समुद्भवाः।
सनत्कुमारकल्पाद्यच्युतान्तवासिनोऽमराः ॥१९२॥
स्वस्वास्थानं नयन्त्याशु विज्ञायावधिना निजाः।
शेष कल्पेषु देवीनामुत्पादो नास्तिजातुचित् ॥१९३॥
सौधर्मैशानयोः शेषा ये विमाना हि तेषु च।
प्राप्नुवन्ति निजं जन्म देवा देव्यः शुभोदयात् ॥१९४॥

अर्थ–सौधर्म स्वर्ग में उत्तम और शाश्वत छह लाख विमान शुद्ध हैं, जिनमें (अच्युत स्वर्ग पर्यन्त के दक्षिण कल्पों की) मात्र देवांगनाओं की उत्पत्ति होती है तथा ईशान स्वर्ग में चार लाख विमान शुद्ध हैं, जिनमें (उत्तर कल्पों की) मात्र देवांगनाओं का जन्म होता है, इन (दस लाख) विमानों में देवों की उत्पत्ति नहीं होती। उत्पत्ति के तुरन्त बाद ही सनत्कुमार कल्प से अच्युत कल्प पर्यन्त के देव अपनी अपनी नियोगिनी देवांगनाओं को अवधिज्ञान से जानकर अपने-अपने स्थानों पर ले जाते हैं। सौधर्मैशान स्वर्गों को छोड़कर शेष स्वर्गों में देवांगनाओं की उत्पत्ति कदापि नहीं है। सौधर्म स्वर्गस्थ अवशेष (३२ लाख-६ लाख=२६ लाख) विमानों में तथा ऐशान स्वर्गस्थ अवशेष (२८ लाख-४

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लाख=२४ लाख) विमानों में शुभ कर्मोदय से युक्त देव एवं देवांगनाओं-दोनों की उत्पत्ति होती है ॥१९०-१९४॥

अब कल्पवासी देवों के प्रवीचार का कथन करते हैं–

सौधर्मैशानयोर्ज्योतिष्कभौमभावनेषु च।
सुखं कायप्रवीचारं देवा देव्यो भजन्ति च ॥१९५॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिदेवस्त्रियां भवेत्।
सुखं स्पर्शप्रवीचारमालिङ्गनादिजं महत् ॥१९६॥
स्याद्ब्रह्मादिचतुःस्वर्गस्थ देववरयोषिताम्।
सुखं रूपप्रवीचारं रूपादिदर्शनोद्भवम् ॥१९७॥
ततः शुक्रादिकल्पेषु चतुर्षु सुरयोषिताम्।
सुखं शब्दप्रवीचारं भवेद् गीतस्वरादिजम्।१९८॥
आनतादिचतुःस्वर्गवासिदेवी दिवौकसाम्।
सुखं मनःप्रवीचारं स्याद्देवी स्मरणोद्भवम् ॥१९९॥
अहमिन्द्राः परे विश्वे प्रवीचार सुखातिगाः।
कामदाहोज्झिताः सन्ति महाशर्माब्धिमध्यगाः ॥२००॥

अर्थ–[काम सेवन को प्रवीचार कहते हैं] सौधर्मैशान कल्पों, ज्योतिष्कों, भवनवासियों और व्यन्तरवासियों में देव एवं देवांगनाएँ काय (शरीर) प्रवीचार पूर्वक सुख भोगते हैं अर्थात् देव अपनी देवांगनाओं के साथ मनुष्यों के सदृश काम सेवन करते हैं किन्तु उनके वीर्य स्खलन नहीं होता क्योंकि उनका शरीर सप्त धातुओं से रहित है। सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों के देव अपनी देवांगनाओं के आलिंगन आदि से उत्पन्न होने वाले स्पर्श प्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते हैं। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ कल्पों के देव अपनी देवांगनाओं के रूपादिक के अवलोकन से उत्पन्न होने वाले रूप प्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते हैं। शुक्र-महाशुक्र और शतार-सहस्रार स्वर्गों के देव अपनी देवांगनाओं के गीत एवं स्वर आदि के सुनने से उत्पन्न होने वाला शब्द प्रवीचार रूप सुख भोगते हैं तथा आनतादि चार कल्पों के देव देवियों के स्मरण मात्र से उत्पन्न होने वाले मनः प्रवीचार रूप सुख का अनुभव करते हैं। इसके आगे नव ग्रैवेयक से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी देव अहमिन्द्र हैं। ये प्रवीचार (काम वासना) से रहित, काम दाह से रहित एवं अप्रवीचार जन्य महासुख समुद्र के मध्य अवगाहन करते हैं ॥१९५-२००॥

अब वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र एवं विक्रिया शक्ति में प्रमाण का कथन करते हैं–

सौधर्मेशानकल्पस्था देवाः पश्यन्ति चावधेः।
प्रथमक्षितिपर्यन्तान् रूपिद्रव्यांश्चराचरान् ॥२०१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनोऽवधिना स्वयम्।
लोकयन्ति द्वितीया क्ष्मा पर्यन्तं वस्तुसञ्चयान् ॥२०२॥
ब्रह्माख्यादिचतुःस्वर्गस्थाः प्रपश्यन्ति निर्जराः।
तृतीयभूमिपर्यन्तस्थितद्रव्याणि चावधेः ॥२०३॥
शुक्रादिक चतुःस्वर्गवासिनोऽवधिनेत्रतः।
चतुर्थी क्षिति सीमान्ताल्लोकन्ते द्रव्यसञ्चयान् ॥२०४॥
आनतादिचतुःकल्प वासिनः स्वावधेर्बलात्।
पञ्चमीक्ष्मान्तगान् रूपिद्रव्यान् पश्यन्ति चाखिलान् ॥२०५॥
नवग्रैवेयकस्थाहमिन्द्रा आलोकयन्ति च।
पदार्थान् रूपिणः षष्ठीधरान्तस्थान् निजावधेः ॥२०६॥
नवानुदिशपञ्चानुत्तरवास्यहमिन्द्रकाः ।
रूपिद्रव्यान् प्रपश्यन्ति सप्तमी क्ष्मान्तमञ्जसा ॥२०७॥
लोकनाडीगतान् विश्वान् रूपिद्रव्यांश्चराचरान्।
लोकन्तेऽवधिनेत्रेण पञ्चानुत्तरवासिनः ॥२०८॥
सौधर्ममुख्य पञ्चानुत्तरवासि सुधाभुजाम्।
प्रथमापृथिवीमुख्यलोकनाड्यन्तमध्यगाः ॥२०९॥
अवधिज्ञानतुल्यास्तिविक्रियर्द्धिरनेकधा ।
सप्तमी क्षितिपर्यन्तगमनागमन क्षमा ॥२१०॥
मतिश्रुतावधिज्ञानानि सदृष्टिदिवौकसाम्।
सम्यग्भवन्ति रूप्यर्थप्रत्यक्षज्ञायकान्यपि ॥२११॥
मिथ्यादृष्टिकुदेवानां विपरीतानि तानि च।
कुज्ञानानि प्रजायन्ते विपरीतार्थ वेदनात् ॥२१२॥

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प स्थित देव अपने अवधिज्ञान से नरक की प्रथम पृथ्वीपर्यन्त के रूपी द्रव्यों को चराचर देखते हैं। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्प स्थित देव अपने अवधि नेत्र से दूसरी वंशा पृथ्वी पर्यन्त के समस्त रूपी द्रव्यों को जानते हैं। ब्रह्मादि चार स्वर्गस्थ देव तीसरी मेघा पृथ्वी पर्यन्त के रूपी द्रव्यों को अवधि द्वारा जानते हैं। शुक्रादि चार स्वर्गस्थ देव अपने अवधि नेत्र से चौथी अञ्जना पृथ्वी पर्यन्त के सकल रूपी द्रव्यों को जानते हैं। आनतादि चार स्वर्गस्थ देव अपने अवधिज्ञान के बल से पाँचवीं अरिष्टा पृथ्वी पर्यन्त के समस्त रूपी द्रव्यों को देखते हैं। नव ग्रैवेयक स्वर्गों में स्थित देव छठी मघवी पृथ्वी पर्यन्त के सकल रूपी द्रव्यों को अपने अवधिज्ञान से जानते हैं। नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तर अर्थात् चौदह विमानों में स्थित अहमिन्द्र सातवीं माघवी पृथ्वी पर्यन्त के रूपी द्रव्यों को जानते हैं और पाँच अनुत्तर विमानवासी देव अपने अवधि नेत्र से लोकनाड़ी पर्यन्त के सर्व रूपी द्रव्यों को

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अपने अवधि नेत्र से चराचर देखते हैं। सौधर्म स्वर्ग से लेकर पाँच अनुत्तर पर्यन्त के देव क्रमशः नरक की प्रथम पृथ्वी से लोकनाड़ी के भीतर सप्तम पृथ्वी पर्यन्त अवधिज्ञान के सदृश ही अनेक प्रकार की विक्रिया करने की शक्ति से सम्पन्न होते हैं तथा इसी प्रकार सप्तम पृथ्वी पर्यन्त गमनागमन की शक्ति से भी सयुक्त होते हैं। स्वर्गों में सम्यग्दृष्टि देवों के मति, श्रुत एवं अवधिज्ञान समीचीन होते हैं, जिससे ये रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि देवों के ये तीनों ज्ञान मिथ्या होते हैं, क्योंकि वे (कारणादि विपर्यास के कारण) पदार्थों (तत्त्वों) को विपरीत जानते हैं अतः उनका ज्ञान कुज्ञान कहलाता है ॥२०१-२१२॥

अब वैमानिक देवों के जन्म-मरण के अन्तर का निरूपण करते हैं—

सौधर्मैशानयोः प्रोक्तमुत्पत्तौ मरणेऽन्तरम्।
उत्कृष्टेन च देवानां दिनानि सप्त नान्यथा ॥२१३॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रवासिनां कर्मपाकतः।
सम्भवे मरणेख्यातं पक्षैकमन्तरं परम् ॥२१४॥
अन्तरं ब्रह्मनाकादि चतुःस्वर्ग निवासिनाम्।
उत्पत्तौ च्यवने स्याच्च महन्मासैकमेवहि ॥२१५॥
अन्तरं मरणोत्पत्तौ भवेच्च नाकिनां विधेः।
मासौ द्वौ परमं शुक्रादिकस्वर्ग चतुष्टये ॥२१६॥
आनतादि चतुःस्वर्गवासिनामुत्तमान्तरम्।
चतुर्मासावधिर्ज्ञेयं मरणे सम्भवे तथा ॥२१७॥
नवग्रैवेयकाद्येषु मरणे च समुद्भवे।
सर्वेषामहमिन्द्राणां मासषट्कं परान्तरम् ॥२१८॥

अर्थ—[उत्कृष्टता से जितने काल तक किसी भी जीव का जन्म न हो उसे जन्मान्तर और मरण न हो उसे मरणान्तर कहते हैं] सौधर्मैशान इन कल्पों में यदि कोई भी जीव जन्म न ले तो अधिक से अधिक सात दिन पर्यन्त न ले। इसी प्रकार मरण न करे तो सात दिन पर्यन्त न करे, इसलिये वहाँ देवों के जन्म-मरण का अन्तर सात दिन कहा गया है। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पवासी देवों के कर्म उदयानुसार जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर एक पक्ष है। ब्रह्म आदि चार स्वर्गों के देवों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर एक माह है। शुक्र आदि चार स्वर्गों के देवों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर दो मास है। आनतादि चार स्वर्गों में निवास करने वाले देवों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर चार माह का जानना चाहिए। नव ग्रैवेयक आदि उपरिम सर्व विमानों में उत्पन्न होने वाले सर्व अहमिन्द्रों का उत्कृष्ट जन्मान्तर एवं मरणान्तर छह माह का है ॥२१३-२१८॥

अब इन्द्रादिकों के जन्म-मरण का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इन्द्रस्य च महादेव्या लोकपालस्य दुस्सहः।
जायते विरहो मासषट्कं हि च्यवने महान् ॥२१९॥
त्रायस्त्रिंशसुराणां च सामानिकसुधाशिनाम्।
अङ्गरक्षकदेवानां च्यवने सति दुस्सहम् ॥२२०॥
परिषत्त्रयदेवानां वियोगोद्भवमन्तरे।
मानसं जायते दुःखं चतुर्मासान्तमुत्तमम् ॥२२१॥

अर्थ—इन्द्र, इन्द्र की महादेवी और लोकपाल इनका दुस्सह उत्कृष्ट विरहकाल छह माह प्रमाण है। अर्थात् इनका मरण होने पर कोई अन्य जीव उस स्थान पर अधिक से अधिक छह माह तक जन्म नहीं लेगा। त्रायस्त्रिंश, सामानिक, अंगरक्षक और पारिषद देवों का मरण होने के बाद उनके दुस्सह वियोग से उत्पन्न होने वाला मानसिक दुःख उत्कृष्ट रूप से चार माह पर्यन्त होता है। अर्थात् इनका उत्कृष्ट विरहकाल चार माह है ॥२१९-२२१॥

अब देव विशेषों के अन्तिम उत्पत्ति स्थानों का प्रतिपादन करते हैं—

ईशानान्तं प्रजायन्ते कन्दर्पाः कुत्सिताः सुराः।
लान्तवस्वर्गपर्यन्तं नीचाः किल्विषिकामराः ॥२२२॥
अच्युतान्तेषु कल्पेषूत्पद्यन्ते वाहनामराः।
आभियोगिकसंज्ञाश्च स्वपापपुण्यपाकतः ॥२२३॥

अर्थ—(कन्दर्प परिणामी मनुष्य) अपने-अपने पाप एवं पुण्योदय से कुत्सित परिणामी कन्दर्प जाति के देवों में ईशान कल्प पर्यन्त, (किल्विषिक परिणामी मनुष्य) नीच परिणामी किल्विष जाति के देवों में लान्तव कल्प पर्यन्त और (अभियोग्य भावना से युक्त मनुष्य) आभियोगिक है नाम जिनका, ऐसे वाहन जाति के देवों में अच्युत कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं (इनकी उत्पत्ति क्षेत्र सम्बन्धी जघन्यायु होती है) ॥२२२-२२३॥

अब प्रथमादि युगलों में स्थित देवों की स्थिति विशेष कहते हैं—

आयुः पल्यं जघन्यं स्यादुत्कृष्टं सागरार्धकम्।
सौधर्मस्यादिमेऽन्ते पटले सार्धौ द्विसागरौ ॥२२४॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सार्धसप्तसागराः।
ब्रह्मब्रह्मोत्तरे चायुर्महत्सार्धदशाब्धयः ॥२२५॥
आयुर्लान्तवकापिष्टे सार्धद्विसप्तवार्धयः।
तथा शुक्रमहाशुक्रयोः सार्धषोडशाब्धयः ॥२२६॥
शतारादिद्वये चायुः सार्धाष्टादशसागराः।
आनतप्राणतस्वर्गे प्रोत्कृष्टं विंशवार्धयः ॥२२७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आरणाच्युतयोर्देवानां तद् द्वाविंशसागराः।
ततः सागर एकैक आदिग्रैवेयकादिषु ॥२२८॥
वर्धते चाहमिन्द्राणां यावद्ग्रैवेयकान्तिमे।
आयुस्तिष्ठति वार्धीनामेकत्रिंशन्मितं परम् ॥२२९॥
नवानुदिशदेवानामायुर्द्वात्रिंशदब्धयः ।
पञ्चानुत्तरदेवानां त्रयस्त्रिंशच्च सागराः ॥२३०॥
इत्युत्कृष्टं पृथक् प्रोक्तमायुश्च नाकिनां क्रमात्।
अधःस्थे पटले ज्येष्ठं यत्तदूर्ध्वजघन्यकम् ॥२३१॥

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प के प्रथम पटल में जघन्य आयु एक पल्य और उत्कृष्ट आयु अर्ध सागर प्रमाण तथा अन्तिम पटल में उत्कृष्ट आयु २$\frac{१}{२}$ सागर प्रमाण है। सनत्कुमार-माहेन्द्र की उत्कृष्ट आयु ७ $\frac{१}{२}$ सागर तथा ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर की १०$\frac{१}{२}$ सागर प्रमाण है। लान्तव-कापिष्ठ कल्पों की १४ सागर एवं शुक्र-महाशुक्र युगल की उत्कृष्ट आयु १६ $\frac{१}{२}$ सागर प्रमाण है। शतार-सहस्रार की १८ सागर और आनत-प्राणत युगल की उत्कृष्ट आयु २० सागर प्रमाण है। आरण-अच्युत स्वर्गों की उत्कृष्ट आयु २२ सागर प्रमाण है। इसके आगे प्रथमादि नव ग्रैवेयकों में स्थित अहमिन्द्रों की आयु में क्रमशः एक-एक सागर की वृद्धि (२३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० सागर) होते हुए अन्तिम ग्रैवेयक की उत्कृष्ट आयु ३१ सागर प्रमाण है। नव अनुदिश स्थित देवों की आयु ३२ सागर तथा पंच अनुत्तरों में स्थित देवों की उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण है। इस प्रकार देवों की पृथक्-पृथक् उत्कृष्ट आयु क्रमशः कही गई है। नीचे-नीचे के पटलों (कल्पों) की जो उत्कृष्ट आयु होती है, ऊपर-ऊपर के पटलों की वही जघन्य आयु कही जाती है ॥२२४-२३१॥

(**नोट—**१२ वें स्वर्ग तक की आयु में जो आधा-आधा सागर अधिक कहा है, वह घातायुष्क की अपेक्षा कहा है।

अब प्रत्येक पटलों में स्थित देवों की आयु पृथक्-पृथक् कहते हैं—

पुनर्विस्तरेण पटलं पटलं प्रति देवानां पृथगायुरुच्यते—

सौधर्मैशानयोः प्रथमे पटले देवानां जघन्यायुः पल्योपमं, उत्कृष्टं अर्धसागरः। द्वितीये चोत्कृष्टमायुः सागरत्रिंशद् भागानां सप्तदशभागाः। तृतीये त्रिंशद् भागानां एकोनविंशतिभागाश्च। चतुर्थे आयुस्त्रिंशद् भागानां एकविंशतिभागाः। पञ्चिमे चायुः त्रिंशद् भागानां त्रयोविंशतिभागाः। षष्ठे त्रिंशद् भागानां पञ्चविंशति भागाश्च सप्तमे त्रिंशद्भागानां सप्तविंशतिभागाः। अष्टमे सागरत्रिंशद्भागानां एकोनत्रिंशद् भागाः। नवमे चायुः सागरैकः, सागरस्य त्रिंशद्भागानामेकोभागः। दशमे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां त्रयो भागाः। एकदशमे आयु सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां पञ्चभागाः। द्वादशमे सागरैकः सागरत्रिंशद् भागानां सप्तभागाश्च। त्रयोदशमे सागरैकः सागरत्रिंशद् भागानां नवभागाः। चतुर्दशमे सागरैकः सागर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

त्रिशद्भागानां एकादशभागाः। पञ्चदशे आयुः सागरैकः सागर त्रिशद्भागानां त्रयोदशभागाः। षोडशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां पञ्चदशभागाः। सप्तदशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां सप्तदशभागाः। अष्टादशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां एकोनविंशतिभागाः। एकोनविंशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां एकविंशति भागाः। विंशे सागरैकः सागरत्रिंशद् भागानां त्रयोविंशतिभागाः। एकविंशे सागरैकः सागरत्रिंशद् भागानां पञ्चविंशतिभागाः। द्वाविंशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां सप्तविंशति भागाः। त्रयोविंशे सागरैकः सागरत्रिंशद्भागानां एकोनत्रिंशद्भागाः। चतुर्विंशे आयुः सागरौ द्वौ सागरत्रिंशद्भागानामेको भागः। पञ्चविंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिंशद्भागानां त्रयोभागाः। षड्विंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिंशद्भागानां पञ्चभागाः। सप्तविंशे द्वौ सागरौ सागरविंशद् भागानां सप्तभागाश्च। अष्टाविंशे द्वौ सागरौ सागरत्रिंशद्भागानां नवभागाश्च। एकोनत्रिंशत्पटले द्वौ सागरौ सागरत्रिंशद्भागानां एकादशभागाः। त्रिंशत्संख्यके द्वौ सागरौ सागरत्रिंशद्भागानां त्रयोदशभागाः। अन्तिमे पटले देवानामुत्कृष्टमायुश्च साधौं द्वौ सागरौ। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः नाकिनामादिमे पटले आयुरुत्कृष्टं त्रयोऽब्धयः अब्धि चतुर्दशभागानां त्रयोभागाः। द्वितीये चायुः सागरास्त्रयः सागरचतुर्दशभागानां त्रयोदशभागाः। तृतीये आयुश्चत्वारः सागराः सागर-चतुर्दशभागानां नवभागाः। चतुर्थे पञ्चसागराः सागरचतुर्दशभागानां पञ्चभागाः। पञ्चमे षट् सागराः सागर चतुर्दशभागानामेको भागः। षष्ठे षट्सागराः सागरचतुर्दशभागानां एकादशभागाः। सप्तमे पटले देवानां परमायुः सार्धसप्तसागराः। ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः प्रथमे पटले देवानामुत्कृष्टमायुः सपादा अष्टौ सागराः। द्वितीये चायुर्नवसागराः। तृतीयें पादोन दशसागराः। चतुर्थे पटले नाकिनामुत्कृष्टास्थितिः सार्धदशसागरोपमानि। लान्तव-कापिष्टयोरमराणामुत्कृष्टमायुः प्रथमे पटले सार्धद्वादशाब्ध्यः। द्वितीये चायुः सार्धचतुर्दशसागरोपमानि। शुक्रमहाशुक्रयो पटलैकस्मिन् नाकिनां परमायुः सार्धषोडशसागरोपमाणि। शतारसहस्त्रारयोरेकस्मिन् पटले देवानां ज्येष्ठमायुः सार्धाष्टादशसागरोपमाणि। आनतप्राणतयोः प्रथमे पटले देवानां परास्थितिरेकोन विंशतिवार्धयः। द्वितीये च सार्धैकोनविंशति सागराः। तृतीये नाकिनां परमायुः विंशतिसागरोपमानि। आरणाच्युतयोरुत्कृष्टमायुः स्वर्गिणां प्रथमे पटले सागराः विंशतिः सागरत्रिभागीकृतस्य द्वौ भागौ। द्वितीये चायुरेकविंशतिसागराः सागरस्य तृतीयो भागः। तृतीये पटले देवानां परास्थितिः द्वाविंशतिसागरोपमाणि। ततः अधः प्रथमग्रैवेयके अहमिन्द्राणां परमायुस्त्रयो विंशतिवार्धयः अधो द्वितीयग्रैवेयके चायुश्चतुर्विंशतिसागराः। अधस्तृतीयग्रैवेयके परास्थितिः पञ्चविंशति जलधयः। मध्यप्रथमग्रैवेयके चायुः षड्विंशतिवार्धयः। मध्य द्वितीयग्रैवेयके चायुः सप्तविंशतिसागराः, मध्यतृतीयग्रैवेयके परास्थितिरष्टाविंशतिसागरोपमाणि। ऊर्ध्वप्रथमग्रैवेयके परमायुरेकोनत्रिंशद्वार्धयः। ऊर्ध्वद्वितीयग्रैवेयके चायुस्त्रिंशत्सागराः। ऊर्ध्वतृतीयग्रैवेयके अहमिन्द्राणां परा स्थितिः एकत्रिंशत्-सागरोपमाणि। नवानुदिशे अहमिन्द्राणां परमायुर्द्वात्रिंशत्सागरोपमाणि। पञ्चानुत्तरे अहमिन्द्राणां परास्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि अधःस्थ पटले यदुत्कृष्टायुः तदूर्ध्वपटले जघन्यं ज्ञातव्यं।

अर्थ—उपर्युक्त संस्कृत गद्य में प्रत्येक कल्पों के प्रत्येक पटलों की उत्कृष्ट आयु का पृथक्-पृथक् दिग्दर्शन कराया गया है, जिसका सम्पूर्ण अर्थ निम्नांकित तालिका में निहित है–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एकत्रित दिग्दर्शन–

क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु	क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु	क्रमांक	पटल नाम	उत्कृष्टायु
१	ऋतु	$\frac{१}{२}$ सा. + $\frac{२}{३०}$ =	२१	अभ्र	१ $\frac{२५}{३०}$	३	ब्रह्म	९ $\frac{३}{४}$ सा.
२	विमल	$\frac{१७}{३०}$,,	२२	हरित	१ $\frac{२७}{३०}$	४	ब्रह्मोत्तर	१० $\frac{१}{२}$ सा.+२ =
३	चन्द्र	$\frac{१९}{३०}$,,	२३	पद्म	१ $\frac{२९}{३०}$	१	ब्रह्म हृदय	१२ $\frac{१}{२}$ सा.
४	वल्गु	$\frac{२१}{३०}$,,	२४	लोहित	२ $\frac{१}{३०}$	२	लान्तव	१४ $\frac{१}{२}$,, +२ =
५	वीर	$\frac{२३}{३०}$,,	२५	वज्र	२ $\frac{३}{३०}$	१	शुक्र	१६ $\frac{१}{२}$,, +२ =
६	अरुण	$\frac{२५}{३०}$,,	२६	नन्द्या.	२ $\frac{५}{३०}$	१	शतार	१८ $\frac{१}{२}$,, + $\frac{१}{२}$ =
७	नन्दन	$\frac{२७}{३०}$,,	२७	प्रभङ्कर	२ $\frac{७}{३०}$	१	आनत	१९ सा.
८	नलिन	$\frac{२९}{३०}$,,	२८	पृष्टक	२ $\frac{९}{३०}$	२	प्राणत	१९ $\frac{१}{२}$,,
९	काञ्चन	१ $\frac{१}{३०}$,,	२९	गज	२ $\frac{११}{३०}$	३	पुष्पक	२० ,, + $\frac{२}{३}$ =
१०	रोहित	१ $\frac{३}{३०}$,,	३०	मित्र	२ $\frac{१३}{३०}$	१	सातक	२० $\frac{२}{३}$,,
११	चञ्चत्	१ $\frac{५}{३०}$,,	३१	प्रभ	२ $\frac{१५}{३०}$ या २ $\frac{१}{२}$ सा. + $\frac{१०}{१४}$ =	२	आरण	२१ $\frac{१}{२}$,,
१२	मरुत्	१ $\frac{७}{३०}$,,	१	अञ्जन	३ $\frac{३}{१४}$	३	अच्युत	२२ सा.
१३	ऋद्धीश	१ $\frac{९}{३०}$,,	२	वनमाल	३ $\frac{१३}{१४}$	१	सुदर्शन	२३ ,,
१४	वैडूर्य	१ $\frac{११}{३०}$,,	३	नाम	४ $\frac{९}{१४}$	२	अमोघ	२४ ,,
१५	रुचक	१ $\frac{१३}{३०}$,,	४	गरुड़	५ $\frac{५}{१४}$	३	सुप्रबुद्ध	२५ ,,
१६	रुचिक	१ $\frac{१५}{३०}$,,	५	लाङ्गल	६ $\frac{१}{१४}$	१	यशोधर	२६ ,,
१७	अंक	१ $\frac{१७}{३०}$,,	६	वलभद्र	६ $\frac{११}{१४}$	२	सुभद्र	२७ ,,
१८	स्फटिक	१ $\frac{१९}{३०}$,,	७	चक्र	७ $\frac{१}{२}$ सा. + $\frac{३}{४}$ =	३	सुविशाल	२८ ,,
१९	तपनीय	१ $\frac{२१}{३०}$,,	१	अरिष्ट	८ $\frac{१}{४}$	१	सुमनस	२९ ,,
२०	मेघ	१ $\frac{२३}{३०}$,,	२	सुरस	९ सा.	२	सौमनस	३० ,,
						३	प्रीतिंकर	३१ ,,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अवशेष अर्थ—नव अनुदिशों में स्थित अहमिन्द्रों की उत्कृष्ट आयु ३२ सागर प्रमाण एवं पाँच अनुत्तरों में स्थित अहमिन्द्रों की उत्कृष्ट आयु ३३ सागर प्रमाण होती है।

सौधर्मैशान कल्प के प्रथम पटल में स्थित देवों की जघन्यायु एक पल्योपम प्रमाण होती है। इसके आगे नीचे नीचे के पटलों की जो उत्कृष्ट आयु होती है, वही ऊर्ध्व-ऊर्ध्व पटलों में स्थित देवों की जघन्यायु जानना चाहिए।

अब देवों में आयु की हानि एवं वृद्धि के कारण तथा उसके प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैं—

ससम्यक्त्वस्य देवस्य सागरार्धं हि वर्धते।
आयुर्यावत्सहस्त्रारं मिथ्यात्वारिविघातनात् ॥२३२॥
मिथ्यात्वागत देवस्य सम्यक्त्वरत्ननाशनात्।
हीयते सागरार्धायुरिति स्थितिश्च नाकिनाम् ॥२३३॥
ज्योतिर्भावनभौमेषु सम्यक्त्वाप्राप्तितोऽङ्गिनः।
किञ्चिद् व्रततपः पुण्यादुत्पद्यन्ते भवाध्वगाः ॥२३४॥
सम्यक्त्वप्राप्तिधर्मेण स्वायुर्भवनवासिनाम्।
सागरार्धं प्रवर्द्धेत मिथ्यात्वशत्रुघातनात् ॥२३५॥
ज्योतिष्कव्यन्तराणां चायुः पल्यार्धं प्रवर्धते।
मिथ्यात्वारिविनाशेन सम्यक्त्वमणिलाभतः ॥२३६॥
सर्वत्र विश्वदेवानां मिथ्यात्वदुर्विषोज्झनात्।
सम्यक्त्वामृत पानेन स्वायुः सम्वर्धतेतराम् ॥२३७॥
पल्यैकस्याप्यसंख्यातभागप्रममिति स्फुटम्।
स्थितिं वदन्ति देवानामागमे स्थितिवेदिनः ॥२३८॥

अर्थ—सौधर्म स्वर्ग से सहस्त्रार स्वर्ग पर्यन्त मिथ्यात्वरूपी शत्रु का नाश करने वाले सम्यग्दृष्टि देवों की आयु में अर्ध सागर की वृद्धि होती है तथा सम्यक्त्वरूपी रत्न का नाश होने से मिथ्यात्व को प्राप्त हुए देवों की आयु में से यह अर्ध सागर हीन हो जाती है। जिन मनुष्यों को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हुई, वे किञ्चित् व्रत एवं तप आदि से उपार्जित पुण्योदय से ज्योतिषी, भवनवासी एवं व्यन्तर वासी देवों में उत्पन्न होते हैं और पुनः संसाररूपी मार्ग में भ्रमण करते हैं। मिथ्यात्वरूपी शत्रु के नाश से तथा सम्यक्त्व प्राप्तिरूप धर्म से भवनवासी देवों की अपनी-अपनी आयु में अर्ध सागर की वृद्धि होती है तथा मिथ्यात्वरूपी शत्रु के विनाश एवं सम्यक्त्व मणि के लाभ से ज्योतिष्क तथा व्यन्तर वासी देवों को आयु में अर्ध पल्य की वृद्धि होती है। स्थिति आदि को जानने वाले गणधरादि देवों ने आगम में मिथ्यात्वरूपी विष को छोड़ने और सम्यक्त्वरूपी अमृत के पान से युक्त सर्वत्र अर्थात् बारहवें स्वर्ग पर्यन्त समस्त देवों की अपनी-अपनी (घात) आयु में पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण (जघन्य) वृद्धि कही है ॥२३२-२३८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब कल्पवासी देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहते हैं–

सौधर्मे च जघन्यायुः पादाग्रपल्यसंख्यकम्।
देवीनामायुरुत्कृष्टं पञ्चपल्योपमानि च ॥२३९॥
ईशाने सप्तपल्यानि ज्येष्ठायुर्देवयोषिताम्।
सनत्कुमारकल्पे च नवपल्योपमान्यपि ॥२४०॥
माहेन्द्रे योषितामायुः पल्यैकादशसम्मितम्।
ब्रह्मकल्पे परायुश्च पल्योपमास्त्रयोदश ॥२४१॥
ब्रह्मोत्तरे स्थितिः स्त्रीणां पल्यपञ्चदशप्रमा।
लान्तवे च परायुष्कं पल्यं सप्तदशप्रमम्।२४२॥
कापिष्टे जीवितं पल्योपमान्येकोनविंशतिः।
शुक्रं स्त्रीणां परायुश्च पल्यानि ह्येकविंशतिः।२४३॥
महाशुक्रे स्थितिः पल्यत्रयोविंशतिसम्मिता।
शतारे योषितामायुः पल्यानि पञ्चविंशतिः ॥२४४॥
सहस्त्रारे स्थितिः स्त्रीणां पल्यानि सप्तविंशतिः।
आनते जीवितं पल्यचतुस्त्रिंशत्प्रमं भवेद् ॥२४५॥
प्राणते जीवितं पल्यैकचत्वारिंशदुत्तमम्।
आरणे योषितां पल्याष्टचत्वारिंशदूर्जितम् ॥२४६॥
अच्युते पञ्चपञ्चाशत्पल्यान्यायुश्च योषिताम्।
पुनरासां ब्रुबेऽप्यायुरन्यशास्त्रोक्तमञ्जसा ॥२४७॥

अर्थ–सौधर्म स्वर्ग में स्थित देवियों की जघन्य आयु १$\frac{१}{४}$ पल्य एवं उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य प्रमाण होती है। ईशान स्वर्गस्थ देवियों की आयु सात पल्य एवं सनत्कुमार कल्प स्थित देवियों की उत्कृष्ट आयु नव पल्य होती है। माहेन्द्र स्वर्गस्थ देवियों की आयु ग्यारह पल्य तथा ब्रह्म कल्प स्थित देवियों की उत्कृष्ट आयु तेरह पल्य प्रमाण होती है। ब्रह्मोत्तर स्वर्ग स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु पन्द्रह पल्य प्रमाण होती है तथा लान्तव स्वर्गस्थ देवांगनाओं की आयु सत्रह पल्य होती है। कापिष्ठ कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु उन्नीस पल्य एवं शुक्र कल्प में इक्कीस पल्य प्रमाण होती है। महाशुक्र स्थित की तेईस पल्य तथा शतार कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु पच्चीस पल्य प्रमाण होती है। सहस्त्रार कल्प में स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु २७ पल्य तथा आनत कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ३४ पल्य प्रमाण है। प्राणत कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ४१ पल्य तथा आरण स्वर्ग स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ४८ पल्य प्रमाण है और अच्युत कल्प स्थित देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ५५ पल्य प्रमाण होती है।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

वैमानिक देवांगनाओं की जघन्य-उत्कृष्ट आयु का चार्ट–

कल्प	सौधर्म	ऐशान	सा.	मा.	ब्रह्म	ब्रह्मो.	ला.	का.	शु.	म.	श.	स.	आ.	प्रा.	आ.	अ.
जघन्यायु	सवा पल्य	१$\frac{१}{४}$ पल्य	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८ पल्य
उत्कृष्टायु	५ पल्य	७ पल्य	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८	५५ पल्य

इन वैमानिक देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु, अन्य शास्त्रों के अनुसार पुनः कहते हैं ॥२३९-२४७॥

अब देवांगनाओं की अन्य शास्त्रोक्त उत्कृष्ट आयु का प्रमाण कहते हैं–

सौधर्मैशानयोश्चायुर्देवीनां पल्यपञ्चकम्।
द्वितीये युगले चायुः पल्यसप्तदशप्रमम् ॥२४८॥
स्थितिर्युग्मे तृतीये च पल्यानि पञ्चविंशतिः।
चतुर्थे योषितां पल्याः पञ्चत्रिंशच्च जीवितम् ॥२४९॥
पञ्चमे जीवितं चत्वारिंशत्पल्यानि योषिताम्।
षष्ठे पल्योपमाः पञ्चचत्वारिंशत् स्थितिः परा ॥२५०॥
सप्तमे युगले स्त्रीणां पञ्चाशत्पल्यजीवितम्।
अष्टमे पञ्चपञ्चाशत्पल्यायुर्देवयोषिताम् ॥२५१॥
ग्राह्य एकोपदेशो मध्येऽनोयरुपदेशयोः।
प्रमाणीकृत्य तीर्थेशवचः छद्मस्थयोगिभिः ॥२५२॥

अर्थ–सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल में देवियों की उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य, एवं द्वितीय युगल में सात पल्य प्रमाण होती है। तृतीय युगल में २५ पल्य तथा चतुर्थ युगल में देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ३५ पल्य प्रमाण होती है। पंचम युगल में ४० पल्य और षष्ठ युगल में देवांगनाओं की उत्कृष्ट आयु ४५ पल्य प्रमाण होती है। सप्तम युगल में देवांगनाओं की आयु ५० पल्य एवं अष्टम युगल में देवियों की उत्कृष्ट आयु ५५ पल्य प्रमाण होती है। तीर्थंकर देव के वचनों को प्रमाण करके छद्मस्थ योगिराजों के द्वारा उपर्युक्त दोनों उपदेशों में से एक उपदेश ही ग्रहण करना चाहिए ॥२४८-२५२॥

अब देवों के शरीर का उत्सेध कहते हैं–

सौधर्मैशानयोर्देवदेहः सप्तकरोन्नतः।
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां च षट्करः ॥२५३॥
स्याद् ब्रह्मादि चतुःस्वर्गे कायः पञ्चकरोच्छ्रितः।
शुक्रादिकचतुर्नाके देवाङ्गोच्चः चतुः करैः ॥२५४॥
आनतप्राणते देवाङ्गः सार्धत्रिकरोदयः।
आरणच्युतयोः कायो देवानां त्रिकरोन्नतः ॥२५५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सार्धद्विकरदेहोच्चोऽस्त्यधोग्रैवेयकत्रिषु ।
देवानां द्विकराङ्गोच्चो मध्यग्रैवेयकत्रिषु ॥२५६॥
सार्धैकहस्तदेहोच्च ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिषु।
नवानुदिशसंज्ञेऽङ्गं सपादैक करोन्नतम् ॥२५७॥
पञ्चानुत्तरसंज्ञेऽहमिन्द्राणां विस्फुरत्प्रभः।
एकहस्तोन्नतो दिव्यः कायोवैक्रियिको भवेत् ॥२५८॥

अर्थ—सौधर्मैशान कल्प स्थित देवों के शरीर की ऊँचाई सात (७) हस्त प्रमाण एवं सानत्कुमार-माहेन्द्र में ६ हस्त प्रमाण है। ब्रह्मादि चार स्वर्गों में ऊँचाई ५ हस्त एवं शुक्रादि चार स्वर्गों में देवों के शरीर की ऊँचाई ४ हस्त प्रमाण होती है। आनत-प्राणत कल्प में शरीर का उत्सेध ३ $\frac{१}{२}$ हस्त प्रमाण तथा आरण-अच्युत स्वर्ग में देवों के शरीर का उत्सेध ३ हस्त प्रमाण है। तीनों अधो ग्रैवेयकों में उत्सेध २ $\frac{१}{२}$ हस्त तथा तीनों मध्य ग्रैवेयकों में देवों के शरीर का उत्सेध २ हस्त प्रमाण है। तीनों ऊर्ध्व ग्रैवेयकों में देह का उत्सेध १ $\frac{१}{२}$ हस्त एवं नव अनुदिशों में काय उत्सेध १ $\frac{१}{४}$ हस्त प्रमाण है। पंच अनुत्तरों में अहमिन्द्रों के तेजोमय, दिव्य वैक्रियिक शरीर का उत्सेध एक हस्त प्रमाण होता है ॥२५३-२५८॥

अब वैमानिक देवों के आहार एवं उच्छ्वास के समय का निर्धारण करते हैं—

सौधर्मादियुगे देवानां द्विसहस्त्रवत्सरैः।
गतैराहारउच्छ्वासो भवेत्पक्षद्वये गते ॥२५९॥
द्वितीये युगले सप्तसहस्त्राब्दैर्विनिर्गतैः।
देवानां मानसाहार उच्छ्वासः पक्षसप्तके ॥२६०॥
तृतीयेऽब्दसहस्त्राणां नाकिनां दशभिर्गतैः।
सुधाहारोऽस्ति चोच्छ्वासो मनाक् पक्षदशातिगैः ॥२६१॥
चतुर्थे युगले वर्षचतुर्दशसहस्त्रकैः।
गतैराहार उच्छ्वासो द्विसप्तपक्षनिर्गमैः ॥२६२॥
पञ्चमे वत्सराणां गतैः षोडशसहस्त्रकैः।
सुधाहारो वरोच्छ्वासः पक्षैः षोडशभिर्गतैः ॥२६३॥
षष्ठेऽतिगैश्च वर्षाणामष्टादशसहस्त्रकैः।
मानसाहार उच्छ्वासः पक्षैरष्टादशैर्गतैः ॥२६४॥
सप्तमे युगले वर्षैर्गतैर्विंशसहस्त्रकैः।
सुधाहारो लघूच्छ्वासो विंशपक्षैर्विनिर्गतैः ॥२६५॥
अष्टमे नाकिनां चाहारो द्वाविंशसहस्त्रकैः।
वर्षैर्गतैः शुभोच्छ्वासः पक्षैर्द्वाविंशनिर्गमैः ॥२६६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आद्ये ग्रैवेयकेऽतीतैस्त्रयोविंशसहस्त्रकैः।
वर्षैराहार उच्छ्वासः पक्षोनवर्षनिर्गमे ॥२६७॥
द्वितीये चाहमिन्द्राणां चतुर्विंशसहस्त्रकैः।
अब्दैराहार उच्छ्वासो गतेर्वर्षैर्मनागपि ॥२६८॥
तृतीये स्यात् सुधाहारः पञ्चविंशसहस्त्रकैः।
गतैर्वर्षैः शुभोच्छ्वासः पक्षाग्रवत्सरे गते ॥२६९॥
चतुर्थे मानसाहारोऽब्दषड्विंशसहस्त्रकैः।
गतैःसुगन्धिरुच्छ्वासः पक्षैः षड्विंशतिप्रमैः ॥२७०॥
पञ्चमे वत्सराणां च सप्तविंशसहस्त्रकैः।
गतैराहार उच्छ्वासस्त्रिपक्षाग्राब्दनिर्गमे ॥२७१॥
षष्ठे ग्रैवेयकेऽष्टाविंशाब्दसहस्त्रनिर्गतैः।
दिव्याहारो लघूच्छ्वासो मासैश्चतुर्दशप्रमैः ॥२७२॥
सप्तमेऽमृतनाहार एकोनत्रिंशदब्दकैः।
सहस्त्राणां शुभोच्छ्वासो मासैः सार्धचतुर्दशैः ॥२७३॥
अष्टमेऽस्ति हृदाहारस्त्रिंशद्वर्षसहस्त्रकैः।
गतैश्च वर उच्छ्वासस्त्रिंशत्पक्षातिगैर्मनाक् ॥२७४॥
ग्रैवेयकेऽन्तिमे चाहारो ह्येकत्रिंशदब्दकैः।
सहस्त्राणां सदुच्छ्वासस्तावत्पक्षैश्च निर्गतैः ॥२७५॥
नवानुदिशदेवानां स्याद्वात्रिंशत् सहस्त्रकैः।
वर्षैराहार उच्छ्वासो गतैर्मासैश्च षोडशैः ॥२७६॥
पञ्चानुत्तरदेवानां त्रयस्त्रिंशत्सहस्त्रकैः।
वर्षैश्चाहार उच्छ्वासो मासानां सार्धषोडशैः ॥२७७॥

अर्थ—सौधर्मैशान नामक प्रथम युगल में देवों का आहार २००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास दो पक्ष बाद होता है। द्वितीय युगल में देवों का मानसिक आहार ७००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास सप्त पक्ष बाद होता है। तृतीय युगल में देवों का अमृतमय आहार १०००० वर्ष बाद और उच्छ्वास दस पक्ष बाद होता है। चतुर्थ युगल में आहार १४००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास १४ पक्ष बाद होता है। पंचम युगल में देवों का सुधामय आहार १६००० वर्ष बाद और उच्छ्वास १६ पक्ष बाद होता है। षष्ठ युगल में मानसिक आहार १८००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास १८ पक्ष (९ माह) बाद होता है। सप्तम युगल में देवों का आहार २०००० वर्ष बाद एवं लघु उच्छ्वास २० पक्ष (१० माह) बाद होता है। अष्टम युगल में देवों का आहार २२००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास २२ पक्ष (११ माह) बाद होता है। प्रथम ग्रैवेयक स्थित अहमिन्द्रों के मानसिक आहार २३००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास ११$\frac{१}{२}$ माह बाद होता है। द्वितीय

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ग्रैवेयक में आहार २४००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास एक वर्ष बाद होता है। तृतीय ग्रैवेयक में देवों का आहार २५००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास एक वर्ष, १ पक्ष बाद होता है। चतुर्थ ग्रैवेयक में अहमिन्द्रों का आहार २६००० वर्ष बाद और सुगन्धित उच्छ्वास एक वर्ष १ माह बाद होता है। पंचम ग्रैवेयक में अहमिन्द्रों का आहार २७००० वर्ष बादएवं उच्छ्वास एक वर्ष १$\frac{१}{२}$ माह बाद होता है। षष्ठ ग्रैवेयक में आहार २८००० वर्ष बाद तथा उच्छ्वास एक वर्ष दो माह बाद होता है। सप्तम ग्रैवेयक में अमृतमय आहार २९००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास एक वर्ष २$\frac{१}{२}$ माह बाद होता है। अष्टम ग्रैवेयक में अमृताहार ३०००० वर्ष बाद और किंचित् उच्छ्वास एक वर्ष ३ माह (१$\frac{१}{२}$ वर्ष) बाद होता है। अन्तिम नवम ग्रैवेयक में सुधाहार ३१००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास ३१ पक्ष अर्थात् एक वर्ष ३$\frac{१}{२}$ माह बाद होता है। नव अनुदिशों में अहमिन्द्रों का आहार ३२००० वर्ष बाद और उच्छ्वास एक वर्ष ४ माह बाद होता है तथा पञ्च अनुत्तरवासी अहमिन्द्रों का आहार ३३००० वर्ष बाद एवं उच्छ्वास ३३ पक्ष–एक वर्ष ४ $\frac{१}{२}$ माह बाद होता है ॥२५९–२७७॥

अब लौकान्तिक देवों के अवस्थान का स्थान एवं उनकी संख्या का प्रतिपादन करते हैं–

वसन्ति ब्रह्मलोकान्ते ये लौकान्तिकनाकिनः।
तेषां नामानि दिक् संख्या वक्ष्ये संक्षेपतः क्रमात् ॥२७८॥
सारस्वतास्तथादित्या वह्नयोऽरुणसंज्ञकाः।
ईशानादि विदिक्स्थ प्रकीर्णेषु वसन्त्यमी ॥२७९॥
प्राच्यादौ गर्दतोयाश्च वसन्ति तुषिताह्वयाः।
अव्यावाधास्ततोऽरिष्टाः श्रेणीबद्धेष्वनुक्रमात् ॥२८०॥
द्विर्द्वयोः सप्तयुक्सप्तशतानि तु सहस्त्रकाः।
ततो द्वयोर्द्वयोर्वृद्धि द्वौ सहस्त्रौ द्वयाधिकौ ॥२८१॥

अर्थ–ब्रह्मलोक के अन्त में जो लौकान्तिक देव निवास करते हैं उनके नाम, अवस्थान की दिशाएँ एवं उनकी संख्या का प्रमाण मैं (आचार्य) संक्षेप से किन्तु क्रमशः कहूँगा। सारस्वत, आदित्य, वह्नि और अरुण नाम के लौकान्तिक देव क्रमशः ईशान, आग्नेय, नैऋत्य एवं वायव्य विदिशाओं में स्थित प्रकीर्णक विमानों में रहते हैं तथा गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध एवं अरिष्ट नाम के लौकान्तिक देव क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा गत श्रेणीबद्ध विमानों में रहते हैं। इनमें से सारस्वत देवों का प्रमाण ७०७, आदित्य लौकान्तिकों का ७०७, वह्नि देवों का ७००७ तथा अरुण लौकान्तिक देवों का प्रमाण ७००७ है। इसके आगे क्रमशः दो–दो हजार दो की वृद्धि होती गई है। यथा–गर्दतोय लौकान्तिकों का प्रमाण ९००९, तुषितों का ९००९, अव्याबाध देवों का ११००११ एवं अरिष्ट नामक लौकान्तिक देवों का प्रमाण ११००११ है ॥२७८–२८१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब सारस्वतादि दो-दो कुलों के अन्तरालों में स्थित लौकान्तिक देवों के कुलों के नाम एवं उनकी संख्या के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैं–

अग्निसूर्येन्दु सत्याभादेवाः श्रेयस्कराभिधाः।
क्षेमङ्करा वशिष्ठाख्या देवाः कामधराख्यकाः ॥२८२॥
निर्वाणरजसो नाम्ना दिगन्तरकृतोऽमराः।
आत्मरक्षकनामानः सर्वरक्षाश्च वायवः ॥२८३॥
वसवोऽश्चाह्वया विश्वाः षोडशैते सुराः क्रमात्।
द्वौ द्वौ सारस्वतादीनां तिष्टतश्चान्तराष्टसु ॥२८४॥
संख्यामीषां पृथक् सप्ताधिक सप्तसहस्त्रकाः।
ततो ह्यग्रे सहस्त्रे द्वे प्रवर्धेते क्रमात् पृथक् ॥२८५॥
चतुर्लक्षास्तथा सप्तसहस्त्राश्च शताष्टकम्।
विंशतिर्मेलिता एते सर्वे लौकान्तिकामताः ॥२८६॥

अर्थ–अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वशिष्ट, कामधर, निर्वाण रजस्, दिगन्तरक्षक, आत्मरक्षक, सर्वरक्षक, मरुत्, वसव, अश्व एवं विश्व नाम के ये सोलह प्रकार के लौकान्तिक देव क्रमशः सारस्वतादि दो-दो देवों के अन्तरालों में रहते हैं। इनमें से अग्न्याभ देवों की संख्या ७००७ प्रमाण है। इसके आगे पृथक्-पृथक् क्रमशः २००२ की वृद्धि होती गई है। इस प्रकार सब लौकान्तिकों की एकत्रित संख्या ४०७८२० प्रमाण मानी गई है ॥२८२-२८६॥

अब लौकान्तिक देवों के विशेष स्वरूप का एवं उनकी आयु का प्रतिपादन करते हैं–

नाधिका न च हीनास्ते स्वात्मध्यानपरायणाः।
विरक्ताः कामभोगेषु निसर्गब्रह्मचारिणः ॥२८७॥
चतुर्दशमहापूर्वसमुद्रपारगा विदः।
सम्बोधनविधातारो दीक्षा कल्याणकेऽर्हताम् ॥२८८॥
देवर्षयः स्तुता वन्द्याः पूज्याश्चेन्द्रादिनाकिभिः।
एकावतारिणोऽत्यन्त स्वल्पमोहाः शुभाशयाः ॥२८९॥
विरागा जिनदीक्षादानेऽति प्रमोदकारिणः।
केवलं ब्रह्मकल्पान्ते सन्ति लौकान्तिकामराः ॥२९०॥
अत्यन्त स्त्रीविरक्ता ये तपस्यन्ति विरागिणः।
मुनयः प्राग् भवे ते स्युर्लौकान्तिकाः स्त्रियोऽतिगाः ॥२९१॥
सारस्वतादि सप्तानां देवर्षीणां परा स्थितिः।
अखण्डाः सागरा अष्टौ संसाराब्ध्यन्तगामिनाम् ॥२९२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

आयुश्चारिष्टदेवानां नवैव सागरोपमाः।
पुनरेषां ब्रुवे किञ्चित् सुखबोधाय वर्णनम् ॥२९३॥

अर्थ—ये सभी लौकान्तिक देव परस्पर में ऋद्धि आदि से हीनाधिक नहीं होते, ये आत्मध्यान परायण, काम एवं भोगों से विरक्त तथा निसर्गतः ब्रह्मचारी होते हैं। चतुर्दश महापूर्व रूपी समुद्र के पारगामी, विद्वान् एवं दीक्षा कल्याणक के समय अर्हन्तों को सम्बोधन करने वाले होते हैं। इन्द्रादि समस्त देवों द्वारा पूजनीय, वन्दनीय एवं स्तुत्य ये सर्व देवर्षि संज्ञा वाले देव एक भवावतारी, अत्यन्त अल्प मोह युक्त एवं शुभ भावनाओं से युक्त होते हैं। राग से रहित जिनेन्द्र भगवान की दीक्षा के समय अत्यन्त प्रमोद को धारण करने वाले ये लौकान्तिक देव ब्रह्म कल्प के अन्त में निवास करते हैं। पूर्वभव में जो मुनि स्त्री जन्य राग से अत्यन्त विरक्त होते हैं तथा राग रहित अत्यन्त उग्र तप करते हैं, वे स्वर्ग में आकर स्त्रियों के राग से रहित लौकान्तिक देव होते हैं। संसाररूपी समुद्र के अन्त को प्राप्त होने वाले सारस्वतादि सात देवर्षिओं की उत्कृष्ट अखण्ड आयु आठ सागर प्रमाण होती है। अरिष्ट नामक लौकान्तिक देवों की उत्कृष्ट आयु ९ सागर प्रमाण होती है। अब इनके भेद प्रभेदों के प्रमाण का सुखपूर्वक बोध कराने के लिए उसी प्रमाण को पुनः कहते हैं ॥२८७-२९३॥

अब प्रत्येक कुलों का पृथक् पृथक् प्रमाण कहते हैं—

सप्ताधिकसप्तशतप्रमाः सारस्वतदेवाः ब्रह्मकल्पान्तस्यैशानदिक्स्थ प्रकीर्णेकेषु वसन्ति। सप्ताग्र-सप्तशतसंख्या आदित्याश्चाग्निदिशास्थ प्रकीर्णक विमानेषु तिष्ठन्ति। सप्ताग्रसप्तसहस्रमिता वह्नयः नैऋत्यदिक्स्थित प्रकीर्णेषु वसन्ति। सप्ताग्र सप्तसहस्र प्रमाः अरुणाः वायुकोणस्थ प्रकीर्णकेषु भवन्ति। नवाग्रनवसहस्राः गर्दतोयाः पूर्वदिक् श्रेणीबद्धेषु वसन्ति। नवाधिक नवसहस्रमानास्तुषितामराः दक्षिणाशास्थ श्रेणीबद्ध विमानेषु तिष्ठन्ति एकादशाग्रैकादशसहस्राः अव्याबाधाः पश्चिमदिक् श्रेणीबद्धेषु सन्ति। एकादशयुतैकादशसहस्रमिता अरिष्टा उत्तराशाश्रेणीबद्धेषु निवसन्ति। सप्ताग्रसप्तसहस्रा अग्न्याभा, नवाग्रनव सहस्राश्च सूर्याभाः सारस्वतगर्दतोययोरन्तरे तिष्ठन्ति। एकादशाग्रैकादश सहस्राश्चन्द्राभाः, त्रयोदशाग्रत्रयोदश-सहस्रा सत्याभाश्च गर्दतोयादित्ययोरन्तरे वसन्ति पञ्चदशाधिकपञ्चदशसहस्राः श्रेयस्कराः, सप्तदशाग्रसप्त-दशसहस्राः क्षेमङ्कराश्चादित्यतुषितयोरन्तरे सन्ति। एकोनविंशत्यग्रैकोन-विंशतिसहस्राः वशिष्ठाः, एकविंशत्यधिकैकविंशतिसहस्राः कामधराश्च तुषितवह्न्योरन्तरे स्युः। त्रयोविंशत्यग्रत्रयोविंशतिसहस्राः निर्वाणरजसः, पञ्चविंशत्यग्रपंचविंशतिसहस्राः दिगन्तरकृतः वह्नयव्यावाधयोरन्तरे च वसन्ति। सप्तविंशत्यग्रसप्तविंशति-सहस्रा आत्मरक्षकाः, एकोनत्रिंशदग्रैकोन-त्रिंशत्सहस्राः सर्वरक्षकाश्चाव्यावाधारुणयोरन्तरेतिष्ठन्ति। एकत्रिंशदग्रैकत्रिंशत्सहस्राः मरुतः, त्रयस्त्रिंशदधिक त्रयस्त्रिंशत्सहस्राः वसवश्चारुणारिष्टयोरन्तरे सन्ति। पञ्चत्रिंशदग्रपञ्चत्रिंशत्सहस्राः अश्वा मराः, सप्तत्रिंशदग्रसप्तत्रिंशत्सहस्राः विश्वाख्याश्चारिष्ट सारस्वतयोरन्तरे निवसन्ति। एते सर्वे एकत्रीकृताः लौकान्तिकामराः चतुर्लक्षसप्तसहस्राष्टशतविंशतिप्रमाः भवन्ति।

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—सारस्वत नामक लौकान्तिक देवों का प्रमाण ७०७ है ये ब्रह्मलोक के अन्त में ईशान दिशा स्थित प्रकीर्णक विमानों में रहते हैं। ७०७ है प्रमाण जिनका, ऐसे आदित्य देव आग्नेय दिशागत प्रकीर्णक विमानों में रहते हैं। वह्नि देवों का प्रमाण ७००७ है, ये नैऋत्य दिशागत प्रकीर्णकों में रहते हैं। अरुण देवों का प्रमाण भी ७००७ है. ये वायव्य कोण स्थित प्रकीर्णकों में रहते हैं। पूर्व दिशागत श्रेणीबद्धों में निवास करने वाले गर्दतोय देवों का प्रमाण ९००९ है। दक्षिण दिशागत श्रेणीबद्धों में निवास करने वाले तुषित देवों का प्रमाण ९००९ है। पश्चिम दिशागत श्रेणीबद्धों में निवास करने वाले अव्याबाध देवों का प्रमाण ११०११ है। उत्तर दिशागत श्रेणीबद्ध विमानों में निवास करने वाले अरिष्ट देवों का प्रमाण ११०११ है। ७००७ अग्न्याभ देव और ९००९ सूर्याभदेव, सारस्वत एवं गर्दतोय इन दोनों के मध्य में रहते हैं। ११०११ चन्द्राभ तथा १३०१३ सत्याभ देव, गर्दतोय एवं आदित्य इन दोनों के मध्य में रहते हैं। १५०१५ श्रेयस्कर तथा १७०१७ क्षेमंकर देव, आदित्य एवं तुषित इन दोनों के मध्य में रहते हैं। १९०१९ वशिष्ट तथा २१०२१ कामधर देव, तुषित एवं वह्नि इन दोनों के मध्य में रहते हैं। २३०२३ निर्वाणरजस् तथा २५०२५ दिगन्तरकृत देव, वह्नि एवं अव्यावाध देवों के मध्य में निवास करते हैं। २७०२७ आत्मरक्षक और २९०२९ सर्वरक्षक देव, अव्यावाध एवं अरुण इन दोनों के मध्य में निवास करते हैं। ३१०३१ मरुत् तथा ३३०३३ वसव देव, अरुण और अरिष्ट के मध्य में रहते हैं। ३५०३५ अश्व देव एवं ३७०३७ विश्व देव अरिष्ट और सारस्वत इन दोनों के मध्य में रहते हैं। इन सब लौकान्तिक देवों का एकत्रित प्रमाण ४०७८२० होता है।

अब किस किस संहनन वाले जीव कहाँ तक उत्पन्न होते हैं? इसका दिग्दर्शन करते हैं—

सौधर्माद्यष्टनाकेषु षट्संहननसंयुताः।
यान्ति शुक्रादिकल्पेषु चतुर्षु चान्तिमं विना ॥२९४॥
पञ्चसंहनना आनताद्येष्वन्य चतुर्षु च।
चतुः संहनना जीवा गच्छन्ति पुण्यपाकतः ॥२९५॥
नवग्रैवेयकेषु त्र्युत्तमसंहननान्विताः।
जायन्ते मुनयो दक्षा नवानुदिशनामनि ॥२९६॥
अन्त्य द्विसंहननाढ्या यान्ति रत्नत्रयार्जिताः।
पञ्चानुत्तरसंज्ञे चादिसंहननभूषिताः ॥२९७॥

अर्थ—सौधर्मादि आठ कल्पों में छहों संहनन वाले जीव उत्पन्न होते हैं। शुक्रादि चार कल्पों में अन्तिम (असम्प्राप्तस्रपाटिका) संहनन को छोड़कर पाँच संहनन वाले जीव तथा आनतादि चार कल्पों में असम्प्राप्त और कीलक संहनन को छोड़कर शेष चार संहनन वाले जीव पुण्योदय से उत्पन्न होते हैं। नव ग्रैवेयकों में तीन उत्तम संहननधारी मुनिराज, नव अनुदिशों में आदि के दो संहननों से युक्त रत्नत्रयधारी मुनिराज एवं पाँच अनुत्तरों में मात्र वज्रवृषभनाराच संहनन वाले मुनिराज उत्पन्न होते हैं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और इसी संहनन से मोक्ष भी जाते हैं ॥२९४-२९७॥

अब वैमानिक देवों की लेश्या का विभाग दर्शाते हैं–

तेजोलेश्या जघन्यास्ति भावनादित्रयेषु च।
सौधर्मैशानयोर्नित्यं तेजोलेश्या हि मध्यमा ॥२९८॥
सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवानां शुभाशये।
तेजोलेश्याखिलोत्कृष्टा पद्मांशोऽतिजघन्यकः ॥२९९॥
ब्रह्मादिषट् सुदेवानां पद्मलेश्यास्ति मध्यमा।
शतारादिद्वये पद्मोत्कृष्टा शुक्ला जघन्यवाक् ॥३००॥
आनतादिचतुःकल्प नवग्रैवेयकेषु च।
देवानामहमिन्द्राणां शुक्ललेश्यास्ति मध्यमा। ३०१॥
नवानुदिशसंज्ञे च पञ्चानुत्तरनामके।
शुक्ललेश्यामहोत्कृष्टाहमिन्द्राणां भवेत्सदा ॥३०२॥

अर्थ–भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवों में जघन्य पीत लेश्या होती है एवं सौधर्मैशान कल्प में मध्यम पीत लेश्या होती है। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों (के अधस्तन बहुभाग) में उत्कृष्ट पीत लेश्या एवं (उपरिम एक भाग में) अति जघन्य पद्म लेश्या के अंश होते हैं। ब्रह्मादि छह कल्पों में देवों के मध्यम पद्म लेश्या होती है एवं शतार-सहस्त्रार कल्पों के देवों में पद्मलेश्या उत्कृष्ट तथा उपरिम एक भाग में जघन्य शुक्ल लेश्या होती है। आनतादि चार कल्पों में स्थित देवों में तथा नव ग्रैवेयक-वासी अहमिन्द्रों में मध्यम शुक्ललेश्या होती है। नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तरवासी अहमिन्द्रों के निरन्तर उत्कृष्ट शुक्ललेश्या होती है ॥२९८-३०२॥

अब वैमानिक देवों के संस्थान एवं शरीर की विशेषता दर्शाते हैं–

संस्थानं प्रथमं दिव्यं दिव्याकारं जगत्प्रियम्।
वपुर्वैक्रियिकं रम्यं सप्तधातुमलोज्झितम् ॥३०३॥
सुगन्धीकृतदिग्भागं शुभस्निग्धाणु निर्मितम्।
निरौपम्यं च देवानां निसर्गेणास्ति सुन्दरम् ॥३०४॥

अर्थ–वैमानिक देवों के जगत् प्रिय एवं दिव्य समचतुरस्त्र नामक प्रथम संस्थान होता है। इनका वैक्रियिक शरीर होता है, जो दिव्याकार वाला, अत्यन्त रमणीक, सप्त धातु रहित तथा मल से रहित होता है। देवों का शरीर स्वभावतः अतिसुन्दर, उपमा रहित तथा दसों दिशाओं को सुगन्धित कर देने वाले सौरभ युक्त, शुभ एवं स्निग्ध परमाणुओं से निर्मित तथा उपमा रहित होता है ॥३०३-३०४॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अब देवों की ऋद्धि आदि का तथा स्वर्गस्थ कल्पवृक्षों आदि का वर्णन करते हैं–

अणिमादिगुणा अष्टौ विक्रियर्धिभवाः सदा।
विश्वकार्यकराः सन्ति नाकिनां स्वर्गभूमिषु ॥३०५॥
गावः कामदुघाः सर्वे कल्पवृक्षाश्च पादपाः।
स्वभावेन च रत्नानि चिन्तामणय एव हि ॥३०६॥

अर्थ–स्वर्गों में देवों का समस्त कार्य करने वाली विक्रिया ऋद्धि से उत्पन्न अणिमा आदि आठ ऋद्धियाँ हैं तथा वहाँ स्वभावतः कामधेनु गायें हैं, वृक्ष कल्पवृक्ष हैं और रत्न चिन्तामणि रत्न हैं ॥३०५-३०६॥

अब वैमानिक देवों का विशेष स्वरूप एवं उनके सुख का कथन करते हैं–

नेत्रस्पन्दो न जात्वेषां न स्वेदो न मलादि च।
नखकेशादिकं नैव न वार्धक्यं न रोगिता ॥३०७॥
निशादिनविभागो न विद्यते त्रिदशास्पदे।
केवलं रत्नरश्म्यौघैरुद्योतो वर्ततेतराम् ॥३०८॥
वर्षादिदुःखकृत्कालो नात्रनैवर्तु संक्रमः।
नानिष्टसंगमोऽमीषां नाल्पमृत्युर्न दीनता ॥३०९॥
किन्तु शर्मप्रदोऽस्त्येकः साम्यकालः सुधाभुजाम्।
सम्पदो विविधा बह्व्यः सुखं वाचामगोचरम् ॥३१०॥

अर्थ–स्वर्गों में देवों के नेत्रों का परिस्पन्दन नहीं होता। उनके न पसीना आता है, न मल मूत्र आदि होता है, न नख केश आदि बढ़ते हैं, न वृद्धपना आता है और न किसी प्रकार के रोग होते हैं। स्वर्गों में रात्रि दिन का विभाग नहीं है, वहाँ निरन्तर केवल रत्न की किरणों के समूहों का उद्योत होता रहता है। वहाँ पर वर्षा, आतप आदि दुःख के कारणभूत काल एवं ऋतु आदि का परिवर्तन नहीं होता। वहाँ न अनिष्ट वस्तुओं का संयोग होता है, न अल्प मृत्यु होती है और न दीनता है किन्तु देवों के निरन्तर सुख प्रदान करने वाले काल का एक सदृश वर्तन होता है। वहाँ पर विविध प्रकार की विपुल सम्पदाएँ हैं एवं वहाँ का सुख वचन अगोचर है ॥३०७-३१०॥

अब उत्पन्न होने के बाद देवगण क्या क्या विचार करते हैं, इसका प्रतिपादन करते हैं–

तत्रोपपाददेशान्तर्मणिशय्यातले मृदौ।
प्रागर्जितमहापुण्याल्लभन्ते जन्म वासवाः ॥३११॥
ततोऽप्यन्तर्मुहूर्तेन प्राप्य सम्पूर्णयौवनम्।
दिव्यमुत्थाय शय्यायाः सुप्तोत्थिता इवात्र ते ॥३१२॥
विलोक्य तन्महाभूतीः प्रणतामरमण्डलीः।
साश्चर्यमानसाश्चित्ते चिन्तयन्तीति चात्मगम् ॥३१३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अहो! केऽमी महादेशाः सुखसम्पत् कुलालयाः।
के वयं केन पुण्येनानीता वात्र सुरास्पदे ॥३१४॥
विनीता के इमे देवा देव्य एता जगत्प्रियाः।
कस्येमाः सम्पदः सारा विमानान्तर्गताः पराः ॥३१५॥
इत्यादि चिन्तमानानां तेषां साश्चर्यचेतसाम्।
आगत्य सचिवा नत्वा पादाब्जान् ज्ञानचक्षुषः ॥३१६॥
पूर्वापर सुसम्बन्धं निगदन्ति मनोगतम्।
तत्पूर्वार्जित पुण्यं च स्वर्लोकस्थितिमञ्जसा ॥३१७॥

अर्थ—वहाँ पर इन्द्र आदि देव पूर्वोपार्जित महा पुण्योदय से उपपाद स्थानों में मणिमय कोमल उपपाद शय्या पर जन्म लेते हैं तथा जन्म लेने के अन्तर्मुहूर्त बाद ही पूर्ण यौवन अवस्था को प्राप्त कर वे उस दिव्य शय्या पर से ऐसे उठते हैं जैसे मानों सोकर ही उठे हों शय्या से उठते ही नम्रीभूत होती हुई देव मण्डली को और वहाँ की महाविभूति को देखकर मन में आश्चर्यान्वित होते हुए वे अपने मन में ऐसा चिन्तन करते हैं कि अहो! सुख सम्पत्ति से युक्त यह कौन सा देश है? मैं कौन हूँ तथा किस पुण्योदय से मैं यहाँ स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुआ हूँ। अर्थात् यहाँ लाया गया हूँ। नम्रीभूत होने वाले, जगत्प्रिय ये सब देव-देवियाँ कौन हैं एवं विमान स्थित यह समस्त विपुल तथा उत्कृष्ट सम्पत्ति किसकी है? इत्यादि अनेक प्रकार का चिन्तन करने वाले और आश्चर्ययुक्त चित्त वाले उन नवीन देवों के मनोगत भावों को अपने अवधि नेत्र से जानकर वहाँ स्थित प्रधान-मन्त्री आदि देव उनके समीप आकर तथा उनके चरण कमलों को नमस्कार करके पूर्वोपार्जित पुण्य से स्वर्ग लोक में उत्पन्न होने की स्थिति एवं अन्य पूर्वापर सम्बन्ध आदि कहकर उन नवीन देवों के मनोगत सन्देह को दूर करते हैं ॥३१४-३१७॥

अब उत्पन्न होने वाले इन्द्रादि देव पूर्व भव में किये हुए धार्मिक अनुष्ठान आदि का और धर्म के फल का जो चिन्तन करते हैं, उसे कहते हैं—

ततस्तत्क्षणसञ्जातावधिज्ञानेन तेऽखिलम्।
ज्ञात्वा प्राग्जन्मधर्मस्य फलं चेति वदन्त्यपि ॥३१८॥
अहो! पूर्वभवेऽस्माभिः कृतं घोरं महत्तपः।
हता पञ्चाक्षचौराश्च स्मरवैरी निपातितः ॥३१९॥
मनो ध्यानेन संरुद्धं प्रमादा निर्जिता हृदि।
कषायविषवृक्षाश्च छिन्नाः क्षमायुधेन च ॥३२०॥
जगत्सारा महादीक्षा पालिता जिनपुङ्गवाः।
आराधिता जगन्नाथास्तद्वाक्ये निश्चयं कृतम् ॥३२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

सर्व यत्नेन सद्धर्मो जिनोक्तो विश्वशर्मदः।
अहिंसा लक्षणः सारैः क्षमादिलक्षणैर्धृतः ॥३२२॥
इत्याद्यैः परमाचारैः सद्धर्मो यः पुरार्जितः।
तेनोद्वृत्याप्यधःपातादुद्धृयं संस्थापिता इह ॥३२३॥
अतो धर्माद्विना नान्योऽत्रामुत्र सुहितं करः।
किन्तु सद्धर्म एकोऽहो! स्वर्गमुक्तिसुखप्रदः ॥३२४॥
नरकाद् धर्म उद्धृत्य नयेद्विधर्मिणो दिवम्।
सहगामी सतां धर्मो धर्मोऽचिन्त्यविभूतिदः ॥३२५॥
धर्मः कल्पद्रुमो विश्वसंकल्पितसुखप्रदः।
धर्मश्चिन्तामणिश्चिन्तितार्थदो विश्वतर्पकः ॥३२६॥
धर्मो निधिर्जगत्सारो धर्मः कामदुधा नृणाम्।
धर्मोऽसमगुणग्रामो धर्मः सर्वार्थसिद्धिदः ॥३२७॥
ईदृशोऽहो! महान् धर्मो येन वृत्तेन चार्ज्यते।
तत्रात्र सुलभं जातु स्वर्गिणां सुखभोगिनाम् ॥३२८॥
किन्तु स्वर्गे तपो वान्यो व्रतांशो नास्ति जातुचित्।
केवलं दर्शनं स्याच्च पूजाभक्तिर्जिनेशिनाम् ॥३२९॥
अतस्तत्त्वार्थश्रद्धास्तु श्रेयसे नो जगद्धिता।
धर्ममूलार्हतां पूजाभक्तिस्तुतिः परा रुचिः ॥३३०॥
विचिन्त्येति ततः शक्रा ज्ञातधर्मफलोदयाः।
धर्मसिद्ध्यै समुद्युक्ता व्रजन्ति स्नानवापिकाम् ॥३३१॥

अर्थ—अन्य देवों के द्वारा सम्बोधित किये जाने के क्षण (समय) ही उन्हें अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है, जिससे वे अपने समस्त पूर्व जन्म को जानकर धर्म का फल विचार करते हुए, इस प्रकार कहते हैं कि–अहो! हमने पूर्व भव में महान् एवं घोर तप किया। पंचेन्द्रियरूपी चोरों को मारा है तथा काम रूपी शत्रु को परास्त किया है। शुभध्यान के अवलम्बन से मन को हृदय में रोककर प्रमाद को जर्जरित किया है एवं क्षमारूपी आयुध से कषायरूपी विष वृक्ष की छिन्न किया है। जगत् में सारभूत महादीक्षा का यत्नपूर्वक पालन किया है, जिनेन्द्र भगवानों की आराधना की है और तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ तीर्थंकरों के वचनों का श्रद्धान किया है। अहिंसा है लक्षण जिसका, जो सम्पूर्ण सुखों को देने वाला है, ऐसे जिनेन्द्र द्वारा कथित समीचीन धर्म का मैंने पूर्ण प्रयत्न से उत्तम क्षमादि सारभूत लक्षणों द्वारा धारण किया है इत्यादि प्रकार से परमोत्कृष्ट चारित्र आदि के द्वारा पूर्व भव में मैंने जो धर्म उपार्जन किया था, उसने मुझे दुर्गति के पतन से रोककर इस देव लोक में स्थापित कर दिया है। इस लोक और परलोक में धर्म के बिना उत्तम हितकारी अन्य और कोई नहीं है। अहो! एक समीचीन धर्म ही स्वर्ग

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एवं मोक्ष के सुखों को देने वाला है। विधर्मियों को भी यह धर्म नरक से निकालकर स्वर्ग ले जाता है। सज्जनों के लिए धर्म ही सहयोगी है। धर्म अचिन्त्य विभूति देने वाला है। सम्पूर्ण वाञ्छित सुखों को प्रदान करने के लिए धर्म कल्पवृक्ष है तथा सम्पूर्ण चिन्तित पदार्थों को प्रदान करने से धर्म ही चिन्तामणि रत्न है। जगत् में सारभूत निधि धर्म ही है। मनुष्यों के लिए धर्म ही कामधेनु है, धर्म ही अतुल गुणों का समूह है तथा सर्व अर्थों की सिद्धि प्रदान करने वाला एक धर्म ही है। अहो! मनुष्य लोक में जिस उत्तम चारित्र से यह महान् धर्म उपार्जित किया था वह चारित्र सुख भोगने वाले इन स्वर्ग वासियों को कभी सुलभ नहीं है, किन्तु स्वर्गों में कदाचित् भी तप व व्रतों का अंश नहीं है, यहाँ तो केवल सम्यग्दर्शन और जिनेन्द्र देवों की पूजा भक्ति मात्र है इसलिए स्वर्गों में कल्याण का हेतु जगत् की हितकारक एक तत्त्वार्थ की श्रद्धा एवं धर्म का मूल अर्हन्तों की पूजा, भक्ति तथा स्तुति ही है। इस प्रकार चिन्तन करके एवं इन्द्र आदि पदों को धर्म का फल जानकर धर्म सिद्धि के लिये उद्यत होते हुए स्नान वापिका की ओर स्नान हेतु जाते हैं ॥३१८-३३१॥

अब इन्द्रादि देवों के द्वारा की जाने वाली जिनेन्द्र पूजन का व्याख्यान करते हैं–

तस्यां स्नात्वामरैः सार्धमुत्तमं श्रीजिनालयम्।
स्फुरन्मणिमयं यान्ति धर्मरागरसोत्कटाः ॥३३२॥
तत्र नत्वोत्तमाङ्गेनार्हन्मूर्तीर्धर्मसत्खनीः।
अर्चयन्ति महाभूत्या महाभक्त्या महोत्सवैः ॥३३३॥
मणिभृङ्गारनालान्तर्निर्गताच्छजलोत्करैः ।
दिव्यामोदनभोव्याप्तैर्जगत्सारैर्विलेपनैः ॥३३४॥
पुण्याङ्कुरसमैर्दीर्घैर्मुक्ताफलमयाक्षतैः ।
कल्पवृक्षोद्भवैः दिव्यैर्नानाकुसुमदामभिः ॥३३५॥
सुधापिण्डसुनैवेद्यै रत्नपात्रार्पितैः शुभैः।
मणिदीपैर्हतध्वान्तैः सुगन्धिधूपसञ्चयैः ॥३३६॥
कल्पद्रुमफलैः सारैर्महापुण्यफलप्रदैः।
दिव्यैश्चूर्णैश्च सद्गीतैर्नर्तनैः पुष्पवर्षणैः ॥३३७॥
ततः प्रस्तुत्य तीर्थेशान् सार्थैस्तद्गुणभूरिभिः।
अर्जयित्वा परं पुण्यं ते गत्वा पूजयन्ति च ॥३३८॥
वनस्थचैत्यवृक्षेषु जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः।
स्नपयन्ति स्तुवन्त्येव प्रणमन्ति वृषाप्तये ॥३३९॥

अर्थ–वापिकाओं में स्नान करके, धर्मरागरूपी उत्कट रस से भरे हुए वे इन्द्रादि देव अन्य देव समूहों के साथ देदीप्यमान मणिमय उत्तम जिनालयों में जाते हैं। वहाँ जाकर धर्म की खानस्वरूप अर्हन्त प्रतिमाओं को उत्तमांग (सिर) से नमस्कार करके महाविभूति और अपूर्व भक्ति से महामहोत्सवों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

के द्वारा पूजा करते हैं। मणिमय भृंगार की नाल के मुख से निकलते हुए स्वच्छ जल समूह से, अपनी सुवास से आकाश को व्याप्त करने वाले तथा जगत् के सार स्वरूप दिव्य चन्दन के विलेपन से, पुण्य के अंकुर सदृश और दीर्घ मुक्ताफल सदृश उत्तम अक्षतों से, कल्पवृक्षों से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के फूलों की मालाओं से, रत्नपात्रों में रखे हुए, कल्पवृक्षों से उत्पन्न और अत्यन्त शुभ नैवेद्य से, अन्धकार को नष्ट करने वाले मणिमय दीपों से, सुगन्धित धूप समूह से, महापुण्य फल प्रदान करने वाले कल्पवृक्षों के सारभूत उत्तम फलों से, दिव्य चूर्ण से, उत्तम गीत, उत्तम नृत्य और पुष्पवृष्टि आदि से जिनेन्द्र देव की पूजा भक्ति करते हैं। इसके बाद वे इन्द्र, देव समूहों के साथ तीर्थंकरों की स्तुति, पूजन द्वारा उत्कृष्ट पुण्य उपार्जन करके वहाँ से जाते हैं और वनों के मध्य चैत्यवृक्षों में स्थित उत्कृष्ट जिनेन्द्र प्रतिमाओं का धर्म प्राप्ति के लिये अभिषेक करते हैं, पूजन करते हैं, स्तुति करते हैं और नमस्कार करते हैं ॥३३२-३३९॥

अब मिथ्यादृष्टि एवं सम्यग्दृष्टि की पूजन के अभिप्राय का अन्तर दर्शाकर सम्यक्त्व प्राप्ति का हेतु कहते हैं–

तत्रोत्पन्नाः सुरा - दृष्टिहीना देवैः प्रबोधिताः।
जिनागारे जिनेन्द्रार्चां कुर्वन्ति शुभकांक्षिणः ॥३४०॥
सम्यग्दृष्ट्यमरा भक्त्या जिनेन्द्रगुणरञ्जिताः।
अर्चयन्ति जिनार्चादीन् कर्मक्षयाय केवलम् ॥३४१॥
निर्दर्शनाः सुराश्चित्ते मत्वा स्वकुलदेवताः।
जिनमूर्तीर्विमानस्थाः पूजयन्ति शुभाप्तये ॥३४२॥
ततोत्पन्नामरांश्चान्ये बोधयन्ति सुदृष्टयः।
धर्मोपदेशतत्त्वादि भाषणैर्दर्शनाप्तये ॥३४३॥
केचित्तद् बोधनाच्छीघ्रं काललब्ध्या शुभाशयाः।
गृह्णन्ति त्रिजगत्सारं सम्यक्त्वं भक्तिपूर्वकम् ॥३४४॥

अर्थ–स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों द्वारा समझाए जाने पर पुण्य की वाञ्छा से जिनमन्दिरों में जाकर जिनेन्द्र भगवान् की पूजन करते हैं, किन्तु जो सम्यग्दृष्टि देव वहाँ उत्पन्न होते हैं वे जिनेन्द्र भगवान् के गुणों में रंजायमान होते हुए कर्मक्षय के लिए भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देव की पूजा करते हैं। मिथ्यादृष्टि देव अपने विमानों में स्थित जिनप्रतिमाओं को अपने मन में उन्हें कुलदेवता मानकर पुण्य की प्राप्ति के लिये पूजते हैं। वहाँ उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टि देवों को अन्य सम्यग्दृष्टि देव सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु तत्त्व आदि के प्रतिपादन रूप धर्मोपदेश देते हैं, उनमें से कितने ही देव देशना प्राप्त करते ही काललब्धि से प्रेरित होकर शुद्ध चित्त होते हुए, त्रैलोक्य में सारभूत सम्यक्त्व को भक्ति पूर्वक शीघ्र ही ग्रहण कर लेते हैं ॥३४०-३४४॥

अब अकृत्रिम-कृत्रिम जिन बिम्बों के पूजन-अर्चन का वर्णन करते हैं–

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

नन्दीश्वरमहाद्वीपे नियमेन सुराधिपाः।
वर्षमध्ये त्रिवारं च दिनाष्टावधिमूर्जितम् ॥३४५॥
महामहं प्रकुर्वन्ति भूत्या स्नानार्चनादिभिः।
जिनालयेषु सर्वेषु प्रतिमारोपितार्हताम् ॥३४६॥
मेर्वादिविश्वशैलस्थाऽर्हन्मूर्तीस्तेऽर्चयन्ति च।
गत्वा विमानमारुह्य चापराः कृत्रिमेतराः ॥३४७॥
पञ्चकल्याणकालेषु महापूजा जिनेशिनाम्।
विभूत्या परया गत्वा भक्त्या कुर्वन्ति नाकिनः ॥३४८॥
स्थानस्था अहमिन्द्राश्च कल्याणपञ्चकेऽनिशम्।
भक्त्यार्हतः शिवप्राप्त्यै प्रणमन्ति स्तुवन्ति च ॥३४९॥
गणेशादीन्। मुनीन् सर्वान् नमन्ति शिरसा सदा।
निर्वाणक्षेत्रपूजादीन् भजन्तीन्द्राश्च सामराः ॥३५०॥
जिनेन्द्र श्री मुखोत्पन्नां वाणीं शृण्वन्ति ते सदा।
तत्त्वगर्भां सुधर्माय परिवारविराजिताः ॥३५१॥

अर्थ—सर्व देव समूहों से युक्त होकर इन्द्र नियम से वर्ष में तीन बार (आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन) नन्दीश्वर द्वीप जाते हैं और वहाँ के सर्व जिनालयों में स्थित अर्हन्त प्रतिमाओं की महाविभूति अष्ट-अष्ट दिन पर्यन्त अभिषेक आदि क्रियाओं के साथ-साथ महामह पूजा करते हैं। अपने-अपने विमानों पर आरोहण कर इन्द्र आदि देव मेरु आदि सर्व पर्वतों पर जाते हैं और वहाँ स्थित अकृत्रिम तथा कृत्रिम सर्व प्रतिमाओं की पूजा करते हैं। सर्व देव पञ्च कल्याणकों के समय जाते हैं और वहाँ पर जाकर विपुल विभूति के साथ भक्ति से जिनेन्द्र देवों की पूजा करते हैं। पञ्च कल्याणकों के समय सर्व अहमिन्द्र अपने स्थानों पर स्थित रहकर ही कल्याण प्राप्ति के लिये अर्हन्त भगवान को भक्ति से प्रणाम करते हैं और अहर्निश उनकी स्तुति करते हैं। सर्व देवों के साथ इन्द्र, सर्व गणधरों को और मुनीश्वरों को निरन्तर सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं तथा निर्वाण आदि क्षेत्रों की पूजा करते हैं। इन्द्र सपरिवार समवसरण में जाकर उत्तम धर्म धारण हेतु श्री जिनेन्द्र भगवान् के मुख से उत्पन्न तत्त्व और अर्थ से भरी हुई वाणी को निरन्तर सुनते हैं ॥३४५-३५१॥

अब उन इन्द्रादि देवों के इन्द्रिय जन्य सुखों का वर्णन करते हैं—

इत्यादिविविधाचारैः शुभैः पुण्यं परं समम्।
देवैः शक्राश्च देवीभिरर्जयन्ति सुखाकरम् ॥३५२॥
तत्पुण्यजनितान् भोगान् निरौपम्यान्निरन्तरम्।
भुञ्जन्ति सहदेवीभिः समस्तेन्द्रियतृप्तिदान् ॥३५३॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्रजन्ति स्वेच्छया देवा असंख्यद्वीपवार्धिषु।
सद् विमानं मुदारुह्य क्रीडाकामसुखाप्तये ॥३५४॥
देवोद्यानेषु सौधेषु नदीक्रीडाचलेषु च।
स्वेच्छया स्वस्वदेवीभिः क्रीडां कुर्वन्ति नाकिनः ॥३५५॥
शृण्वन्ति मधुरं गीतं पश्यन्ति नर्तनं महत्।
सुशृङ्गारं विलासं चाप्सरसां ते रसावहम् ॥३५६॥
इति नाना विनोदाद्यैः परमाह्लादकारणम्।
प्रतिक्षणं परं सौख्यं लभन्ते नाकिनोऽनिशम्।३५७॥
दीर्घकालं निराबाधं यत्सुखं स्वर्गिणां भवेत्।
केवलं तच्च तेषां स्यान्नान्येषां हि च्युतोपमम् ॥३५८॥

अर्थ—इस प्रकार स्वर्ग स्थित इन्द्र अनेक देव और देवियों के साथ अनेक प्रकार के शुभ आचरणों द्वारा सुख की खानस्वरूप उत्कृष्ट पुण्य का उपार्जन करते हैं। उस पुण्य फल से उत्पन्न समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने वाले अनुपम भोगों को देवियों के साथ-साथ निरन्तर भोगते हैं। सभी देव अपनी इच्छा से उत्तम विमानों में आरूढ़ होकर काम क्रीड़ा रूप सुख प्राप्ति के लिए असंख्यात द्वीप समुद्रों में जाते हैं। स्वर्ग स्थित देव अपनी अपनी देवांगनाओं के साथ स्वेच्छानुसार उद्यानों में, महलों में, नदियों में एवं कुलाचलों पर क्रीड़ा करते हैं एवं वे देव कभी अप्सराओं के मधुर गीत सुनते हैं, कभी सुन्दर नृत्य देखते हैं और काम रस को उत्पन्न करने वाली नाना प्रकार के शृंगार एवं विलास पूर्ण क्रियाएँ करते हैं। इस प्रकार देव परम आह्लाद उत्पन्न करने वालीं नाना प्रकार की विनोद पूर्ण क्रियाओं द्वारा प्रतिक्षण निरन्तर परम सुखों को भोगते हैं। दीर्घकाल तक निराबाध और अनुपम, जो सुख स्वर्गवासी देवों को प्राप्त होता है, वह सुख मात्र उन्हीं देवों को ही है, वैसा सुख अन्य किसी को भी प्राप्त नहीं है ॥३५२-३५८॥

अब उत्तम मनुष्य किन-किन क्रियाओं के द्वारा स्वर्ग आदि सुखों को प्राप्त करते हैं, उसका वर्णन किया जाता है—

ये तपश्चरणोद्युक्ता रत्नत्रयधनेश्वराः।
व्रतशीलमहाभूषाः सदाचाराः शुभाशयाः ॥३५९॥
जिनधर्मरता नित्यं जिनधर्मप्रभावकाः।
जिनधर्मकरा ये च जिनधर्मोपदेशकाः ॥३६०॥
जिनाङ्घ्रिपूजका येऽत्र जिनभक्ता विवेकिनः।
जिनवाणीसमासक्ता जिनसद्गुणरञ्जिताः ॥३६१॥
धर्मिणां वत्सला दक्षा धर्मवात्सल्यकारिणः।
धर्मे साहाय्यकर्तारोऽन्येषां धर्मे च प्रेरकाः ॥३६२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

धर्मकार्योद्यता ये च पापकार्ये पराङ्मुखाः।
भवभीताः शुभध्याना जितेन्द्रिया जिताशयाः ॥३६३॥
निर्मदा निरहङ्कारा बुधा मन्दकषायिणः।
निर्लोभाः शुभलेश्याढ्या विचारचतुराश्च ये ॥३६४॥
धर्मशुक्लशुभध्यान परा दुर्ध्यान दूरगाः।
अग्रगा धर्मकार्ये च ये सर्वत्र हितोद्यताः ॥३६५॥
इत्याद्यन्यैः शुभाचारैर्भूषिता ये नरोत्तमाः।
ते सर्वे धर्मपाकेन प्राणान्मुक्त्वा समाधिना ॥३६६॥
सौधर्ममुख्यसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तमञ्जसा ।
व्रजन्ति स्वतपो योग्यं लभन्ते चेन्द्रसत्पदम् ॥३६७॥

अर्थ—जो निरन्तर दुर्द्धर तप तपते हैं, रत्नत्रय धन के स्वामी हैं, व्रत एवं शील से विभूषित हैं, सदाचारी हैं, जिनके चित्त शुभाशय से युक्त हैं, निरन्तर जिनधर्म में रत रहते हैं, जिनधर्म की प्रभावना करने वाले हैं, जिन धर्म का उद्योत करने वाले हैं और जो जिन धर्म के उपदेशक हैं। जो यहाँ जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों की पूजा करते हैं, जिन भक्त हैं, विवेकी हैं, जिनवाणी में जिनका चित्त आसक्त रहता है, जिनका मन जिनेन्द्र के गुणों में रंजायमान रहता है, जो धर्मात्माओं से अत्यन्त प्रीति रखते हैं, धर्म कार्यों में दक्ष हैं, धर्म एवं धर्मात्माओं में वात्सल्य भाव रखते हैं, धर्म कार्यों में निरन्तर सहायता करते रहते हैं और अन्य जीवों को भी धर्म कार्यों की प्रेरणा देते रहते हैं। जो मनुष्य निरन्तर धर्मकार्य में उद्यत रहते हैं और पाप कार्यों से पराङ्मुख हैं, संसार से भयभीत, शुभ ध्यानों में तत्पर, जितेन्द्रिय, विषय कषायों को जीतने वाले, गर्व रहित, अहंकार रहित, ज्ञानी, मन्दकषायी, निर्लोभी, शुभ लेश्याओं से युक्त और सद्विचारों में चतुर होते हैं। धर्म, शुक्लरूप उत्कृष्ट शुभ ध्यानों में तत्पर, खोटे ध्यानों से दूर रहते हैं, धर्म कार्यों में अग्रसर एवं सर्वत्र सर्व जीवों के हित में उद्यत रहते हैं। इत्यादि प्रकार से तथा और भी अन्य शुभाचारों से जो मनुष्य विभूषित हैं, वे सब नरोत्तम समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर धर्म के फल से सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धिपर्यन्त जाते हैं तथा अपने-अपने तप की योग्यता के बल से इन्द्रादि के उत्कृष्ट पदों को प्राप्त करते हैं ॥३५९-३६७॥

अब कौन-कौन से जीव किन-किन स्वर्गों तक उत्पन्न होते हैं, इसका विवेचन करते हैं—

भोगभूमिभवा आर्याः सम्यक्त्वधारिणो हि ये।
सौधर्मैशानकल्पौ ते यान्ति दृष्टिवृषोदयात् ॥३६८॥
भोगभूमिसमुत्पन्ना ये दृष्टिविकला नराः।
भावनादित्रये तेऽतः व्रजन्ति भोगकांक्षिणः ॥३६९॥
अज्ञानकष्टपाकेन भद्रा गच्छन्ति तापसाः।
आज्योतिर्लोक पर्यन्तं न स्वर्गं स्वल्पपुण्यतः ॥३७०॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ये परिव्राजकास्तेऽत्र स्वोत्कृष्टाचरणेन च।
यान्ति ब्रह्मोत्तरं स्वर्गं यावद् भौमादिपूर्वकम् ॥३७१॥
भद्रा आजीवका दीर्घायुषः कुवेषधारिणः।
उत्कृष्टेन सहस्त्रारपर्यन्तं यान्ति तद् व्रतैः ॥३७२॥
इतः परं भवेज्जातुं गमनं नान्यलिङ्गिनाम्।
श्रावका आर्यिका नार्यस्तिर्यञ्चो व्रतभूषिताः ॥३७३॥
उत्कृष्टेन च गच्छन्ति स्वोत्कृष्टाचरणोद्यताः।
अच्युतस्वर्गपर्यन्तमुत्कृष्टश्रावकव्रतैः ॥३७४॥
उत्कृष्टेन तपोवृत्तैरभव्या द्रव्यलिङ्गिनः।
चिरायुषो व्रजन्त्यूर्ध्वं यावद्ग्रैवेयकान्तिमम् ॥३७५॥
ततः परं प्रगच्छन्ति स्वोत्कृष्टसत्तपोयमैः।
सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं मुनयो भावलिङ्गिनः ॥३७६॥

अर्थ—भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि आर्य मरण कर सम्यग्दर्शन एवं धर्म के प्रसाद से सौधर्मैशान कल्पपर्यन्त उत्पन्न होते हैं तथा भोगभूमि में उत्पन्न एवं भोगों की आकांक्षा रखने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य, भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होते हैं। अज्ञान से अनेक प्रकार के कष्ट जिसमें हैं, ऐसा तप तपने वाले भद्र तापसी मरण कर भवनत्रिक में उत्पन्न होते हैं। अल्प पुण्य के कारण स्वर्ग नहीं जाते। जो परिव्राजक हैं, वे अपने उत्कृष्ट तपश्चरण द्वारा भवनत्रिक से ब्रह्मोत्तर स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। भद्र, दीर्घायु और कुवेषधारी आजीवक नाम के तापसी कायक्लेश आदि तपों के द्वारा उत्कृष्ट से सहस्त्रार स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। सहस्त्रार स्वर्ग से ऊपर कुलिंग वेषधारी जीवों की उत्पत्ति नहीं होती। अपने-अपने उत्कृष्ट चारित्र में उद्यम करने वाले श्रावक, आर्यिकाएँ, व्रती स्त्रियाँ और व्रत से विभूषित तिर्यञ्च उत्कृष्ट श्रावक व्रतों के द्वारा उत्कृष्टतः सोलह स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं। दीर्घायु द्रव्यलिंगी मुनि और अभव्य जीव उत्कृष्ट रीति से पालन किये हुए तप और व्रताचरण के द्वारा नव ग्रैवेयक पर्यन्त जाते हैं। सर्वोत्कृष्ट व्रत और तपश्चरण के द्वारा भावलिंगी मुनिराज सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं ॥३६८-३७५॥

अब स्वर्गों से च्युत होने वाले देवों की प्राप्त गति का निर्धारण करते हैं—

सौधर्मेन्द्रस्य दृष्ट्याप्ता महादेव्यो दिवश्च्युताः।
सर्वे च दक्षिणेन्द्रा हि चत्वारो लोकपालकाः ॥३७७॥
सर्वे लौकान्तिका विश्वे सर्वार्थसिद्धिजामराः।
निर्वाणं तपसा यान्ति संप्राप्य नृभवं शुभम् ॥३७८॥
नवानुत्तरजा देवाः पञ्चानुत्तरवासिनः।
ततश्च्युत्वा न जायन्ते वासुदेवा न तद् द्विषः ॥३७९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तिर्यञ्चो मानवाः सर्वे भावनादि त्रिजामराः।
शलाकापुरुषा जातु न भवन्त्यमरार्चिताः ॥३८०॥
विजयादिविमानेभ्योऽहमिन्द्रा एत्य भूतलम्।
मर्त्यजन्मद्वयं प्राप्य ध्रुवं गच्छन्ति निर्वृतिम् ॥३८१॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन को धारण करने वाली सौधर्म इन्द्र की महादेवी, सर्व दक्षिणेन्द्र, चारों लोकपाल, सर्व लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि के सर्व देव स्वर्ग पर्याय से च्युत होकर उत्तम मनुष्यभव प्राप्त करते हैं और फिर उत्कृष्ट तप से विभूषित होते हुए नियमपूर्वक उसी भव से मोक्ष जाते हैं। (सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर) पञ्च पंचोत्तर और नव अनुदिश वासी देव स्वर्ग से च्युत होकर नारायण एवं प्रतिनारायण नहीं होते। सर्व मनुष्य, सर्व तिर्यञ्च और सर्व भवनत्रिकवासी देव अपनी-अपनी पर्यायों से मरण कर देवों द्वारा पूजित शलाका पुरुषों में कभी भी उत्पन्न नहीं होते। विजयादि विमानों से च्युत होकर भूतल पर आये हुए अहमिन्द्र मनुष्य के दो भव लेकर नियम से मोक्ष पद प्राप्त करते हैं ॥३७७-३८१॥

अब स्वर्ग स्थित मिथ्यादृष्टि देवों के मरण चिह्न, उससे होने वाला आर्त्तध्यान और उस आर्त्तध्यान के फल का निरूपण करते हैं—

यदावतिष्ठतेऽल्पायुः शेषं षण्मासगोचरम्।
देवानां च तदा स्वाङ्गकान्तिर्गच्छति मन्दताम् ॥३८२॥
उरःस्थपुष्पसन्माला म्लानतां यान्ति दुर्विधेः।
मणयो भूषणानां हि तेजसा मन्दतां तथा ॥३८३॥
एतानि मृत्युचिह्नानि वीक्ष्य कुदृष्टि निर्जराः।
इति शोकं प्रकुर्वन्तीष्टवियोगार्तमानसाः ॥३८४॥
हा! ईदृशीर्जगत्सारा विमुच्य स्वर्गसम्पदः।
नोऽवतारोऽशुभे निन्द्ये स्त्रीदुर्गर्भे भविष्यति ॥३८५॥
अधोमुखेन तत्राहो! गर्भेविष्टाकृमाकुले।
दुस्सहा वेदना स्माभिः सोढव्या सुचिरं कथम् ॥३८६॥
इत्यार्तध्यानपापेन दिवश्च्युत्वा कुदृष्टयः।
भावनादित्रयस्थाश्च सौधर्मैशानवासिनः ॥३८७॥
भवन्ति बादराः पर्याप्ताः पृथ्व्यप्कायिका भुवि।
तथा वनस्पतिप्रत्येककायिकाः सुखातिगाः ॥३८८॥
आसहस्त्रारकल्पस्थाः केचित्प्रच्युत्य नाकतः।
आर्त्तध्यानेन जायन्ते दुःखिनः कर्मभूमिषु ॥३८९॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पञ्चेन्द्रियाश्च पर्याप्तास्तिर्यञ्चो वा नरोऽपरे।
ततः परं दिवश्च्युत्वानतकल्पादिवासिनः ॥३९०॥
कर्मभूमौ मनुष्यत्वं लभन्ते केवलं शुभम्।
तिर्यक्त्वं जातु नामीषां तीव्रार्त्तार्घाद्यभावतः ॥३९१॥

अर्थ—जब सर्व देवों की छह मास पर्यन्त की अल्पायु अवशेष रह जाती है, तब उनके शरीर की कान्ति मन्द हो जाती है। दुर्विपाक से गले में स्थित उत्तम पुष्पों की माला म्लान हो जाती है। और मणिमय आभूषणों का तेज मन्द हो जाता है। इस प्रकार के मृत्यु चिह्न देखकर मिथ्यादृष्टि देव अपने मन में इष्ट वियोग आर्तध्यान रूप इस प्रकार का शोक करते हैं कि–हाय! संसार की सारभूत स्वर्ग की इस प्रकार की सम्पत्ति छोड़कर अब हमारा अवतरण स्त्री के अशुभ, निन्दनीय और कुत्सित गर्भ में होगा? अहो! विष्टा और कृमि आदि से व्याप्त उस गर्भ में दीर्घकाल तक अधोमुख पड़े रहने की वह दुस्सह वेदना हमारे द्वारा कैसे सहन की जायेगी? इस प्रकार के आर्त्तध्यानरूप पाप से भवनत्रिक और सौधर्मैशान कल्प में स्थित मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर तिर्यग्लोक में दुःखों से युक्त बादर, पर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों में जन्म लेते हैं (जहाँ गर्भ का दुःख नहीं होता)। सहस्रार कल्प पर्यन्त के मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर आर्तध्यान के कारण पन्द्रह कर्मभूमियों में, दुःखों से युक्त पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक तिर्यञ्च एवं मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। आनत आदि चार कल्पों के एवं नव ग्रैवेयकों के मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर कर्मभूमियों में उत्तम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। इन स्वर्गों में तीव्र आर्तध्यान का अभाव है, अतः यहाँ के मिथ्यादृष्टि देव तिर्यञ्च योनि में कभी भी उत्पन्न नहीं होते ॥३८२-३९१॥

अब मरण चिह्नों को देखकर सम्यग्दृष्टि देव क्या चिन्तन करते हैं और उसका उन्हें क्या फल मिलता है? इसे कहते हैं–

मृत्युचिह्नानि वीक्ष्यान्ते सम्यग्दृष्टिसुरोत्तमाः।
दक्षाः कालुष्यनाशायेमं विचारं प्रकुर्वते ॥३९२॥
शक्राणामपि चात्राहो न मनाग्नियमं व्रतम्।
न तपो न च सद्ज्ञानं न शिवं शाश्वतं सुखम् ॥३९३॥
किन्तु मर्त्यभवेन्नृणां तपोरत्नत्रयादयः।
व्रतशीलानि सर्वाणि जायन्ते च शिवादिकाः ॥३९४॥
अतोऽद्याद्भुतपुण्येन नृभवं प्राप्य सत्कुलम्।
साधनीयं किलास्माभिर्मोक्षोऽनन्तसुखाकरः ॥३९५॥
इत्थं विचार्य सद्देवा विधाय विविधार्चनाम्।
अर्हतां मरणान्ते च चित्तं कृत्वाति निश्चलम् ॥३९६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ध्यायन्तः कुड्मलीकृत्य स्वकरौ परमेष्ठिनाम्।
नमस्कारान् परान् पञ्चेहामुत्र स्वेष्टसिद्धिदान् ॥३९७॥
तिष्ठन्ति पुण्यसत्क्षेत्रे तदामीषां वपूंषि च।
अभ्राणीव विलीयन्ते सहसा स्वायुषि क्षये ॥३९८॥
ततस्ते दृग्विशुद्ध्याप्ता देवास्तत्पुण्यपाकतः।
तीर्थेशविभवं केचिल्लभन्ते विश्ववन्दितम् ॥३९९॥
केचिच्चक्रिपदं चान्ये बल-कामादिसत्पदम्।
नृभवे सुकुलं केचिद्धनाढ्यं धर्मकारणम् ॥४००॥

अर्थ—हिताहित के विचार में दक्ष सम्यग्दृष्टि उत्तम देव मानसिक कलुषता को दूर करने के लिए इस प्रकार विचार करते हैं कि–अहो! यहाँ स्वर्गों में इन्द्रों के भी न किञ्चित् यम, नियम हैं और न तप है और न दान आदि हैं और तप आदि के बिना मोक्षरूप शाश्वत सुख की प्राप्ति हो नहीं सकती किन्तु मनुष्य भव में मनुष्यों को मोक्ष के साधनभूत तप, रत्नत्रय, व्रत एवं शील आदि सभी प्राप्त हो जाते हैं, अतः आज अद्भुत पुण्य परिपाक से हम लोगों को मनुष्य भव और उत्तम कुल की प्राप्ति हो रही है, उसे प्राप्त कर हम लोग अनन्त सुख की खान स्वरूप मोक्ष का साधन करेंगे। इस प्रकार के विचार कर उत्तम देव नाना प्रकार से अर्हन्त देव की पूजन करके मरण के अन्तिम समय में अपने चित्त को अत्यन्त निश्चल करते हुए अपने दोनों हाथ जोड़कर पंच परमेष्ठियों का ध्यान करते हैं तथा इस लोक और परलोक में आत्मसिद्धि देने वाला नमस्कार करते हैं। मरण बेला में किसी पुण्यरूप उत्तम क्षेत्र में जाकर बैठ जाते हैं, वहाँ आयु क्षय होते ही उन देवों का शरीर मेघों के सदृश शीघ्र ही विलीन हो जाता है। शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने वाले वे उत्तम देव वहाँ से चयकर कोई तो पुण्य प्रभाव से विश्व वन्दनीय तीर्थंकर के वैभव को प्राप्त करते हैं, कोई चक्रवर्ती पद को कोई बलदेव पद और कोई कामदेव आदि के उत्तम पद प्राप्त करते हैं एवं कोई-कोई देव मनुष्य भव तथा उत्तम कुल में धर्म के कारणभूत अति धनाढ्य होते हैं ॥३९२-४००॥

अब धर्म के फल का प्रतिपादन करते हुए आचार्य व्रत, तप आदि धारण करने की प्रेरणा देते हैं–

इत्थं धर्मविपाकतश्च विबुधाः स्वर्गेषु नानाविधं।
सत्सौख्यं चिरकालमक्षजमहो! भुञ्जंति बाधातिगम्।
ज्ञात्वेतीह बुधाः प्रयत्नमनसा सारैस्तपः सद्व्रतै-
र्धर्मैकं चरतानिशं किमपरैर्व्यर्थैश्चवाग्डम्वरैः ॥४०१॥

अर्थ—अहो! इस प्रकार विवेकी जीव धर्म के फल से स्वर्गों में चिरकाल तक नाना प्रकार के बाधारहित इन्द्रियजन्य उत्तम सुख भोगते हैं। ऐसा जानकर विद्वानों को, मनुष्य भव में सारभूत उत्तम तप और उत्तम व्रतों के द्वारा निरन्तर मनोयोगपूर्वक एक धर्म के आचरण में ही प्रयत्न करना चाहिए,

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

व्यर्थ के अन्य वचन आडम्बरों से क्या? ॥४०१॥

धर्म की महिमा—

धर्मः स्वर्गगृहाङ्गणः सुखनिधिर्धर्मः शिवश्रीप्रदो,
धर्मःस्वेष्टसमीहितार्थजनको धर्मोगुणाब्धिर्महान्।
धर्मो धर्मविधायिनां द्विसुगतौ नाना सुभोगप्रद-
स्तत्किं यन्न ददाति किं तु कुरुते स्वस्थांस्त्रिलोकीपतीन् ॥४०२॥

अर्थ—धर्म से स्वर्ग लोक गृह का आँगन हो जाता है, धर्म सुख की निधि और मोक्ष लक्ष्मी को देने वाला है, धर्म अपने इष्ट एवं चिन्तित पदार्थों का जनक है, धर्म गुणों का सागर है, धर्म धारण करने वाले जीवों को धर्म उत्तम भोग प्रदायी स्वर्ग और मनुष्य गति देता है, धर्म केवल इतना ही नहीं देता किन्तु अष्ट कर्मों को नष्ट करके धर्म त्रैलोक्यपति पद अर्थात् मोक्ष पद को भी दे देता है ॥४०२॥

अधिकारान्त मङ्गलाचरण—

धर्मं येऽत्र सृजन्ति तीर्थपतयो धर्माच्छिवं ये गताः,
धर्मे ये गणिनो विदश्च मुनयस्तिष्ठन्ति धर्माप्तये।
ये स्वर्गादिजगत्सुचैत्यनिलया धर्मस्य सद्धेतवः
तीर्थेशप्रतिमादयः प्रतिदिनं वन्देऽखिलांस्तान् स्तुवे ॥४०३॥

इति श्री सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते स्वर्गाद्यूर्ध्वलोक वर्णनोनाम पञ्चदशाधिकारः।

अर्थ—जो तीर्थंकर देव यहाँ धर्म के सृजन करने वाले थे, वे धर्म से ही मोक्ष गये हैं। उन सबको, धर्म में स्थित आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं को, स्वर्ग आदि में स्थित धर्म के साधनभूत उत्तम जिनमन्दिरों को और लोक में जितनी भी तीर्थंकर आदि की प्रतिमाएँ हैं, उन सबको मैं प्रतिदिन नमस्कार करता हूँ और उन सबकी स्तुति करता हूँ ॥४०३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नाम महाग्रन्थ में ऊर्ध्वलोक का प्ररूपण करने वाला पञ्चदश अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

षोडश अधिकार

पल्यादि मान वर्णन

मंगलाचरण

अथ सिद्धव्रजान्नत्वा त्रिजगन्मूर्द्ध्नसंस्थितम्।
सिद्धक्षेत्रं प्रवक्ष्यामि सतां वन्द्यं तदाप्तये ॥१॥

अर्थ—अब सिद्धों के समूह को नमस्कार कर तीनों लोकों के मस्तक पर स्थित तथा सज्जनों के वन्दनीक सिद्ध क्षेत्र का कथन उसकी प्राप्ति के हेतु करूँगा ॥१॥

अब अष्टम पृथ्वी की अवस्थिति और उसका प्रमाण कहते हैं—

सर्वार्थसिद्धितो गत्वाप्यूर्ध्वद्वादशायोजनैः।
त्रैलोक्यमस्तके तिष्ठेत् महती वसुधाष्टमी ॥२॥
दक्षिणोत्तरदीर्घाङ्गा सप्तरज्जुभिरूर्जिता।
पूर्वापरेण रज्ज्वेकव्यासा स्थूलाष्टयोजनैः ॥३॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि से बारह योजन (४८००० मील) ऊपर जाकर त्रैलोक्य के मस्तक पर ईषत्प्राग्भार नाम की श्रेष्ठ अष्टम पृथ्वी अवस्थित है। उस अष्टम पृथ्वी की दक्षिणोत्तर लम्बाई सात राजू प्रमाण, पूर्व पश्चिम चौड़ाई एक राजू एवं मोटाई आठ योजन प्रमाण है ॥२-३॥

अब सिद्ध शिला की अवस्थिति, आकार एवं उसका प्रमाण आदि कहते हैं—

तन्मध्ये रजतच्छाया दिव्या मोक्षशिला शुभा।
उत्तानगोलकार्धेन समाना दीप्तिशालिनी ॥४॥
नृक्षेत्रसमविस्तीर्णा छत्राकारा विभात्यलम्।
मध्येऽष्टयोजनस्थूला कृशान्ते क्रमहानितः ॥५॥

अर्थ—ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय, दिव्य, सुन्दर, देदीप्यमान और ऊँचे रखे हुए अर्ध गोले के सदृश मोक्षशिला है। यह अत्यन्त प्रभायुक्त छत्राकार और मनुष्य लोक के सदृश (४५ लाख योजन) विस्तार वाली है। इस शिला की मध्य की मोटाई आठ योजन है, आगे अन्त पर्यन्त क्रमशः हीन होती गई है ॥४-५॥

अब सिद्ध भगवान् का स्वरूप कहते हैं—

तस्यां सिद्धा जगद्वन्द्यास्तनुवातान्तमस्तकाः।
अनन्तसुखसंलीना नित्याष्टगुणभूषिताः ॥६॥
कायोत्सर्गसमाः केचित् पर्यङ्कासन सन्निभाः।
केचिच्च विविधाकारा अमूर्ता ज्ञानदेहिनः ॥७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

गतसिक्थकमूषायां आकाशाकारधारिणः।
प्राक्कायायामविस्तार त्रिभागोनप्रदेशकाः ॥८॥
लोकोत्तमाः शरण्याश्च मङ्गलविश्वकारकाः।
अनन्तकालमात्माप्तास्तिष्ठन्त्यन्तातिगाः सदा ॥९॥
इमे सिद्धा मया ध्येया वन्द्या विश्वमुनीश्वरैः।
स्तुताश्च मम कुर्वन्तु स्वगतिं स्वगुणैः समम् ॥१०॥

अर्थ—तनुवातवलय के अन्त में हैं मस्तक जिनके, ऐसे त्रिजगद्वन्दनीय, अनन्त सुख में निमग्न और नित्य ही अष्ट गुणों से विभूषित सिद्ध परमेष्ठी उस सिद्ध शिला से ऊपर अवस्थित हैं। ज्ञान ही है शरीर जिनका, ऐसे वे अमूर्तिक सिद्ध कोई कायोत्सर्ग से और कोई पद्मासन से नाना प्रकार के आकारों से अवस्थित हैं। पुरुषाकार मोम रहित साँचे में जिस प्रकार आकाश पुरुषाकार को धारण करके रहता है, उसी प्रकार पूर्व शरीर के आयाम एवं विस्तार में से एक त्रिभाग कम पुरुषाकार प्रदेशों से युक्त, लोकोत्तम स्वरूप, शरण स्वरूप और समस्त विश्व को मंगलस्वरूप सिद्ध भगवान् अन्तरहित अनन्तकाल पर्यन्त अपनी आत्मा में ही रहते हैं। इस प्रकार के सिद्ध भगवान् विश्व के समस्त अरहंतों और मुनीश्वरों के द्वारा वन्द्य तथा स्तुत्य हैं, मैं भी उनका ध्यान करता हूँ, वे मुझे अपने गुणों के सदृश अपनी सिद्ध गति प्रदान करें ॥६-१०॥

अब सिद्धों के सुखों का वर्णन करते हैं—

इन्द्राहमिन्द्रदेवानां चक्रवर्त्यादिभूभुजाम्।
भोगभूमिभवार्याणां सर्वेषां व्योमगामिनाम् ॥११॥
भूतं भावि सुखं सर्वं वर्तमानं जगत्त्रये।
यदेकत्रीकृतं स्याच्च विषयोत्थत्रिकालजम् ॥१२॥
तस्मादक्षसुखात्कृत्स्नादनन्तगुणितं सुखम्।
एकेन समयेनैव सिद्धा भुञ्जन्ति शाश्वतम् ॥१३॥
स्वात्मोपादानसञ्जातं वृद्धिह्रासोज्झितं परम्।
परद्रव्य निरपेक्षं समस्तोत्कृष्टमञ्जसा ॥१४॥
निराबाधं निरौपम्यं दुःखदूरं सुखोद्भवम्।
अत्यक्षमतुलं सारं विश्वशर्माग्रसंस्थितम् ॥१५॥

अर्थ—तीनों लोकों में चतुर्निकाय के सर्व देवों, इन्द्रों, अहमिन्द्रों, पदवीधारी चक्रवर्ती आदि सर्व राजाओं, भोगभूमिज युगलों और सर्व विद्याधरों के भूत, भविष्यत्, वर्तमान के सर्व सुख को एकत्र कर लेने पर भी त्रिकालज विषयों से उत्पन्न होने वाले इस इन्द्रिय जन्य समस्त सुखों से (विभिन्न जाति का) अनन्तानन्त गुणा शाश्वत एवं अतीन्द्रिय सुख सिद्ध परमेष्ठी एक समय में भोगते हैं। लोक के अग्रभाग में स्थित सिद्ध परमेष्ठी अपनी आत्मा के उपादान से उत्पन्न, वृद्धि-ह्रास से रहित, पर द्रव्यों

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

से निरपेक्ष, सर्व सुखों में सर्वोत्कृष्ट, बाधा रहित, उपमा रहित, दु:ख रहित, अतीन्द्रिय, अनुपम सुख से उत्पन्न और समस्त सुखों में जो सारभूत है, ऐसे सुख का उपभोग निरन्तर करते हैं ॥११-१५॥

अब अधोलोक जन्य प्रत्येक भूमियों का भिन्न-भिन्न घन फल कहते हैं–

अथ पूर्वोक्तलोकस्य घनाकारेण रज्जुभि:।
अधोमध्योर्ध्वभागेषु पृथक् संख्या निगद्यते ॥१६॥
रत्नप्रभामहीभागे रज्जवो दशसम्मिता:।
शर्कराश्वभ्रभूदेशे रज्जव: षोडशप्रमा: ॥१७॥
वालुका भूतलेद्वाविंशति संख्याश्च रज्जव:।
पङ्कप्रभावनिक्षेत्रे ह्यष्टाविंशति रज्जव: ॥१८॥
धूमप्रभाक्षितौ रज्जव: चतुस्त्रिंशदञ्जसा।
तम:प्रभाखिलेक्षेत्रे चत्वारिंशच्च रज्जव: ॥१९॥
महातम: प्रभान्ते षड्चत्वारिंशच्च रज्जव:।
इत्यधोलोकरज्जूनां षण्णवत्यधिकं शतम् ॥२०॥

अर्थ–अब सिद्धों के सुखों का वर्णन करने के बाद पूर्व में जो लोक का ३४३ घन राजू क्षेत्रफल कहा गया था, उसी को अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक इन तीन भागों में विभाजित करके अधोलोक सम्बन्धी प्रत्येक पृथ्वी के घनफल की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं ॥१६॥ रत्नप्रभा पृथ्वी (उपरिम प्रथम भाग) का घनफल १० घन राजू प्रमाण है। शर्करा पृथ्वी (द्वितीय भाग) का १६ घन राजू प्रमाण, बालुका प्रभा (तृतीय भाग) का २२ घन राजू, पंकप्रभा (चतुर्थ भाग) का २८ घन राजू, धूम प्रभा (पंचम भाग) का ३४ घन राजू, तम:प्रभा (षष्ठ भाग) का ४० घन राजू और महातम:प्रभा पृथ्वी (सप्तम भाग) का घन फल ४६ घन राजू प्रमाण है। इस प्रकार अधोलोक का सर्व घन फल (१० + १६ + २२ + २८ + ३४ + ४० + ४६ =) १९६ घन राजू प्रमाण है ॥१६-२०॥

विशेष–किसी भी क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई या मोटाई का परस्पर में गुणा करने से उस क्षेत्र का घनफल प्राप्त होता है। अथवा–मुख और भूमि को जोड़कर उसका आधा करके मोटाई एवं ऊँचाई से गुणा करने पर घनफल प्राप्त होता है। यथा–प्रथम पृथ्वी (उपरिम भाग) का पूर्व-पश्चिम व्यास $\frac{१३}{७}$ राजू है, जो भूमि स्वरूप हुआ। मुख १ राजू है, $\frac{१}{१} + \frac{१३}{७} = \frac{२०}{७} \times \frac{१}{२} = \frac{१०}{७} \times \frac{७}{१} \times \frac{१}{१}$ =१० घन राजू। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए।

अब प्रत्येक स्वर्गों का भिन्न-भिन्न घनफल कहते हैं–

सौधर्मयुगले रज्जव: सार्धैकोनविंशति:।
द्वितीयेयुगले सार्धसप्तत्रिंशच्च रज्जव: ॥२१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ब्रह्मादिद्वययुग्मे च त्रयस्त्रिंशच्च रज्जवः।
शुक्रादियुगले सन्ति सार्धद्विसप्तरज्जवः ॥२२॥
शतारयुगलेसार्धद्वादशप्रमरज्जवः ।
आनतप्राणते सार्धदशरज्जव एव हि ॥२३॥
आरणाच्युतभूक्षेत्रे सार्धाष्ट रज्जवो मताः।
ग्रैवेयकादिलोकान्ते ह्येकादशैव रज्जवः ॥२४॥
इति त्रिविधलोकस्य घनाकारेण पिण्डिताः।
रज्जवः स्युस्त्रिचत्वारिंशदग्रत्रिशतप्रमाः ॥२५॥

अर्थ—सौधर्म युगल का घनफल १९$\frac{१}{२}$ घन राजू प्रमाण है। दूसरे युगल का ३७$\frac{१}{२}$ घन राजू, ब्रह्मादि दो युगलों का घनफल ३३-३३ घन राजू, शुक्र-महाशुक्र युगल का १४$\frac{१}{२}$ घन राजू, शतार युगल का १२$\frac{१}{२}$ घन राजू, आनत-प्राणत स्वर्ग का १०$\frac{१}{२}$ राजू, आरण-अच्युत युगल का ८$\frac{१}{२}$ घन राजू तथा ग्रैवेयकों से लेकर लोक के अन्त पर्यन्त का घनफल ११ घन राजू प्रमाण है। इस प्रकार ऊर्ध्वलोक का सर्व घनफल (१९$\frac{१}{२}$+ ३७$\frac{१}{२}$+ ३३ + १४$\frac{१}{२}$ +१२$\frac{१}{२}$+१०$\frac{१}{२}$+८ $\frac{१}{२}$+११=) १४७ घन राजू प्रमाण है और तीनों लोकों का एकत्र घनफल (१९६+१४७)= ३४३ घन राजू प्रमाण है ॥२१-२५॥

विशेष—ऊर्ध्व और अधोलोक के घनफल में ही मध्यलोक गर्भित है। यह लोक का ३४३ घन राजू घनफल वातवलयों सहित है।

अब लोक और लोकोत्तर मानों का वर्णन करते हैं—

अथ मानं प्रवक्ष्यामि नानाभेदं जिनागमात्।
व्यासोत्सेधादिसंख्यार्थं त्रिधालोकस्य सर्वतः ॥२६॥
मानं लौकिकलोकोत्तर भेदाभ्यां मतं द्विधा।
लोकशास्त्रानुसारेण लौकिकं विविधं भवेत् ॥२७॥
एको दश शतं तस्मात्सहस्त्रमयुतं ततः।
लक्षं तथा प्रयुक्तं च कोटिर्दशगुणाः क्रमात् ॥२८॥
इत्यङ्को वर्धते युक्त्योत्तरोत्तरादिसंख्यया।
तथा प्रस्थतुलादीनि मानानि विविधानि च ॥२९॥
कीर्तितानि बुधैर्लोके व्यवहारप्रसिद्धये।
अन्यलोकोत्तरं मानं चतुर्भेदमिति ब्रुवे ॥३०॥
आदिमं द्रव्यमानं च द्वितीयं क्षेत्रमानकम्।
तृतीयं कालमानं स्याच्चतुर्थं भावमानकम् ॥३१॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—अब मैं जिनागम से तीन प्रकार के लोक का व्यास, उत्सेध एवं आयाम आदि की संख्या का निरूपण करने के हेतु नाना प्रकार के मान को कहूँगा। लौकिक और लोकोत्तर के भेद से मान दो प्रकार का है। लोकशास्त्र के अनुसार (लोक व्यवहार में) लौकिक मान अनेक प्रकार का होता है। यह लौकिक मान क्रम से एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़ और दस करोड़ आदि अंकों के भेद से उत्तरोत्तर संख्या रूप से वृद्धिंगत होता जाता है तथा लोकव्यवहार की सिद्धि के लिए विद्वानों द्वारा प्रस्थ एवं तुला आदि नाना प्रकार के मान कहे गये हैं एवं अन्य अर्थात् लोकोत्तर मान चार प्रकार का कहा गया है। चार प्रकार के लोकोत्तर मानों में प्रथम द्रव्यमान, द्वितीय क्षेत्रमान, तृतीय कालमान और चतुर्थ भावमान है ॥२६-३१॥

अब द्रव्यमान के भेद प्रभेदों को कहते हैं—

संख्योपमादि भेदाभ्यां द्रव्यमानं द्विधास्मृतम्।
संख्यामानं त्रिधाख्यातं उपमामानमष्टधा ॥३२॥
तत्संख्यातमसंख्यातमनन्तं च भवेत् त्रिधा।
जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदैः संख्यातकं त्रिधा ॥३३॥
परीतासंख्यनामाद्यं युक्तासंख्यं द्वितीयकम्।
असंख्यासंख्यकं चेत्यसंख्यातं त्रिविधं मतम् ॥३४॥
जघन्यमध्यमोत्कृष्टप्रकारैस्तत्पृथग्विधम् ।
प्रत्येकं त्रिविधं स्यादसंख्यातं नवधेत्यपि।३५॥
परीतानन्तनामाथ युक्तानन्ताह्वयं ततः।
अनन्तानन्तसंज्ञं चेत्यनन्तं त्रिविधं भवेत् ॥३६॥
प्रत्येकं त्रिविधं तच्च जघन्यं मध्यमाभिधम्।
उत्कृष्टमित्यनंतस्य स्युर्भेदा नवपिण्डिताः ॥३७॥
एते पिण्डीकृता सर्वे भेदाः स्युरेकविंशतिः।
संख्यासंख्यात्मकानन्तानां नामभिः पृथग्विधः ॥३८॥

अर्थ—संख्या और उपमा के भेद से द्रव्यमान दो प्रकार का कहा गया है। इसमें संख्या मान तीन प्रकार का और उपमा मान अष्ट प्रकार का है। संख्यात, असंख्यात और अनन्त के भेद से संख्या मान तीन प्रकार का है तथा संख्यात भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से तीन प्रकार का है। परीता-संख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात के भेद से असंख्यात तीन प्रकार का है। इनमें जघन्य परीतासंख्यात, मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, मध्यम युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्यातासंख्यात, मध्यम असंख्यातासंख्यात और उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात के भेद से असंख्यात नौ प्रकार का है। परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त के

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भेद से अनन्त तीन प्रकार का है तथा इन तीनों के भी भिन्न-भिन्न जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से तीन-तीन प्रकार होते हैं, इन सबको मिला देने से अनन्तानन्त के भी नौ भेद होते हैं। संख्यात, असंख्यात और अनन्त इन तीनों के पृथक्-पृथक् सर्व भेदों को जोड़ देने से संख्या प्रमाण के सर्व भेद (३+९+९) = २१ होते हैं ॥३२-३८॥

अब इसी संख्या प्रमाण का सविस्तार वर्णन करते हैं—

अमीषां सुखबोधाय संस्कृतभाषया पृथक् व्याख्यानं क्रियते—

अनवस्था-शलाका-प्रतिशलाका महाशलाका नामानि लक्षयोजनवृत्त विस्ताराणि सहस्र-योजनावगाहानि चत्वारि कुण्डानि कारयेत्। ततः कश्चिद्देवो दानवो वा वृत्तसर्षपैरनवस्थाकुण्डं प्रपूरयेत्। तदनन्तरं कुण्डसर्षपान् तान् गृहीत्वा स एकं सर्षपं शलाकाकुण्डे प्रक्षिप्य शेषान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपसागरेषु प्रक्षिपेत्। एवं कृते यस्मिन् द्वीपे समुद्रे वा अन्तिमः सर्षपोनिक्षिप्तः तावन्मात्रं सूच्यात्मकं अनवस्थाकुण्डं कृत्वा सर्षपैः प्रपूर्य तान् सर्षपानादाय पूर्ववदेकं सर्षपं शलाकाकुण्डे निक्षिप्य शेषान् सर्षपान् द्वीपवार्धिषु निक्षिपेत्। पुनः यस्मिन् द्वीपे वार्धौ वान्त्यः सर्षपो भवति तत्रैव तावन्मात्रं कुण्डं विधाय सर्षपपूर्णं कृत्वा प्राग्वदेकं शलाकाकुण्डे-क्षिप्त्वा शेषान् गृहीत्वा तान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपसागरेषु क्षिपेत्। अनेन विधिना अनवस्थाकुण्डं वारं वारं तावद्विवर्धयेत् यावत् शलाकाकुण्डं सर्षपैः पूर्णं भवति। पुनस्तदन्तिमं द्वीपवार्धिस्थं अनवस्था कुण्डं सर्षपपूर्णं कृत्वा पूर्ववत्तान् सर्षपानादायैकं सर्षपं प्रतिशलाकाकुण्डे प्रक्षिप्य शेषाँस्तान् एकैक रूपेण क्रमेण द्वीपवार्द्धिषु क्षिपेत्। अनेन विधिना मुहुर्मुहुरनवस्था कुण्डं तावद्वर्धयेत् यावत् प्रतिशलाकाकुण्डं सर्षपैः पूर्णं स्यात्। ततः पूर्ववत् तदन्तिमं वर्धमानमऽनवस्थाकुण्डं सर्षपैः पूरयेत्। पुनस्तान् सर्षपान् गृहीत्वा एकं सर्षपं महाशलाकाकुण्डे क्षिप्त्वा शेषान् सर्षपान् एकैक रूपेण द्वीपाम्बुधिषु क्षिपेत्। एवमनवस्थाकुण्डं तावद्वर्धयेत् यावन्महाशलाका कुण्डं सर्षपैः पूर्णतां याति। एवं कुण्डत्रये पूर्णे सति प्रवर्द्धिते द्वीपसागरस्थे अनवस्था कुण्डे यावन्तः सर्षपाः सन्ति तावन्मात्रं जघन्यपरीतासंख्यातं कथ्यते। जघन्यपरीता संख्यातादेकस्मिन् सर्षपेऽपनीते सर्वोत्कृष्टं संख्यातं जायते। यद् रूपद्वयं तज्जघन्यं संख्यातं। जघन्योत्कृष्टयोर्मध्ये मध्यमं संख्यातं नानाभेदं स्यात्। तानि जघन्यपरीतासंख्यातरूपाणि अन्य जघन्यपरीता-संख्यातरूपैर्गुणितानि कृत्वा यावत्प्रमाणानि रूपाणि तावन्मात्रं जघन्ययुक्तासंख्यातमुत्पद्यते। जघन्ययुक्ता-संख्यातादेकरूपेऽपनीते परीतासंख्यातमुत्कृष्टं भवति। जघन्यपरीतासंख्यातोत्कृष्टपरीतासंख्यातयोर्मध्ये मध्यमपरीतासंख्यातं नानाप्रकारं स्यात्। तज्जघन्ययुक्तासंख्यातं अपरेण युक्तासंख्यातजघन्येन गुणित्वा तत्र यावन्मात्राणि रूपाणि तावन्मात्रं जघन्यासंख्यातासंख्यातं स्यात्। जघन्यासंख्यातासंख्यातादेकस्मिन् रूपेऽपनीते उत्कृष्टयुक्तासंख्यातं जायते। जघन्योत्कृष्टयोर्युक्तासंख्यातयोर्मध्ये मध्यमयुक्तासंख्यातं बहुभेदभिन्नं भवति।

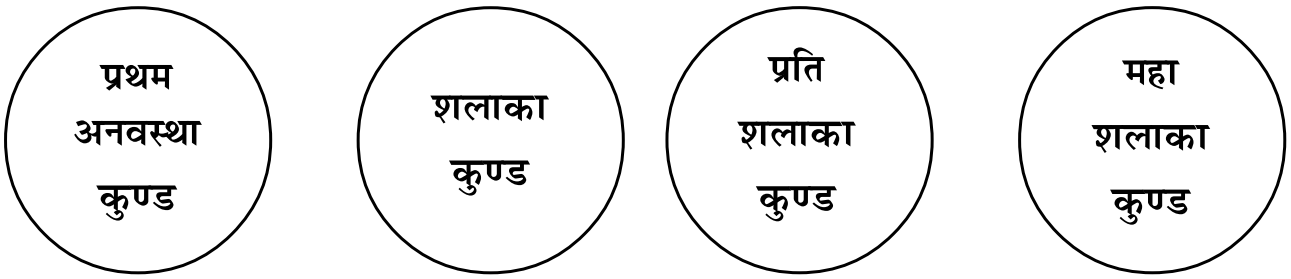
तज्जघन्यासंख्यातासंख्यातं त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च कृत्वा धर्माधर्मैकजीवलोकाकाशप्रदेशं प्रत्येकशरीर-बादर-प्रतिष्ठितवनस्पति कायिकेषु संयुक्तं कृत्वा पुनरपि त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

विधाय स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानानुभागाध्यवसानोत्कृष्ट योगाविभागप्रतिच्छेदोत्सर्पिण्यवसर्पिणी समयान्वितं कृत्वा जघन्यपरीतानन्तं भवति। जघन्यपरीतानन्तादेकरूपेऽपनीते असंख्यातासंख्यातमुत्कृष्टं जायते। तयोर्जघन्योत्कृष्टासंख्यातासंख्यातयोर्मध्ये मध्यमासंख्यातासंख्यातं नानाभेदं स्यात्। जघन्यपरीतानन्तरूपाणि जघन्य परीतानन्तरूपमात्राणि परस्परं प्रगुण्य यत्प्रमाणं भवति तज्जघन्यं युक्तानन्तं स्यात्। जघन्ययुक्तानन्ताद् रूपैकस्मिन्नपनीते उत्कृष्टपरीतानन्तं जायते। जघन्योत्कृष्टयोः परीतानन्तयोर्मध्ये मध्यमपरीतानन्तं नाना प्रकारं स्यात्। तज्जघन्ययुक्तानन्तं अपरेण जघन्ययुक्तानन्तेन गुणितं जघन्यानन्तानन्त भवति। जघन्यानन्तानन्तादेकरूपेऽपनीते उत्कृष्टयुक्तानन्तमुत्पद्यते। जघन्योत्कृष्ट-युक्तानन्तयोर्मध्ये मध्यमं युक्तानन्तं बहुभेदमस्ति। जघन्यानन्तानन्तं त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च विधाय सिद्ध-निकोतजीववनस्पतिकायिककाल-पुद्गलद्रव्याणु सर्वालोकाकाशप्रदेशान् तन्मध्ये प्रक्षिप्य पुनरपि त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च धर्मास्तिकाया गुरुलघुगुणान् प्रक्षिप्य पुनः त्रीन् वारान् वर्गितं संवर्गितं च विधाय केवलज्ञानकेवलदर्शने प्रक्षिप्ते सति उत्कृष्टानन्तानन्तं भवति। जघन्योत्कृष्ट-योरनन्तानन्तयोर्मध्ये मध्यमानन्तानन्तं विचित्रभेदं स्यात्। यत्र भव्यानां संख्या स्यात्। यत्र यत्रानन्तप्रमाणं प्रोच्यते तत्र तत्राजघन्योत्कृष्टानन्तानन्तं ग्राह्यं। यत्राभव्यानां संख्या कथ्यते तत्र जघन्ययुक्तानन्तं ज्ञातव्यं। यत्रावलिकादयः समयाः प्रोच्यन्ते तत्र जघन्ययुक्तासंख्यातं स्यात्। संख्यातं श्रुतज्ञानस्य विषयं भवति। असंख्यातं अवधिज्ञानस्य प्रत्यक्षं स्यात्। अनन्तं केवलज्ञानस्य युगपत्सकलप्रत्यक्षं सदास्ति।

अब संख्या प्रमाण का सुख से बोध कराने हेतु पृथक् पृथक् व्याख्यान करते हैं–

एक लाख योजन व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाले अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका नाम के चार कुण्डों का स्थापन करना चाहिए। यथा–



इसके बाद कोई देव अथवा असुर इन्हें गोल सरसों से भरे। उसके बाद उस कुण्ड के सरसों को ग्रहण कर वह एक सरसों शलाका कुण्ड में डाल कर शेष सरसों को एक-एक द्वीप समुद्र में डालता जाये, जिस द्वीप या समुद्र में अन्तिम सरसों डाली जाये, उतने प्रमाण का एक दूसरा अनवस्था कुण्ड तैयार करके उसे पुनः सरसों से भरे और उन सरसों को ग्रहण कर पूर्ववत् एक सरसों शलाका कुण्ड में डालकर शेष सरसों को आगे-आगे के द्वीप समुद्रों में एक-एक कर डाले और जिस द्वीप या समुद्र में अन्तिम सरसों पड़े, उतने मात्र सूची व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाला पुनः एक अनवस्था कुण्ड बनाकर उसे सरसों से भरे और पूर्ववत् एक सरसों शलाका कुण्ड में डालकर शेष सरसों को

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

एक-एक कर आगे के एक-एक द्वीप समुद्रों में डालता जाये। इसी प्रकार की विधि से बार-बार अनवस्था कुण्डों की वृद्धि तब तक करता जाये, जब तक कि एक लाख योजन व्यास और एक हजार योजन उत्सेध वाला शलाका कुण्ड, सरसों से पूर्ण न भर चुके। शलाका कुण्ड भरते समय जिस द्वीप या समुद्र में अन्तिम सरसों डाली जाय, उतने क्षेत्र प्रमाण पुनः अनवस्था कुण्ड बनाकर उसे सरसों से भरे और फिर उन सरसों को लेकर एक दाना प्रति शलाका कुण्ड में डालकर शेष को आगे के एक-एक द्वीप समुद्र में डाले। इस प्रकार पुनः पुनः अनवस्था कुण्ड को तब तक बढ़ाता जाये जब तक कि प्रति शलाका कुण्ड सरसों से पूर्ण न भर जाय। इसके बाद वृद्धिंगत अन्तिम अनवस्था कुण्ड को सरसों से भरे और उन सरसों को लेकर एक दाना महा शलाका कुण्ड में डालकर शेष सरसों को एक-एक द्वीप समुद्र में डाले। इस प्रकार अनवस्था कुण्ड तब तक बढ़ाये जब तक कि महाशलाका कुण्ड सरसों से पूर्ण न भर जाये। इसी क्रम से तीनों कुण्ड भर जाने पर बढ़ते हुए जिस द्वीप या सागर पर्यन्त जो अन्तिम अनवस्था कुण्ड बनाकर सरसों भरी गई है, वह सरसों जितने संख्या प्रमाण है, उतनी ही संख्या जघन्य परीतासंख्यात की कही गई है। जघन्य परीतासंख्यात के प्रमाण में से एक सरसों निकाल लेने पर जो प्रमाण बचता है वही उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण है तथा दो की संख्या जघन्य संख्यात है। इन जघन्य और उत्कृष्ट संख्यात के मध्य में मध्यम संख्यात नाना भेद वाला है। उस जघन्य परीतासंख्यात के प्रमाण को जघन्य परीतासंख्यात बार जघन्य परीतासंख्यात के ही प्रमाण से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है उतने प्रमाण संख्या को जघन्य युक्तासंख्यात कहते हैं। जघन्य युक्तासंख्यात के प्रमाण में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतासंख्यात होता है। जघन्य परीतासंख्यात और उत्कृष्ट परीतासंख्यात के मध्य में मध्यम परीतासंख्यात नाना प्रकार का होता है। जघन्य युक्तासंख्यात को एक अन्य जघन्य युक्तासंख्यात से गुणित करने पर जितना प्रमाण प्राप्त होता है, उतना ही प्रमाण जघन्य असंख्यातासंख्यात का होता है। जघन्य असंख्यातासंख्यात के प्रमाण में से एक अंक कम करने पर उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है। जघन्य और उत्कृष्ट युक्तासंख्यात के मध्य में मध्यम युक्तासंख्यात अनेक भेदों वाला होता है।

जघन्य असंख्यातासंख्यात को तीन बार वर्गित संवर्गित करके अर्थात् शलाकात्रय की परिसमाप्ति होने पर (इसकी प्रक्रिया त्रिलोकसार गाथा नं. ३८, ३९, ४० की टीका में देखना चाहिए) जो मध्यम असंख्यातासंख्यात स्वरूप राशि उत्पन्न हो उसको (१) धर्म द्रव्य (२) अधर्म द्रव्य (३) एक जीव द्रव्य (४) लोकाकाश के प्रदेश (५) अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति और (६) बादर प्रतिष्ठित वनस्पति जीवों के प्रमाण से मिलाकर पुनः पूर्वोक्त रीत्या तीन बार वर्गित संवर्गित करने पर मध्यम असंख्यातासंख्यात रूप जो महाराशि उत्पन्न हो उसमें (१) स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान (जो कल्पकाल के समयों से असंख्यात गुणे हैं) (२) अनुभाग बन्धाध्यवसाय स्थान (३) योग के उत्कृष्ट अविभाग-प्रतिच्छेद और (४) उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी स्वरूप कल्पकाल के समयों का प्रमाण मिलाने पर (पुनः पूर्वोक्त रीत्या

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

तीन बार वर्गित-संवर्गित करने पर) जो राशि उत्पन्न हो वह जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है। जघन्य परीतानन्त के प्रमाण में से एक अंक निकाल लेने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण होता है। जघन्य परीतानन्त के प्रमाण को जघन्य परीतानन्त वार जघन्य परीतानन्त के प्रमाण से गुणित करने पर जो लब्ध उत्पन्न होता है, वह जघन्य युक्तानन्त का प्रमाण है। जघन्य युक्तानन्त के प्रमाण में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट परीतानन्त का प्रमाण होता है। जघन्य परीतानन्त और उत्कृष्ट परीतानन्त के मध्य में मध्यम परीतानन्त अनेकानेक प्रकार वाला है। जघन्य युक्तानन्त के प्रमाण को एक अन्य जघन्य युक्तानन्त के प्रमाण से गुणित कर देने पर जघन्य अनन्तानन्त होता है, जघन्य अनन्तानन्त के प्रमाण में से एक अंक निकाल लेने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त का प्रमाण उत्पन्न होता है। जघन्य और उत्कृष्ट युक्तानन्त के मध्य में मध्यम युक्तानन्त अनेकानेक भेद वाला होता है। जघन्य अनन्तानन्त रूप महाराशि को तीन बार वर्गित-संवर्गित करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसमें (१) सिद्ध राशि (२) निगोद राशि (३) वनस्पतिकायिक राशि (४) सम्पूर्ण काल के समयों स्वरूप काल राशि (५) पुद्गल द्रव्य रूप सम्पूर्ण अणुओं की राशि और सम्पूर्ण अलोकाकाश के प्रदेशों का क्षेपण करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे पुनः तीन बार [१]वर्गित-संवर्गित करना चाहिए। इस प्रक्रिया से जो महाराशि उत्पन्न हो उसमें धर्म द्रव्य (और अधर्म द्रव्य) के अगुरुलघु गुण के अविभागी-प्रतिच्छेदों को मिलाकर पुनः तीन बार वर्गित-संवर्गित करना चाहिए। इस बार की प्रक्रिया से जो विशद् महाराशि उत्पन्न हो [उसे केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों में से घटा देना चाहिए तथा जो अवशेष रहे, उस शेष को उसी उत्पन्न हुई विशद् महाराशि में मिला देने से केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनन्तानन्त होता है] उसे केवलज्ञान और केवलदर्शन के अविभागी प्रतिच्छेदों में मिला देने पर उत्कृष्ट अनन्तानन्त का प्रमाण होता है। [किन्तु यह प्रमाण केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों से वृद्धिंगत (बढ़ जाने) हो जाने के कारण उत्कृष्ट अनन्तानन्त के प्रमाण को पार कर जायेगा, जो आगम विरुद्ध होगा] जघन्य अनन्तानंत

---

१. जिस राशि को वर्गित-संवर्गित करना हो उसे शलाका, विरलन और देय रूप से तीन जगह स्थापित कर लेना चाहिए। पश्चात् विरलन राशि का एक-एक अंक विरलन कर, उस प्रत्येक अंक पर देय राशि रखकर परस्पर गुणा करके शलाका राशि में से एक घटा देना चाहिए। परस्पर के गुणन से उत्पन्न हुई राशि का पुनः विरलन कर और उसी राशि का देय देकर परस्पर गुणा करने के बाद शलाका राशि में से दूसरी बार एक अंक और घटा देना चाहिए। इसी प्रकार पुनः पुनः विरलन, देय, गुणन और ऋण रूप क्रिया तब तक करना चाहिए जब तक कि शलाका राशि समाप्त न हो जाये (यह एक बार वर्गित संवर्गित हुआ)। इतनी प्रक्रिया बाद जो महाराशि उत्पन्न हो उसे पूर्वोक्त प्रकार विरलन, देय और शलाका रूप से तीन जगह स्थापित कर, विरलन राशि का विरलन कर उस पर देय राशि देय रूप रखकर परस्पर में गुणा कर शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिए। यह प्रक्रिया पुनः पुनः तब तक करना चाहिए जब तक शलाका राशि समाप्त न हो जाय (यह दूसरी बार वर्गित संवर्गित हुआ)। इस द्वितीय शलाका राशि के समाप्त होने पर जो महाराशि उत्पन्न हो उसकी पुनः पुनः उपर्युक्त प्रक्रिया तब तक करना चाहिए, जब तक कि एक-एक अंक घटते हुए महाराशि रूप शलाका राशि की परिसमाप्ति न हो जाये (यह तृतीय बार वर्गित-संवर्गित हुआ)॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और उत्कृष्ट अनन्तानन्त के मध्य में मध्यम अनन्तानन्त होता है, जो अनन्तों प्रकार का है। भव्यों की संख्या इसी मध्यम अनन्तानन्त प्रमाण है। जहाँ जहाँ अनन्त का प्रमाण कहा जाता है, वहाँ-वहाँ अजघन्य एवं अनुत्कृष्ट अनन्तानन्त ही ग्राह्य है। जहाँ अभव्यों की संख्या कही गई है वहाँ जघन्य युक्तानन्त जानना चाहिए। अर्थात् अभव्य राशि जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है। जहाँ आवली आदि के समय कहे गये हैं, वहाँ जघन्य युक्तासंख्यात जानना चाहिए।

संख्यात का विषय (प्रमाण) श्रुतज्ञान गम्य है, असंख्यात का विषय अवधिज्ञान गम्य है और अनन्त (युक्तानन्त आदि) का विषय सकल प्रत्यक्ष स्वरूप केवलज्ञान का विषय है। अर्थात् मात्र केवलज्ञान गम्य है।

अब उपमा मान के आठ भेदों के नाम कहते हैं–

पल्योऽथ सागरः सूच्यङ्गुलं च प्रतराङ्गुलम्।
घनाङ्गुलं जगच्छ्रेणिर्लोकप्रतर एव हि ॥३९॥
लोकोऽमी चोपमामानभेदा अष्टौ मताः श्रुते।
अमीषां विस्तराख्यानं सुखबोधाय कथ्यते ॥४०॥

अर्थ–पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक उपमा मान के ये आठ भेद आगम में कहे गये हैं। सुखपूर्वक बोध प्राप्त करने के लिए अब इन आठों का विस्तार से वर्णन करते हैं ॥३९-४०॥

अब व्यवहार पल्य और उसके रोमों की संख्या कहते हैं–

सर्वत्र योजनव्यासो योजनैकावगाहकः।
समवृत्तो महान् कूपः खन्यते पल्य सिद्धये ॥४१॥
सप्ताहोरात्रजातानां मेषबालकजन्मिनाम्।
रोमखण्डैरखण्डैस्तं पूरयेत्सूक्ष्मखण्डितैः ॥४२॥
एकैकं रोमखण्डं तद्वर्षाणां च शते शते।
गते सति ततः कूपान्निःसार्यते विचक्षणैः ॥४३॥
यदा स जायते रिक्तः कालेन महता तदा।
तत्कालस्य प्रमाणं यत्स पल्यो व्यावहारिकः ॥४४॥
चतुरेकत्रिचत्वारः पञ्चद्विषट्त्रिशून्यकाः।
त्रिशून्याष्टद्विशून्यं त्र्येकसप्तसप्त सप्तकाः ॥४५॥
चतुर्नवाङ्कपञ्चैक द्वयाङ्कैक नवद्वयाः।
सप्तविंशतिरेतेऽङ्काः शून्यान्यष्टादशास्फुटम् ॥४६॥
अमीभिः पञ्चचत्वारिंशदङ्कैः श्रीजिनाधिपैः।
तद् व्यवहारपल्यस्य रोमाणां गणनोदिता ॥४७॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अर्थ—पल्य की सिद्धि के लिए एक योजन (चार प्रमाण कोस) चौड़ा और एक योजन गहरा एक गोल गड्ढा खोदना चाहिए तथा उसे (उत्तम भोगभूमि में) सात दिन रात के भेड़-बच्चों के रोमों को ग्रहण कर जिसका दूसरा खण्ड न हो सके ऐसे अखण्ड और सूक्ष्म रोम खण्डों के द्वारा उस गड्ढे को भरे तथा प्रत्येक सौ वर्ष व्यतीत होने पर एक-एक रोम खण्ड निकाले इस प्रकार सौ-सौ वर्ष में एक-एक रोम निकालते हुए जितने काल में वह गड्ढा खाली हो जाये उतने काल (के समयों की संख्या) को विद्वानों ने व्यवहार पल्य कहा है। ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०० ०००००००००००००००० इस प्रकार २७ अंकों को १८ शून्यों से युक्त करने पर ४५ अंक प्रमाण व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कही गई है अर्थात् प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक-एक रोम के निकाले जाने पर जितने काल में समस्त रोम समाप्त हों, उतने काल के समय ही व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है ॥४१-४७॥

अब उद्धार पल्य और द्वीप समुद्रों का प्रमाण कहते हैं—

असंख्यकोटिवर्षाणां समयैर्गुणिताश्च ते।
रोमांशावर्धिताः सर्वे भवन्ति संख्यवर्ज्जिताः ॥४८॥
वर्षैकैकशतेनैव रोमराशेः पृथक् क्रमात्।
एकैकं ह्रियते रोमं तदन्तं यावदञ्जसा ॥४९॥
एवं कृते भवेद्यावत्कालः केवलिगोचरः।
तावत्कालप्रमाणं यदुद्धारपल्य एव सः ॥५०॥
गतासूद्धारपल्यानां द्विपञ्चकोटिकोटिषु।
द्वीपाब्धिसंख्य हेतुश्च जायेतोद्धारसागरः ॥५१॥

अर्थ—व्यवहार पल्य के वे रोमांश असंख्यात कोटि वर्षों के समयों द्वारा गुणित होकर वृद्धि को प्राप्त हुए असंख्यात हो जाते हैं अर्थात् उन रोमांशों को असंख्यात कोटि वर्षों के समयों से गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह असंख्यात होता है। उस असंख्यात रोमों की राशि में से क्रम से प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक-एक रोम निकालने पर जितना काल होता है, केवली गोचर उतना ही काल उद्धार पल्य के काल का प्रमाण है। इसी प्रकार के २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों अर्थात् २$\frac{१}{२}$उद्धार सागरों के जितने समय हैं, उतनी ही द्वीप समुद्रों की संख्या है। द्वीप समुद्रों की संख्या बतलाने के लिए उद्धार पल्य का कथन किया गया है ॥४८-५१॥

अब आधार (अद्धा) पल्य एवं आधार सागर का प्रमाण कहते हैं—

ऊद्धार पल्यएवासौ शताब्दसमयैः पुनः।
गुणितो जायते विद्धिराधारपल्य उत्तमः ॥५२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

दशस्वाधारपल्यानां गतासु कोटिकोटिषु।
जायते सकलोत्कृष्ट आधारसागरोपमः ॥५३॥
कालायुः कर्मणां यत्र वर्ण्यन्ते स्थितयो बुधैः।
तत्रैतौ पल्यवार्धीस्त आधाराधारनामकौ ॥५४॥

अर्थ—एक उद्धार पल्य के सम्पूर्ण रोमों को १०० (असंख्यात) वर्षों के समयों से गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो वही संख्या विद्वज्जनों ने उत्कृष्ट आधार (अद्धा) पल्य की कही है। १० कोड़ाकोड़ी आधार पल्यों का एक उत्कृष्ट आधार (अद्धा) सागर होता है। विद्वानों के द्वारा उत्सर्पिणी आदि कालों का प्रमाण, आयु एवं कर्मों की स्थिति का प्रमाण इन्हीं आधार पल्य तथा आधार सागर से किया गया है ॥५२-५४॥

अब सूच्यङ्गुल से लेकर लोक पर्यन्त का प्रमाण या लक्षण कहते हैं—

सूच्यङ्गुलमुच्यते—

आधारपल्योपममार्धार्धेन तावत्प्रकर्तव्यं यावद् रोमैकं तिष्ठेत्। तत्र यावन्त्यर्धच्छेदनानि आधार-पल्योपमस्य तावन्मात्राधारपल्यानि परस्परगुणितानि यत्प्रमाणं भवति तावन्मात्रा आकाशप्रदेशाः ऊर्ध्वमावल्या-कारेण रचिताः, तेषां नभःप्रदेशानां यत्प्रमाणं तत्सूच्यङ्गुलं स्यात्। तत्सूच्यङ्गुलमपरेण सूच्यङ्गुलेन गुणितं प्रतराङ्गुलं भवति। प्रतराङ्गुलं अपरेण सूच्यङ्गुलेन गुणितं घनाङ्गुलं कथ्यते। पञ्चविंशतिकोटीकोटीनामुद्धार पल्यानां यावन्ति रूपाणि लक्षयोजनार्धच्छेदनानि च रूपाधिकानि। एकैकं द्विगुणीकृतानि अन्योन्याभ्यस्तानि यत्प्रमाणं सा रज्जुः। सप्तभिर्गुणिता रज्जू जगच्छ्रेणिरुच्यते। जगच्छ्रेणिरपरया जगच्छ्रेण्या गुणिता लोकप्रतरं स्यात्। लोकप्रतरं जगच्छ्रेण्या गुणितं लोकः कथ्यते।

अर्थ—आधार पल्योपम के इस रीति से अर्ध-अर्ध भाग करना चाहिए कि अन्त में मात्र एक रोम रहे। यहाँ आधार पल्य के जितने अर्धच्छेद प्राप्त हों उतनी संख्या बार आधार पल्यों का परस्पर में गुणा करने से जो लब्ध आये, उतनी संख्या प्रमाण आकाश प्रदेशों की ऊर्ध्व पंक्ति के आकार रचना करना चाहिए। उन आकाश प्रदेशों की जितनी संख्या है, वही सूच्यंगुल का प्रमाण है। इस सूच्यंगुल को अन्य सूच्यंगुल से गुणित करने पर प्रतरांगुल होता है और प्रतरांगुल सूच्यंगुल से गुणित करने पर घनांगुल की प्राप्ति होती है।

२५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के जितने समय हैं, उनमें एक लाख योजन के अर्धच्छेदों को जोड़कर अन्य एक-अंक और मिला देने से जो प्रमाण आये उतनी बार दो-दो रखकर उन दो-दो को परस्पर में गुणित करने पर जो राशि उत्पन्न होती है, वही राजू का प्रमाण है।

विशेषार्थ—मध्यलोक पूर्व-पश्चिम एक राजू है। उस एक राजू में समस्त द्वीप समुद्र हैं, जिनका प्रमाण २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के समयों के बराबर है किन्तु प्रत्येक द्वीप व समुद्र परस्पर में एक दूसरे से दुगुने-दुगुने होते गये हैं, अतः द्वीप समुद्रों की जो संख्या है, वह एक राजू के अर्धच्छेदों से

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

कम है, क्योंकि प्रारम्भ में एक लाख योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप है, अतः इस एक लाख योजन के अर्धच्छेद द्वीप-समुद्रों की संख्या में जोड़ देना चाहिए। लवण समुद्र में दो अर्धच्छेद पड़ते हैं, इसलिए एक अंक और मिलाया गया है। इस प्रकार द्वीप-समुद्रों की संख्या (२५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के समयों) में एक लाख योजन के अर्धच्छेद व एक अंक और मिलाने से एक राजू के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं। जितने अर्धच्छेद हैं उतने दो-दो के अंक रखकर परस्पर गुणा करने से राजू का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

रज्जू को ७ से गुणित करने पर जगच्छ्रेणी होती है। जगच्छ्रेणी को अन्य जगच्छ्रेणी से गुणित करने पर जगत् प्रतर और जगत्प्रतर को जगच्छ्रेणी से गुणित करने पर लोक का प्रमाण होता है।

अब अणु का लक्षण कहकर अंगुल पर्यन्त मापों का प्रमाण कहते हैं—

स प्रदेशोऽप्यभेद्यस्तु मूर्तोनेन्द्रियगोचरः।
स्पर्शादिगुणसंयुक्तः पुद्गलाणुरिहोच्यते ॥५५॥
उत्संज्ञासंज्ञकस्कन्धोऽनन्तानन्ताणुभिर्भवेत् ।
संज्ञासंज्ञात्मकस्कन्धोऽष्टभिस्तैः कीर्तितो जिनैः ॥५६॥
स्कन्धैस्तैरष्टभिः प्रोक्तो व्यवहाराणुरागमे।
अष्टभिर्व्यवहाराणुभिस्त्रसरेणुरुच्यते ॥५७॥
रथरेणुरिहाख्यातोऽप्यष्टभिस्त्रसरेणुभिः ।
रथरेण्वष्टभिः प्रोक्तो बालैकः आर्यदेहिनाम् ॥५८॥
उत्कृष्टभोगभूजातानां तैरष्टशिरोरुहैः।
केशैको मध्यमाभोगभूमिभवार्यजन्मिनाम् ॥५९॥
एतैर्बालाष्टभिः ख्यातो वालैकः पिण्डितैर्बुधैः।
जघन्यभोगभूभागोत्पन्नार्याणां शिरोरुहै ॥६०॥
तैरष्टभिश्च बालैकः कर्मभूमिजदेहिनाम्।
कर्मभूमिनृबालाष्टकैर्लिक्षैका निगद्यते ॥६१॥
लिक्षाष्टभिस्तुर्यूकैका यूकोष्टभिर्यवो मतः।
यवोदराष्टकः प्रोक्तं पर्वमानं गणाधिपैः ॥६२॥

अर्थ—जो पुद्गल द्रव्य एक प्रदेशी हो, मूर्तिक हो, इन्द्रियों से अग्राह्य हो तथा स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण से युक्त हो उसे पुद्गल अणु कहते हैं। ऐसे अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओं से एक उत्संज्ञासंज्ञक स्कन्ध उत्पन्न होता है। जिनेन्द्र भगवान् ने आठ उत्संज्ञासंज्ञकों का एक संज्ञासंज्ञात्मक स्कन्ध कहा है। आगम में आठ संज्ञासंज्ञात्मक स्कन्ध का एक व्यवहाराणु (त्रुटिरेणु) और आठ त्रुटिरेणुओं का एक त्रसरेणु कहा गया है। आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु और आठ रथरेणुओं का उत्तम

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

भोगभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है। उत्कृष्ट भोगभूमिज मनुष्यों के आठ बालों का मध्यम भोगभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है। मध्यम भोगभूमिज आठ बालों का जघन्य भोगभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है। जघन्य भोगभूमिज आठ बालों का कर्मभूमिज मनुष्यों का एक बाल होता है, कर्मभूमिज मनुष्यों के आठ बालों की एक लिक्षा होती है। आठ लिक्षाओं की एक जूँ, आठ जूँ का एक यव और आठ यवों का एक अंगुल होता है, ऐसा गणधरादि देवों द्वारा कहा गया है ॥५५-६२॥

अब अंगुलों के भेद और उनका प्रमाण दर्शाते हैं–

उत्सेधाङ्गुलमेवाद्यं प्रमाणाङ्गुलसंज्ञकम्।
आत्माङ्गुलमिति प्रोक्तमङ्गुलं त्रिविधं जिनैः ॥६३॥
प्रागुक्तमादिमं पञ्चशताभ्यस्तं मनीषिभिः।
उत्सेधाङ्गुलमेवैतत्प्रमाणाङ्गुलमुच्यते ॥६४॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः षट्कालोत्पन्नजन्मिनाम्।
वृद्धिह्रासशरीराणां बहुधात्माङ्गुलं भवेत् ॥६५॥

अर्थ–आठ जौ (यव) से जो अंगुल उत्पन्न होता है उसको श्री जिनेन्द्रदेव ने उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल के भेद से तीन प्रकार कहे हैं। ऊपर जो ८ जौ का एक अंगुल कहा गया है, वही उत्सेधांगुल या व्यवहारांगुल कहलाता है। उस उत्सेधांगुल में ५०० का गुणा करने से प्रमाणांगुल होता है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी सम्बन्धी छह कालों में ह्रस्व, दीर्घ अवगाहना को धारण कर जन्म लेने वाले मनुष्यों के अंगुल को आत्माङ्गुल कहते हैं ॥६३-६५॥

अब किन अंगुलों से किन-किन पदार्थों का माप किया जाता है, इसका व्याख्यान करते हैं–

चतुर्गतिसमुद्भूतप्राणिनां वपुषां बुधैः।
उत्सेधाद्या निरूप्यन्ते उत्सेधाङ्गुलमानकैः ॥६६॥
द्वीपाब्धिक्षेत्रदेशानां नदीद्रहादिभूभृताम्।
अकृत्रिमजिनागारादीनां व्यासोदयादयः ॥६७॥
प्रमाणाङ्गुलमानैश्च कीर्तिताः श्रीगणाग्रगैः।
ध्वजच्छत्ररथावासघटशय्यासनादिषु ॥६८॥
प्रमाणं देहिनां ख्यातमात्माङ्गुलैरनेककैः।
चतुर्विंशाङ्गुलैरेको हस्तो जायेत जन्मिनाम् ॥६९॥

अर्थ–चारों गतियों में उत्पन्न होने वाले जीवों के शरीर का उत्सेध उत्सेधांगुल के द्वारा किया जाता है, ऐसा विद्वानों ने कहा है। द्वीप, समुद्र, क्षेत्र, देश, नदी, द्रह आदि, कुलाचल और अकृत्रिम जिन चैत्यालयों आदि का उत्सेध, आयाम एवं व्यास आदि प्रमाणांगुल से किया जाता है, ऐसा गणधर

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

देवों के द्वारा कहा गया है। ध्वज, छत्र, रथ, प्राणियों के आवास, घट और शय्या आदि का प्रमाण आत्मांगुल से किया जाता है। मनुष्यों के २४ अंगुलों का एक हाथ होता है ॥६६-६९॥

अब क्षेत्रमान का ज्ञापन कराने के लिए माप का प्रमाण कहते हैं–

चतु:करैर्धनु: प्रोक्तं धनुषां द्विसहस्त्रकै:।
क्रोश एक इहाम्नातश्चतु:क्रोशैश्च योजनम् ॥७०॥
तस्मात्साध्यं च पल्याद्यमुपमामानमञ्जसा।
क्षेत्रमानमिति प्रोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारत: ॥७१॥

अर्थ–२४ अंगुलों का एक हाथ और चार हाथ का एक धनुष होता है। दो हजार धनुष का एक कोश और चार कोश का एक योजन होता है। इन पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक का साधन इन्हीं योजन आदि से होता है। इस प्रकार परम्परागत शास्त्रानुसार क्षेत्रमान का प्रमाण कहा गया है ॥७०-७१॥

अब काल मान के प्रमाण का दिग्दर्शन कराते हैं–

कालमानमतो वक्ष्ये यथाम्नातं जिनाधिपै:।
लोकाकाशप्रदेशेषु कालाणव: पृथक्-पृथक् ॥७२॥
तिष्ठन्त्येकैक रूपेणा संख्याता रत्नराशिवत्।
वर्तनालक्षणं येषां जीवपुद्गलयोर्द्वयो: ॥७३॥
तं कालाणुं लघूल्लंघ्य पुद्गलाणुं प्रयात्यपि।
यावत् कालप्रमाणेन स काल: समयाह्वय: ॥७४॥
असंख्यसमयैरेकावलि: प्रोक्ता जिनागमे।
संख्यावलिभिरुच्छ्वास: स्तोक उच्छ्वास सप्तभि: ॥७५॥
सप्तस्तोकैर्लवैका सार्धाष्टत्रिंशत्प्रमाणकै:।
लवानां घटिकैका च मुहूर्तो द्विघटीभव: ॥७६॥
क्षणैकोनो मुहूर्त: स्याद् भिन्नमुहूर्तनामक:।
तस्मादावल्यसंख्येयभागो यावच्च हानित: ॥७७॥
तावदन्तर्मुहूर्तोऽत्र नानाभेदो निगद्यते।
त्रिंशन्मुहूर्तकै: सद्भिरहोरात्रं मतं श्रुते ॥७८॥
त्रिशद्भिर्नैर्भवेन्मास: षण्मासैरयनं स्मृतम्।
द्व्ययनाभ्यां भवेद् वर्ष पञ्चवर्षैर्युगं मतम् ॥७९॥

अर्थ–जिनेन्द्रों के द्वारा जैसा कहा गया है, काल मान का वैसा ही वर्णन मैं करता हूँ। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के सदृश एक-एक काल द्रव्य के अणु पृथक्-पृथक् स्थित हैं

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

और वे असंख्यात हैं। उन कालाणुओं अर्थात् काल द्रव्य का वर्तना लक्षण है, इसी के निमित्त से जीव और पुद्गल में परिणमन अर्थात् नई पुरानी आदि अवस्थाएँ होती हैं। पुद्गल का सबसे छोटा अणु उस कालाणु को जितने काल में उल्लंघन करता है, उतने काल प्रमाण को समय कहते हैं। जिनागम में ऐसे ही असंख्यात (जघन्य युक्तासंख्यात) समयों की एक आवली कही गई है। संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास और सात उच्छ्वासों का एक स्तोक होता है। सप्त स्तोकों का एक लव, ३८$\frac{१}{२}$ लवों की एक घड़ी और दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। एक क्षण (१८ निमेषों की एक काष्टा, ३० काष्टा की एक कला और ३० कला का एक क्षण होता है) कम मुहूर्त (१२ क्षणों का एक मुहूर्त) को भिन्न मुहूर्त कहते हैं। इससे कम अर्थात् आवली के असंख्यातवें भाग पर्यन्त अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। यह अन्तर्मुहूर्त अनेक भेदों वाला कहा गया है। आगम में ३० मुहूर्त का एक दिन कहा गया है। ३० दिनों का एक मास, ६ मासों का एक अयन, दो अयनों का एक वर्ष और ५ वर्षों का एक युग होता है ॥७२-७९॥

अब व्यवहार काल के भेदों में से पूर्वांग आदि के लक्षण कहते हैं–

अथ पूर्वाङ्गपूर्वादीनां प्रमाणं निरूप्यते।
स्यात् पूर्वाङ्गैकमब्दानां लक्षैश्चतुरशीतिकैः ॥८०॥
पूर्वाङ्गं गुणितं पूर्वं लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
पूर्वं चतुरशीतिघ्नं पर्वाङ्गमुच्यते बुधैः ॥८१॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् वर्गितं पर्वमिष्यते।
पर्वं चतुरशीत्या नयुताङ्गं गुणितं भवेत् ॥८२॥
नयुतं ताडितं तत् स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तत् कुमुदाङ्गं निरूपितम् ॥८३॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् गुणितं कुमुदं भवेत्।
मतं चतुरशीत्या हि पद्माङ्गं तच्च ताडितम् ॥८४॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं पद्मं जिनागमे।
तद्धतं नलिनाङ्गं स्यात्संख्यैश्चतुरशीतिकैः ॥८५॥
गुणितं नलिनं तत्स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तत्कमलाङ्गं स्मृतं बुधैः ॥८६॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद् वर्गितं कमलं भवेत्।
हतं चतुरशीत्या तत् त्रुटिताङ्गं निगद्यते ॥८७॥
लक्षैश्चतुरशीत्यैतद् गुणितं त्रुटितं मतम्।
हतं चतुरशीत्या तदटटाङ्गाभिधं भवेत् ॥८८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

लक्षैश्चतुरशीत्या तद् गुणितं वाटटाख्यकम्।
हतं चतुरशीत्यैत दममाङ्गाभिधं स्मृतम् ॥८९॥
अममं गुणितं तत् स्याल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
तस्याच्चतुरशीत्या गुणितं हाहाङ्गसंज्ञकम् ॥९०॥
लक्षैश्चतुरशीत्यां तद् हतं हाहाख्यमुच्यते।
भवेच्चतुरशीत्यां तद् हूहांगं गुणितं बुधैः ॥९१॥
लक्षैश्चतुरशीत्यां तद्धतं हूहू समाह्वयम्।
भवेच्चतुरशीत्या वर्गितं विन्दुलताङ्गकम् ॥९२॥
हतं विन्दुलताख्यं तल्लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
हतं चतुरशीत्या तन्महालताङ्गमुच्यते ॥९३॥
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं महालताह्वयम्।
लक्षैश्चतुरशीत्या तद्धतं शिरः प्रकम्पितम् ॥९४॥
शिरः प्रकम्पितं नूनं लक्षैश्चतुरशीतिकैः।
वर्गितं जायते चैव हस्तप्रहेलिकाभिधम् ॥९५॥
लक्षैश्चतुरशीत्या च हस्तप्रहेलिकाभिधम्।
गुणितं श्रीजिनैः प्रोक्तामचलात्मकसंज्ञकम् ॥९६॥
पिण्डीकृता इमे सर्वेऽङ्का एकत्रिंशदञ्जसा।
पदानां संख्यया प्रोक्ता अन्योन्यगुणनोद्भवा ॥९७॥
षष्ट्यङ्का निखिलाः सन्ति शून्यानि नवतिः स्फुटम्।
सर्वैकत्रीकृताः अङ्काः सार्धंशतं च संख्यया ॥९८॥

अर्थ—अब पूर्वांग एवं पूर्व आदि का प्रमाण कहते हैं। चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है। पूर्वांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पूर्व (७०५६०००००००००० वर्ष) होता है। पूर्व में ८४ का गुणा करने से एक पर्वांग होता है ऐसा विद्वानों ने कहा है। पर्वांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पर्व और पर्व को ८४ से गुणित करने पर एक नयुतांग होता है। नयुतांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक नयुत और नयुत को ८४ से गुणित करने पर एक कुमुदांग कहा गया है। कुमुदांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक कुमुद और कुमुद को ८४ से गुणित करने पर एक पद्मांग होता है। पद्मांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक पद्म और पद्म को ८४ से गुणित करने पर एक नलिनांग होता है, ऐसा जिनागम में कहा है। नलिनांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक नलिन और नलिन को ८४ से गुणित करने पर एक कमलांग होता है, ऐसा विद्वानों के द्वारा कहा गया है। कमलांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक कमल और कमल को ८४ से गुणित करने पर एक त्रुटितांग होता है। त्रुटितांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक त्रुटित और त्रुटित को ८४ से गुणित करने पर अटटांग

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

होता है। अटटांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अटट और अटट को ८४ से गुणित करने पर एक अममांग होता है। अममांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अमम और अमम को ८४ से गुणित करने पर एक हाहांग होता है। विद्वानों ने कहा है कि हाहांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक हाहा और हाहा को ८४ से गुणित करने पर एक हूहांग होता है। हूहांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक हूहू और हूहू को ८४ से गुणित करने पर एक विन्दुलतांग होता है। विन्दुलतांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक विन्दुलता और विन्दुलता को ८४ से गुणित करने पर एक महालतांग होता है। महालतांग को ८४ लाख से गुणित करने पर एक महालता और महालता को ८४ लाख से गुणित करने पर एक शिरः प्रकम्पित होता है। शिरः प्रकम्पित को ८४ लाख से गुणित करने पर हस्तप्रहेलिका और हस्तप्रहेलिक को ८४ लाख से गुणित करने पर एक अचलात्म होता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इन सब अंकों को एकत्रित करने पर ३१ पद होते हैं, पदों की उक्त संख्या को परस्पर गुणित करने पर कुल साठ अंक और ९० शून्य होते हैं तथा इन सर्व अंकों और शून्यों को एकत्रित करने पर एक सौ पचास (१५०) अंकों की संख्या होती है ॥८०-९८॥

अब भाव मान का वर्णन करते हैं–

अपर्याप्तनिकोतानां ज्ञानमात्रं यदस्ति तत्।
जघन्यं सर्वथोत्कृष्टं ज्ञानं केवलिनां परम् ॥९९॥
मध्यमं बहुधा ज्ञानं स्याच्चतुर्गति जन्मिनाम्।
भावमानमिति ज्ञेयं ज्ञानादिगुणसम्भवम् ॥१००॥
एते लोकोत्तरस्यैव भेदाश्चत्वार ईरिताः।
सिद्धान्तार्थं परिज्ञाय श्रीतीर्थेशमुखोद्भवाः ॥१०१॥

अर्थ–सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव को जो ज्ञान है वह सर्व जघन्य भाव मान है तथा केवली भगवान का केवलज्ञान सर्वोत्कृष्ट भाव मान है। चारों गतियों में स्थित जीवों का ज्ञान मध्यम भाव मान है, जो अनेक प्रकार का है। इस प्रकार ज्ञानादि गुणों से सम्भावित भाव मान जानना चाहिए। श्री तीर्थंकर देव के मुख से उत्पन्न सिद्धान्त के अर्थ को जानने के लिए ये लोकोत्तर चार मान कहे गये हैं ॥९९-१०१॥

आगे इस ग्रन्थ रचना का आधार कहते हैं–

एष ग्रन्थवरो जिनेन्द्रमुखजः सिद्धान्तसारादिक-
दीपोऽनेकविधस्त्रिलोकसकल प्रद्योतने दीपकः।
नानाशास्त्रपरान् विलोक्य रचितस्त्रैलोक्यसारादिकान्
भक्त्या श्रीसकलादि कीर्तिगणिना संङ्क्षैर्गुणैर्नन्दतु ॥१०२॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

न कीर्तिपूजाप्रवरेच्छयायं न वा कवित्वाद्यभिमानयोगात्।
किन्त्वात्मशुद्धयै परमार्थबुद्ध्या ग्रन्थः कृतः स्वान्यहिताय मुक्त्यै ॥१०३॥

अस्मिन् सिद्धान्तसारे त्रिभुवनकथके ज्ञानगूढार्थ पूर्णे,
यत् किञ्चित् सन्धिमात्राक्षरपदरहितं प्रोदितं स्वल्पबुद्ध्या।
अज्ञानाच्च प्रमादादशुभविधिवशादागमे वा विरुद्धम्,
तत् सर्वं शारदेऽमा विशदमुनिगणैः प्रार्थिता मे क्षमस्व ॥१०४॥

श्रुतसकलसुवेत्तारो हिता भव्य पुंसाम्
निहितनिखिलदोषालोभगर्वादि दूराः।
विशदनिपुणबुद्ध्या सूरयः शोधयन्तु
श्रुतमिदमिहचाल्पज्ञानिना सूरिणोक्तम् ॥१०५॥

अर्थ—यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का उत्कृष्ट ग्रन्थ जिनेन्द्र के मुख से उद्भूत है, स्वर्ग, नरक आदि के भेद से अनेक प्रकार के समस्त त्रैलोक्य को उद्योत करने में दीपक के समान है। त्रैलोक्य सार आदि अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का आलोड़न कर भक्ति से मुझ सकलकीर्ति मुनि द्वारा रचा गया है। अनेक गुण समूहों से यह ग्रन्थ सदा समृद्धिमान् हो ॥१०२॥

मैंने यह ग्रन्थ ख्याति-पूजा-लाभ की इच्छा से अथवा कवित्व आदि के अभिमान से नहीं लिखा किन्तु यह ग्रन्थ आत्म विशुद्धि के लिए, स्व-पर हित के लिए एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए परमार्थ बुद्धि से लिखा है ॥१०३॥

तीन लोक के कथन में और ज्ञान के गूढ़ अर्थों से परिपूर्ण इस सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थ में बुद्धि की स्वल्पता से, अज्ञान से, प्रमाद से अथवा अशुभ कर्म के उदय से यदि किंचित् भी अक्षर, मात्रा, सन्धि एवं पद आदि की हीनता हो अथवा आगम के विरुद्ध कुछ लिखा गया हो तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि जिनवाणी माता और विशिष्ट ज्ञानी मुनिजन मुझे क्षमा प्रदान करें। मुझ अल्पबुद्धि के द्वारा लिखे गये इस शास्त्र का सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता, भव्य जीवों के हितकारी, समस्त दोषों से रहित लोभ एवं गर्व आदि से दूर रहने वाले तथा निर्मल (समीचीन) एवं निपुण बुद्धि से युक्त आचार्य शोधन करें ॥१०४-१०५॥

ग्रन्थ के प्रति आशीर्वचन—

सिद्धान्तसारार्थनिरूपणाछ्री सिद्धान्तसारार्थ भृतो हि सार्थः।
सिद्धान्तसारादिकदीपकोऽयं ग्रन्थो धरित्र्यां जयतात् स्वसंघैः ॥१०६॥

अर्थ—जिनागम के सिद्धान्त के सारभूत अर्थ का निरूपण करने वाला, सिद्धान्त के सारभूत अर्थ से भरा हुआ एवं सार्थक नाम को धारण करने वाला यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का ग्रन्थ अपने संघों द्वारा पृथ्वी पर जयवन्त हो ॥१०६॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

इस ग्रन्थ के पठन से किन-किन फलों की प्राप्ति होगी? उसे कहते हैं–

ये पठन्ति वरशास्त्रमिदं सद्धीधनाः सुमुनयो गुणरागात्।
ज्ञाननेत्रमचिरादिह लब्ध्वा लोकयन्ति जगतां त्रितयं ते ॥१०७॥
तेन हस्ततलसंस्थित रेखावद् विलोक्य नरकादि समस्तम्।
यान्ति भीतिमशुभाच्च चरन्ति सत्तपश्चरणमञ्जसा विदः ॥१०८॥
तेन वृत्तविशदा चरणेन प्राप्य नाकमसमं सुखखानिम्।
राज्यभूतिमनुभोगविरक्त्या सत्तपश्चरणतोऽवपुषः स्युः ॥१०९॥

अर्थ–जो समीचीन बुद्धि के धारक उत्तम मुनिराज गुणानुराग से इस ग्रन्थ को पढ़ते हैं, वे शीघ्र ही ज्ञानरूपी अनुपम नेत्र (केवलज्ञान) को प्राप्त कर तीन लोक स्वरूप समस्त जगत् को देख लेते हैं। वे विद्वान् उस अनुपम ज्ञान से नरकादि समस्त दुःखमय पदार्थों को हस्ततल पर स्थित रेखा के सदृश देखकर समस्त अशुभादि क्रियाओं से भयभीत होते हैं और समीचीन तपश्चरण आदि का आचरण करते हैं तथा उस निर्दोष चारित्र के आचरण से सुख की खानि स्वरूप स्वर्गों के अनुपम सुखों को प्राप्त कर मनुष्य पर्याय में आकर राज्य विभूति का अनुभोग करके वैराग्य को प्राप्त होकर उत्तम तपश्चरण करते हुए सिद्ध पर्याय को प्राप्त करते हैं ॥१०७-१०९॥

शास्त्र श्रवण करने से क्या फल प्राप्त होता है? उसे कहते हैं–

शृण्वन्ति ये बुधजनाः परया त्रिशुद्ध्या-
त्रैतत्छ्रुतं त्रिभुवनोरुगृहप्रदीपम्।
ते श्वभ्रदुःखकलनादघभीतचित्ता
धर्मे तपःसुचरणे च परायणाः स्युः ॥११०॥
ते ज्ञानदृग्यमतपश्चरणादिधर्मै-
र्भुक्त्वा सुखं निरुपमं दिवि मर्त्यलोके।
सम्प्राप्य रागविरति भवभोगकाये
सद्दीक्षया सुतपसा च भवन्ति सिद्धाः ॥१११॥

अर्थ–त्रैलोक्य को प्रकाशित करने के लिए प्रदीप के सदृश इस ग्रन्थ को जो विद्वज्जन मन, वचन और काय की विशुद्धिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे नरकों के दुःखों को भलीभाँति जान लेते हैं, इसलिए वे पापों से भयभीत चित्त होते हुए धर्म में, तप में और सम्यक्चारित्र में दत्तचित्त हो जाते हैं तथा वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, यम, नियम और उत्तम तपश्चरण आदि धर्म के फल स्वरूप स्वर्ग एवं मध्यलोक के अनुपम सुखों को भोगकर संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होते हुए जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर उत्तम तप करके सिद्ध हो जाते हैं ॥११०-१११॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

जो भव्यजन इस शास्त्र को लिखते हैं, उनके फल का दिग्दर्शन कराते हैं–

येऽहो लिखन्ति निपुणा वरशास्त्रमेतत्
तद् वृद्धये च पठनाय तरन्ति तूर्णम्।
ते ज्ञानवारिधिमनन्तगुणैकहेतु
सिद्धान्ततीर्थपरमोद्धरणाप्तधर्मात् ॥११२॥

अर्थ–शास्त्र की वृद्धि के लिए तथा दूसरों को पढ़ने के लिए जो विद्वज्जन इस उत्तम शास्त्र को अपने हाथों से स्वयं लिखते हैं, वे सिद्धान्तरूप उत्कृष्ट तीर्थ के उद्धारस्वरूप पुण्य से अनन्त गुणों के कारणभूत ज्ञानसिन्धु को शीघ्र ही तर जाते हैं। अर्थात् पूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं ॥११२॥

जो धनिक जन इस शास्त्र को लिखावेंगे, उनको प्राप्त होने वाले फल का दिग्दर्शन करते हैं–

ये लेखयन्ति धनिनो धनतः किलेदम्
सारागमं भुवि सुवर्तन हेतवे ते।
सज्ञानतीर्थविमलोद्धरणात्तपुण्याद-
त्राप्यमुत्र सकलं श्रुतमाश्रयन्ति ॥११३॥

अर्थ–पृथ्वी पर आगम के सार को प्रकाशित करने के लिए जो श्रीमान् (धनवान) अपने धन से इस शास्त्र को लिखवाते हैं, वे समीचीन और निर्मल ज्ञानरूपी तीर्थ के उद्धार स्वरूप पुण्यफल से इस लोक और परलोक में सकल श्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, अर्थात् श्रुतकेवली हो जाते हैं ॥११३॥

जो विद्वज्जन शास्त्र का अध्ययन कराते हैं, उनका फल दर्शाते हैं–

ये पाठयन्ति सुविदो वरसंयतादीन्
विश्वार्थदीपकमिमं परमागमं ते।
सज्ज्ञानदानजमहानघपुण्यपाकाज्
ज्ञातश्रुता जगति केवलिनो भवन्ति ॥११४॥

अर्थ–जो विद्वज्जन मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका जनों को सम्पूर्ण अर्थ के प्रकाशन में दीपक सदृश इस शास्त्र का अध्ययन कराते हैं अर्थात् पढ़ाते हैं, वे उत्तम ज्ञानदान के फल से उत्पन्न अत्यन्त शुभ पुण्योदय से संसार में सर्व श्रुत के ज्ञाता होकर पश्चात् केवली हो जाते हैं ॥११४॥

इस महान् ग्रन्थ की रचना करके आचार्यश्री क्या चाहते हैं? उसका दिग्दर्शन कराते हैं–

एतज्जैनवरागमं सुरचितं लोकत्रयोद्दीपकम्
तद् रागेण मया सुशास्त्ररचना व्याजेनमोक्षाप्तये।
हत्वाज्ञानतमो मदीयमखिलं सद्वर्तमानागमम्
सर्वं मेऽत्र ततोप्यमुत्र विधिना दद्याच्छ्रुतं केवलम् ॥११५॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

अस्मिन् ग्रन्थवरे त्रिकालविषये ये वर्णिताः श्रीजिना
ग्रन्थादौ च नुताः समस्त जिनपाः सिद्धाश्च ये साधवः।
सर्वे ते कृपया ममाशुविमलं सम्पूर्ण रत्नत्रयम्
सर्वान् स्वांश्च गुणान् समाधिमरणं दद्युः स्वशत्रोर्जयम् ॥११६॥

अर्थ—यह त्रैलोक्य दीपक सदृश श्रेष्ठ जिनागम, जनकल्याण के राग से मेरे द्वारा शास्त्र की रचना के बहाने मोक्ष प्राप्ति के लिए रचा गया है, इसलिए विद्यमान यह सर्व समीचीन जिनागम मेरे सम्पूर्ण अज्ञानरूपी अंधकार को नष्टकर विधिपूर्वक इस लोक में श्रुतज्ञान को और परलोक में केवलज्ञान देवें। इस उत्तम ग्रन्थ में जिन जिनेन्द्रों ने तीन लोक का वर्णन किया है तथा ग्रन्थ के प्रारम्भ में जिन अर्हन्तों, सिद्धों एवं साधुओं को नमस्कार किया है, वे सब कृपा करके मुझे शीघ्र ही निर्मल एवं सम्पूर्ण रत्नत्रय, अपने-अपने सर्व गुण समाधिमरण और स्वशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देंवें ॥११५-११६॥

अब आचार्य पुनः मंगल याचना करते हैं—

तीर्थेशाः सिद्धनाथास्त्रिभुवनमहिताः साधवो विश्ववन्द्याः
सद्धर्मास्तत्प्रणेतार इह सुशरणाविश्वलोकोत्तमाश्च।
दातारो भुक्तिमुक्ती दुरितचयहराः सर्व माङ्गल्यदा ये।
ते मे वो वा प्रदद्युर्निजसकलगुणान् मङ्गलं पापहन्तॄन् ॥११७॥

अर्थ—स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करने वाले, दुष्कर्मों के समूह को हरण करने वाले तथा सर्व मंगलों को देने वाले, त्रैलोक्य पूज्य एवं विश्व वन्द्य अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, सर्व साधु परमेष्ठी एवं केवली प्रणीत सद्धर्म ही लोक में उत्तम मंगल हैं, उत्तमोत्तम हैं और परमोत्कृष्ट शरणभूत हैं, अतः ये सभी मुझे, आपको एवं सभी को पाप नाशक अपने-अपने सभी गुण प्रदान करें ॥११७॥

अब आचार्य इस सिद्धान्त ग्रन्थ के वृद्धि की वाञ्छा करते हैं—

एतत्सिद्धान्ततीर्थं जिनवरमुखजं धारितं श्रीगणेशै-
र्वन्द्यं मान्यं सदार्च्यं त्रिभुवनपतिभिर्दोषदूरं पवित्रम्।
अज्ञानध्वान्तहन्तृ प्रवरमिह परं धर्ममूलं सुनेत्रम्
विश्वालोके च भव्यैरसमगुणगणैर्यातु वृद्धिं शिवाय ॥११८॥

अर्थ—यह सिद्धान्तरूपी तीर्थ भगवान् जिनेन्द्र के मुख से निर्झरित है, गणधर देवों द्वारा धारण किया गया है, देवेन्द्र, नागेन्द्र, खगेन्द्र और चक्रवर्ती आदि त्रैलोक्य के अधिपतियों द्वारा वन्दनीय, आदरणीय एवं सदा पूज्य है। दोषों से दूर, पवित्र, अज्ञानरूपी अन्धकार के नाश में प्रवीण, धर्म का मूल और उत्तम नेत्र है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए भव्यों के अनुपम गुण समूहों द्वारा यह सम्पूर्ण लोक में निरन्तर वृद्धिंगत होता रहे ॥११८॥

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

ग्रन्थेऽस्मिन् पञ्चचत्वारिंशच्छतश्लोकपिण्डिताः।
षोडशाग्रा बुधैर्ज्ञेयाः सिद्धान्तसारशालिनि ॥११९॥

॥ इति श्री सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्री सकलकीर्तिविरचिते पल्यादिमानवर्णनो नाम षोडशोऽधिकारः।

॥ इति श्री सिद्धान्तसार दीपकनामाग्रन्थः समाप्तः॥

ग्रन्थपर्यायन्त्रसमेत ४५१६॥ सम्वत् १७८९ वर्षे आषाढमासे कृष्णपक्षे तिथौ चतुर्दशी शनिवासरे। लिखितं मानमहात्मा चाटसु मध्ये॥ श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकजी श्री जगत्कीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री...द्रकीर्तिजी आचार्यजी श्री कनककीर्तिजी तत् शिष्य पं० रायमल तत् शिष्य पं०...दजी तत् शिष्य पं० वृन्दावनेन सुपठनार्थं लिखापितम्॥ लिखितं...ध्ये॥

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयताम् ॥१॥
भग्नपृष्टि कटिग्रीवा वा बद्धमुष्टिरधोमुखम्।
कष्टेन लिखित ग्रन्थं यत्नेन परिपालयेत् ॥२॥श्री॥

अर्थ—सिद्धान्त के सार से युक्त इस ग्रन्थ में सब मिला कर ४५१६ श्लोक हैं, ऐसा विद्वानों के द्वारा जानने योग्य है। अर्थात् जानना चाहिए ॥११९॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित सिद्धान्तसार दीपक नामक महाग्रन्थ में पल्य आदि उपमा प्रमाणों का प्ररूपण करने वाला षोडश अधिकार समाप्त हुआ ॥

❑ ❑ ❑

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY